

अनुत्तर ज्ञानचर्या का छठठा वर्ष : मैं आया तेरे द्वार

विहारचर्या

ऐं नमः अनन्त ज्ञान सम्पन्न¹ भगवान महावीर परम आत्मज्योति में निमज्जित² बनकर वाणिज्य ग्राम के कोष्ठक चैत्य में पंचम पावस प्रवास³ परिपूर्ण कर रहे थे। प्रवास के इस अन्तिम दिन में वाणिज्य ग्राम नगर में स्तब्धता⁴ छाई हुई थी। हृदय में विरह-वेदना के शूल को छिपाये, चेहरे पर मायूसी छाये और नयनों⁵ में आँसू पियोये वहाँ के निवासी मौन साधै आराधना कर रहे थे। सूर्य लज्जा या भय से नहीं अपितु वियोग जनित खेद से लाल होकर अस्ताचल के अंक में समा रहा था। गोधूलि का अरुण प्रतिबिम्ब सम्पूर्ण नगर को अरुणिम⁶ बना रहा था। शांत-प्रशांत वातावरण में प्रतिक्रमण⁷ की साधना में निरत बनकर श्रमण-श्रमणी वृन्द एवं श्रावक-श्राविकाएँ अपने कर्म मैल को

1. केवलज्ञान का पर्याय 2. डूबकर 3. चातुर्मास 4. खामोशी 5. नेत्र 6. लाल 7. प्रतिक्रमण- सांय-सुवह की जाने वाले आवश्यक क्रिया, जिसमें रात्रिक-दैवसिक पापों की आलोचना होती है।

8. दूर

उसी प्रकार व्यपगत⁸ कर शुद्धता को प्राप्त कर रहे थे, जैसे अग्नि में तपाया जाता हुआ स्वर्ण अपनी अशुद्धता से रहित होता हुआ पूर्ण शुद्धता को प्राप्त कर लेता है। अन्तर्मुहूर्त की यह विशोधन प्रक्रिया आत्मा को परमात्मा से मिलाने का महत्त्वपूर्ण कार्य कर देती है। अतः सभी मन, वचन और काया से इसी आवश्यक-कृत्य की पूर्णाहुति दे रहे थे। शनैः शनैः मन्द पवन के झोंकों के समान समय अपना आँचल लहरा रहा था।

निरभ्र¹ नभ में वसुधा और व्योम का चिरकालीन मिलन दृष्टिगत करने हेतु कार्तिक-पौर्णमासी का वह शारदीय चंद्र² अपनी शुभ्र धवल ज्योत्सना को फैलाये भू-मण्डल की शोभा का निरीक्षण कर रहा था। शुभ्र चन्द्रिका में मन, वचन काया को शुभ्र बनाने वाले वहाँ के निवासियों के मन में एक ही चिन्तन गतिमान था कि आज रात्रि का अवसान होने पर प्रातःकाल भुवन भास्कर के उदित होने पर, भगवान महावीर यहाँ से विहार करके अन्यत्र पधार जायेंगे। क्योंकि वर्षावास की पूर्णता के पश्चात् साधुओं को उस स्थान से अन्यत्र विहार करना अनिवार्य होता है। जैसे नील-भ्रमरी की दृष्टि एक क्षण के लिए कहीं नहीं ठहरती वैसे ही मार्गशीर्ष माह का प्रारंभ होते ही श्रमण-वर्ग सुखपूर्वक ग्रामानुग्राम विहार करने हेतु तत्पर बनकर, अप्रतिबद्ध³ विहारी बन जाते हैं। वे बिना कारण एक रात्रि भी वहाँ नहीं रुकते।⁴ निर्मल नीर की भाँति स्वच्छ महाव्रतों के पालन के लिए विहार संजीवनी बूटी है, इसलिए श्रमण अनियतवासी⁴ होता है। विभिन्न स्थानों पर ऊँच-नीच और मध्यम कुलों से भिक्षा ग्रहण करने का प्रसंग बनता है।⁵ अल्प-उपधि⁶ रखता है क्योंकि सारी नेश्राय⁷ की उपधि का स्वयंमेव ही वहन करना होता है। यह विहार ममत्वत्यागी साधुओं को वीतराग भावों की यात्रा करवाता है। तब क्या.....न ही विहार रुक सकता है और न हमारा मन.... कैसे समझायेंगे इस मन को..... ? महासागर में उठने वाली लहरों की भाँति मन के भावों को विराम देना कठिन-सा लगता है। चाह माह का यह वर्षावास चार पल-सा अतिशीघ्र व्यतीत हो गया है। कितना मनोहर समय था कि निरन्तर अमृतवाणी के वर्षण से ओतप्रोत बनकर हमारा हृदय हराभरा बन तरु-पल्लवों⁸ की भाँति लहराता रहता था। वह जिनवाणी....वह गीर्वाणी....जो प्रज्ञा में उत्पन्न विकारों को दूर कर विचारों को निर्विकार बना देती थी, वह सुन्दरवाणी....जो कषाय से अनुरंजित आत्मा को निष्कषाय बनने की सतत् प्रेरणा देती थी। वह पीयूषवर्षिणी⁹ वाणी....जो

1. बादल मुक्त, स्वच्छ 2. शरद ऋतु की चांदनी 3. अनासक्त 4. एक स्थान पर नहीं रहने वाला 5. वस्त्रपात्रादि 6. अधिकार 7. वृक्षों के पत्ते 8. अमृत बरसाने वाली

कामादि से मृतप्रायः बने भव्यों के मनोभावों को शील के सर्वोच्च शिखर पर स्थापित कर देती थी। वह सत्य वाणी....जो दुराचार और अनाचार के द्वार को बन्द कर सत्य और सदाचार के सुदृढ़ परकोटों में प्रवेश करा देती थी। वह सौम्य वाणी जो खून से लथपथ हिंसक-हथों से नंगी तलवार और छुरियाँ छुड़ाकर अहिंसा पथ पर चलने के लिए सहर्ष तैयार करा देती थी। वह दिव्य वाणी....जो पापों के रास्ते से हटाकर निर्जरा मार्ग की अनुगामी बना देती थी। वह वीतराग वाणी.....जो अनन्त काल की वैर परम्परा का समूल नाश कर निर्वैर भाव को अन्तर-आत्म में जागृत कर देती थी। अहा! क्या वह शीतल वाणी.....जो श्रवण मात्र से उतस¹ मन में शीतलता का निर्मल-निर्झर बहा देती थी, क्या वे चिन्ताकर्षक² वचन थे!.....जिनको आचरण में लाने पर अनन्त भवों के उपार्जित अशुभ कर्म जैसे ही आत्मा से दूर हो जाते हैं जैसे हंस की चोंच से नीर और क्षीर पृथक्-2 हो जाते हैं। क्या वह समवसरण का दृश्य होता था, भवनवासी, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक ये चारों जाति के इन्द्र, देव-देवियाँ अपने-2 परिवार सहित वाणिज्य-ग्राम में आकर अत्यन्त श्रद्धा-भक्ति से देशना श्रवण किया करते थे। क्या वह अलौकिक नजारा था, जहाँ जन्मजात वैर-परम्परा का विस्मरण कर सिंह-बकरी एक साथ उस अर्धमागधी भाषा³ की पावन देशना का लाभ लिया करते थे। किसी ने उस दिव्य देशना से अपने अनेक जन्मों और जीवन का संशोधन कर अपने को चरमशरीरी बना लिया, किसी ने अपने आपको एकाभवतारी, किसी ने अपने आपको महाव्रतधारी और किसी ने अपने आपको बारह व्रतधारी श्रावक, तो किसी ने अपने आपको सुलभबोधि बना लिया। वे क्या दिन थे, जो ज्ञान के प्रकाश से समस्त भव्यों का पथ आलौकित करते थे। क्या वे धर्मानुरंजित यामाएँ⁴ थी....जो तमस⁵ में भी आलोकपुञ्ज⁶ से अभिभूत बन धर्म-जागरणा के लिए आह्लाद पैदा करती थी। क्या वह आत्मिक उत्थान का स्वर्णिम अवसर था....जो भव-अटवी⁷ को पार करने में सेतु रूप बन गया। कितनी महान् पुण्यशाली है यह भूमि....जहाँ सिद्धिसौध⁸ की यात्रा करवाने वाले स्वयं तीर्थपति भगवान् महावीर पधारे। वाणिज्य ग्राम पधारने के लिए कितना सुदीर्घ विहार.... ? पहले उदायन राजा की प्रव्रज्या⁹ हेतु चम्पा से वीतिभय नगरी भीषण गर्मी में पधारे और पुनः उदायन राजा को प्रव्रजित कर यहाँ जनता पर उपकार करने हेतु वीतिभय से पुनः

1. तपे हुए, उब्धि 2. मन को अच्छे लगने वाले 3. एक प्रकार की भाषा जिसमें भगवान् उपदेश देते हैं। 4. रात्रियाँ 5. अंधकार 6. प्रकाश का समूह 7. संसार-समुद्र 8. मोक्ष महल 9. दीक्षा हेतु

वाणिज्य ग्राम....। भीषण गर्मी में हजारों किलोकोस की यात्रा.... कितने भीषण उपसर्ग¹ और परीषहों² से भरा मार्ग....। लम्बे-2 विहार और क्षुधा³ तृषा⁴ का भीषण परीषह....कहीं पानी मिला तो अन्न नहीं और कहीं अन्न मिला तो पानी नहीं, तिस पर उफ वह ग्रीष्म की प्रचंडता....सूर्य की वे तीक्ष्ण किरण....जो धरती को आग का गोला बना रही थी.....वह गर्म बालू मिट्टी.....जिस पर एक पैर रखना भी शक्य नहीं.....वह प्रचंड ताप जिसमें मानव तो क्या पक्षी भी अपने आवास से बाहर नहीं निकलते.....उस भीषण गर्मी के विशिष्ट परीषहों को सहन करते हुए भगवान महावीर पाद-विहार करते हुए वाणिज्य ग्राम पधारे। चार माह तक कोष्ठक चैत्य में विराजे.....लेकिन कल का प्रभात....प्रातःकालीन बेलाएँ क्या संदेश ला रही है? भगवान विहार करके पधार जाएंगे।

जब प्रभु यहाँ पधारे, तो कोष्ठक चैत्य आनन्द की उर्मियों⁵ से अठखेलियाँ करने लगा था। चहुँओर धर्म-ध्यान, त्याग-तप की धूम मच गयी थी, मानों पूरी नगरी तपस्विनी बनकर भगवान का स्वागत कर रही हो लेकिन आज....आज....पावस प्रवास की यह अन्तिम राका⁶....मन को....खिन्न बना रही है....जैसे ही प्रातःकाल मरीचिमाली⁷ अपनी सिन्दूरी आभा⁸-विकीर्ण⁹ करता हुआ जनजीवन में जागरण का सन्देश लायेगा और तमसावृत्त¹⁰ जग को नयी रोशनी प्रदान करेगा, तब देवाधिदेव भगवान महावीर वाणिज्य ग्राम....से विहार....कर देंगे? धर्म का वह अद्भुत नजारा वैसे ही आगोश¹¹ में खो जायेगा जैसे चित्रपट पर उभरते ललाम¹² दृश्य पलभर में ही नयनों से ओझल हो जाते हैं। वाणिज्य ग्राम की धर्म परायण जनता विरह व्यथा से संत्रस्त¹³ थी। वहाँ निद्रा में भी जागरण-सा वातावरण परिलक्षित हो रहा था।

समय तो तरकश से निकले तीर की तरह हृदय को विदीर्ण करता हुआ व्यतीत होने लगा। भोर का तारा उगकर सूत्र पौरसी के समय का संसूचन करने लगा। आत्म साधना में निरत भव्यात्माएँ स्वाध्याय की ऊर्जा से स्वयं को अनुप्राणित करने लगीं। शनैः शनैः दिवाकर ने उदयाचल पर आकर अपनी आभा को भूमि पर प्रसृत¹⁴ करना प्रारंभ किया और भगवान....अपने विशाल शिष्य समुदाय सहित सुखपूर्वक विहार करते हुए वाणिज्य ग्राम के कोष्ठक चैत्य से निकलकर वाराणसी^{१५} की ओर पधारने लगे। अश्रु-पूरित,

1. उपसर्ग- देव-कृत उपद्रव 2. परीषह- जो सब ओर से सहन किये जाते हैं। 3. भूख 4. प्यास 5. लहरें 6. रात्रि 7. सूर्य 8. शोभा 9. फैलाता 10. तमसाव्रत-अंधकार से युक्त 11. आगोश-खामोशी 12. ललाम-सुन्दर 13. संत्रस्त-ब्याकुल 14. प्रसृत-फैलाना

व्यथित, स्तब्ध¹ और अनमने मन से विदाई देते हुए वहाँ के लोगों का हृदय टूक-टूक हुआ जा रहा था। दावानल और बड़वानल तो जल भी जाते हैं और बुझ भी जाते हैं, परन्तु विरह की अग्नि तो निरन्तर जलती रहती है, मन को सालती² रहती है। वह प्रचुर धन-सम्पदा से युक्त व्यक्ति को भी दीन बना देती है और तब वह...सबकुछ खोकर अभीष्ट³ को प्राप्त करना चाहता है। वाणिज्य ग्राम की सारी जनता का हृदय टूक-टूक हुआ जा रहा था। भारी कदमों से सब प्रभु का अनुगमन कर रहे थे। सरहद⁴ तक पहुँचकर सबने अपने कदमों को ऐसे थाम लिया, जैसे नदी के पानी को तट अपनी सीमा में आबद्ध⁵ कर लेता है। भगवान महावीर आगे-आगे पधारने लगे और भक्ति से भाव-विभोर जनसमूह उन्हें अपलक⁶ निहारने लगा। निहारते-2 जब वह मनोज्ञ, मनोरम, सौम्य छवि दृष्टिपथ से ओझल हो गयी, तो अमनस्क बनकर पादप⁹ की भाँति मानों स्थिर से बन गये। उतने में ही किसी ने दबे स्वर से कहा चलो-चलें। सबका ध्यान टूटा और सभी अपने-2 घरों में लौट आये। मन के चित्रपट पर स्मृतियों के वे पावन दृश्य अंकित कर सब उसी में मानो ऐसे डूब जाना चाहते हैं, जैसे मीन जल में डुबकियाँ लेकर आनन्द का अनुभव करती है। प्रेम का वह अटूट बन्धन अनन्तता को छू लेना चाहता था, जिसे प्राप्त कर और कुछ पाने की समीहा नहीं रह जाती। इन्तजार था, उन्हीं पलों का....। भगवान महावीर निरन्तर वायु के समान लघुभूत¹⁰ होकर ग्रामानुग्राम विचरण कर रहे थे। हेमन्त ऋतु की मन्द-मन्द शीतल समीर शीतऋतु के आगमन की सूचना दे रही थी। मेघाच्छादित¹¹ नभ में सूर्य आँख मिचौली खेल रहा था। कहीं सुनहली धूप बालू-रेत पर छिटककर उसे अपनी सुनहरी किरणों से चमकाकर मृग-मरीचिका का दृश्य समुपस्थित कर रही थी तो कहीं निभृत¹² लता में समीर अपना नीड़ खोज रहा था। कहीं शीत से ठिठुरते हुए खग वृन्द¹³ अपने-2 घोंसलों में चुप्पी साधे बैठे थे, तो कहीं चीं-चीं की आवाज करते चाष¹⁴ पक्षी अपने नीले पंख फैलाये आकाश की नीलिमा को पराजित कर रहे थे। कहीं छोटे-2 जलाशय के घटों पर स्नान, वस्त्र-प्रक्षालन¹⁵ करने आये हुए नरनारी भगवान को देखकर मानो सबकुछ भूल ही गये थे और चिंतन करने लगे कि ऐसा अप्रतिम¹⁶ सौन्दर्यवान। पुरुष हमने पहले कभी देखा है। नहीं.....नहीं.....जिनका आत्मिक-वैभव

1. स्तब्ध-शांत 2. सालती-खिन्न करना 3. इच्छित 4. सीमा 5. बांधना, समेटना 6. बिना पलक झपकाये 7. जो मन को सुन्दर प्रतीत होता है। 9. वृक्ष 10. हल्के 11. बादलों से ढका हुआ 12. शांत, एकान्त 13. पक्षी समूह 14. नीलकण्ठ 15. वस्त्र धोना 16. अप्रतिम-अनन्य

सम्पूर्ण भू-मण्डल के वैभव को परास्त कर रहा है। जिनके कदम धरती पर गतिशील पदमों का सृजन कर रहे हैं, जिनके नयन-युगल की आभा अपलक देखने योग्य है। चित्रपट की भाँति निस्तब्ध बने वे सब स्त्री-पुरुष देखते ही जा रहे थे और प्रभु उनके दृष्टिपथ से ओझल होते जा रहे थे। विहार यात्रा गतिमान थी। शीत ऋतु का प्रकोप निरन्तर बढ़ रहा था। बर्फीले स्थानों और शैल-मालाओं¹ पर तुषारापात² होने से ठिठुरन बढ़ गयी थी। लोगों ने अपने ऊनी वस्त्र निकालकर शरीर को आच्छादित करना प्रारंभ कर दिया था। झुग्गी-झोंपड़ियों में रहने वाले वस्त्रों के अभाव से ग्रसित ग्रामीण-जन घास को प्रज्वलित कर अपने शरीर को ताप रहे थे। गायों, बकरियों और भेड़ों का समूह भी ठिठुरन दूर करने के लिए आतप का आसेवन कर रहा था। ठंड से कराहते पक्षी अपने नीड़ों से निकलकर धूप का आसेवन कर प्रसन्नता से उन्मुक्त होकर गगन में उड़ते हुए दिशाओं को गुंजायमान कर रहे थे।

लेकिन ऐसे सिरहन भरे मौसम में भगवान निर्वस्त्र बने शीत परीषह पर विजय प्राप्त कर रहे थे और सौम्य समभाव से निरन्तर विहार यात्रा कर रहे थे। कहीं खेतों में धान¹ की फसलें अपने यौवन के उत्कर्ष को प्राप्त कर लहलहाती हुई भगवान का स्वागत कर रही थी, तो कहीं ऊँची-नीची घाटियाँ जीवन के आरोह-अवरोह को प्रदर्शित कर रही थी। कहीं शाल के घने जंगल दिन में भी यामा³ की विकरालता को धारण किये हुए थे, तो कहीं आम्रवृक्षों पर आने वाले नवीन-कोमल पल्लव झूम-झूम कर मानो प्रभु का स्वागत कर रहे थे। कहीं शुकों⁴ का समूह पंख फैलाये आकाश में उड़ान भर कर भगवान को देखकर तृप्त सा बन रहा था, तो कहीं बया अपने घोंसले से बाहर आकर भगवान के दर्शन कर रही थी। कहीं गायों का समूह गोचर-भूमि में जाता हुआ, भगवान को निहार कर शांति की सरिता में अवगाहन कर रहा था तो कहीं पर शकटों⁵ में जुते हुए भैंसे आँखों से अश्रू छलकाते हुए, भार ढोते हुए प्रभु के समक्ष अपनी व्यथा की कथा सुना रहे थे, तो कहीं बछड़ों का समूह आवाज करता हुआ भगवान् का स्वागत कर रहा था।

धर्म-प्रदीप :

भगवान के निरन्तर सामीप्य को प्राप्त करती हुई बनारस¹¹ नगरी का भाग्योदय

1. पर्वत-पंक्तियाँ 2. बर्फ-गिरना 3. यामा-रात्रि 4. शुकों-तोते

होने वाला था। जाह्नवी¹ के तट पर बसा यह नगर अध्यात्म, धर्म एवं क्रियाकाण्ड के लिए पुरातन काल से विख्यात रहा है। भगवान पार्श्वनाथ की जन्मस्थली इस नगरी में उस समय भी क्रियाकाण्ड करने वाले बाल तपस्वी विविध प्रकार की तपस्या करते हुए गंगा के तट पर डेरा डालते थे। कोई तपस्वी अज्ञानवश मात्र फल-फूल भक्षण कर वृक्षों पर उल्टा लटककर तप करता था, तो कोई धूनी तपाकर पंचाग्नि-तप किया करता था। कोई स्नान, हवन और पूजन को मोक्ष का हेतु बतलाया था तो कोई जटा बढ़ाकर आतापना लिया करता था। इस प्रकार अनेक प्रकार से अज्ञानयुक्त तप की परम्परा प्रचलित थी, जिसमें अहिंसा के स्थान पर हिंसा की प्रतिष्ठा थी।^{III} तब भी जन मानस पर उसका व्यापक प्रभाव था, क्योंकि चमत्कार में विश्वास रखने वाले मूढ़-जन हिंसा में भी धर्म मान लिया करते हैं और अबोध-मूक प्राणियों के प्राणों का हरण किया करते हैं।

महापुरुष समय-2 पर इन मोक्ष-मार्ग विरुद्ध मान्यताओं का निराकरण कर अहिंसा-मय धर्म की प्रतिष्ठा करते हैं। भगवान पार्श्वनाथ ने भी कुमार अवस्था में ऐसा ही आदर्श उपस्थित किया था।^{III} जिस समय राजकुमार पार्श्वनाथ, महाराजा अश्वसेन और महारानी वामादेवी के असीम प्यार और वात्सल्य की छाँव में तरुणाई की देहली पर कदम रखे जीवन की अतल गहराईयों में प्रवेश कर रहे थे, उसी समय एक दिन महल के झरोखे में बैठे हुए राजकुमार पार्श्व वाराणसी की छटा का अवलोकन कर रहे थे। तब उन्होंने देखा कि महल के समीप से गुजरते हुए मार्गों से सहस्रों नर-नारी पत्र, पुष्प, अर्चादि सामग्री लिए उमंग से उल्लसित होते हुए एक ही दिशा में चले जा रहे थे। उन्हें देखकर कुमार पार्श्व ने चिन्तन किया कि आज नगर में क्या कोई उत्सव या महोत्सव है, जिस कारण झुण्ड-के-झुण्ड लोग एक ही दिशा में एक जैसी सामग्री लिए चले जा रहे हैं? अपनी इस जिज्ञासा का समाधान करने के लिए कुमार ने अनुचर को बुलाया और पूछा कि आज नगर में कौन सा उत्सव या महोत्सव है कि नागरिक जन अर्चा³ की सामग्री लिए एक ही दिशा में प्रस्थान कर रहे हैं।

अनुचर- स्वामिन्! आज कोई उत्सव या महोत्सव नहीं है।

कुमार पार्श्व- तो क्या है?

अनुचर- नगर के उद्यान में एक कमठ नामक बहुत बड़ा तपस्वी आया है। वह

1. जाह्नवी-गंगा 2. शकट-गाड़ी 3. अर्चा-अर्चना/पूजा

गंगा-तट पर सदैव पंचाग्नि तप तपा करता है। ये समस्त नागरिक उसी की सेवा-अर्चा के लिए जा रहे हैं।

इसी समय माता वामादेवी का सन्देश लेकर एक अनुचर कुमार पार्श्व के पास आया और बोला- राजकुमार की जय हो। महारानी का आदेश है कि गंगा-तट पर जाने के लिए रथ तैयार किया जाये।

राजकुमार पार्श्व (अनुचर से)- ठीक है। मातुश्री की आज्ञा शिरोधार्य है। अभी रथ तैयार करवाते हैं।

कुमार ने रथ को तैयार करवाया। तीर्थंकर भगवान विनय की साक्षात् प्रतिमूर्ति होते हैं। वे माता-पिता के वचनों का कभी प्रतिकार नहीं करते क्योंकि जो जितना ज्ञानवान होता है, उतना ही विनयवान होता है। जो अत्यन्त विनयवान होता है वही महान् और भगवान होता है। अत्यन्त आदर से माँ के वचनों को स्वीकार कर असत्य पर सत्य की विजय प्राप्त करने अहिंसा से हिंसा को पराजित करने माँ के साथ अश्वरथ पर बैठकर गंगा-तट पर चले गये। ऐसा उल्लेख मुनि हीरालालजी ने अपने पार्श्वनाथ चौक में किया है, लेकिन चउपन्न महापुरिस चरियं, सिरिपासनाह चरिउं, उत्तर पुराण और त्रिषष्टिशलाका पुरुष चारित्र में ऐसा उल्लेख मिलता है कि जैसे ही राजकुमार पार्श्व ने अनुचर से कमठ तापस के आने की वार्ता जानी, तब उन्होंने हिंसा का प्रतिकार करने और प्राणियों पर दया करने के निमित्त कमठ के पास जाने का निश्चय किया और अपने इसी निश्चय के कारण वे अश्वरथ पर बैठकर कमठ तापस की धुनी पर पहुँच गये।¹¹¹

राजकुमार पार्श्व रथ से नीचे उतरे उस समय कमठ तापस भरपूर नशे में झूम रहा था। उसके सिर पर लम्बी-2 जटाएँ मुकुट के समान प्रतीत हो रही थी। नशीली रक्तिम डरावनी बड़ी-2 आँखें दिनकर की लालिमा पर विजय प्राप्त कर रही थी। चेहरे पर क्रोध की रेखाएँ उभर रही थी और वह तापस धुनी लगाये पंचाग्नि-तप तप रहा था। मस्तक पर सूर्य की तीक्ष्ण किरणें पड़ रही थीं। उसके चारों ओर अग्नि की ज्वालाएँ प्रज्वलित हो रही थीं। भक्तजन फल-पत्र-पुष्प दुग्धादि चढ़ा रहे थे और प्रसाद ग्रहण कर खुशी का अनुभव कर रहे थे।

कुमार पार्श्व बहुत गौर से ये सब दृश्य देख रहे थे। उनकी करूणामय अहिंसा की दृष्टि धुनी में जल रहे लक्कड़ पर जा टिकी। उन्होंने अपने अवधिज्ञान से जाना कि लक्कड़ में नाग-नागिन का जोड़ा जल रहा है, तब चिन्तन करने लगे। हा! हा! यह

अत्याचार, यह हिंसा! यह प्राणिवध! तप के नाम पर निरीह मूक प्राणियों की हत्या! अरे यह सब क्या? धर्म के नाम पर अधर्म! तप के नाम पर प्राणों की लूट! कुमार के मन में करूणा का निर्झर फूट पड़ा और कमठ तापस के पास जाकर कहा अरे! तुम यह क्या अकार्य कर रहे हो? धर्म के नाम पर अग्नि प्रज्वलित कर प्राणियों का विनाश कर रहे हो? करूणा के स्थान पर तुम्हारी क्रूरता ही नजर आ रही है। दया तो मानो हृदय से विलुप्त हो गयी है। अरे! इस लक्कड़ में जिन्दा नाग-नागिन का जोड़ा जल रहा है। तुम.....तुम ऐसा अकार्य मत करो।

कुमार की बात श्रवण कर कमठ तापस का क्रोध भड़क उठा। वह आगबबूला होकर कुमार से कहने लगा- अरे महलों में रहने वाले राजकुमार! तुम धर्म, अधर्म को क्या जानते हो? धर्म का मर्म हम तपस्वी ही जान सकते हैं। तुम जैसे राजकुमार का काम तो केवल घूमना, फिरना और मौज-मस्ती में रहना है, इसलिए व्यर्थ की बात करने में कोई सार नहीं है। यदि तुम अपने आपको इतना ही ज्ञानी मानते हो तो क्यों नहीं इस धुनी में से जलते हुए जीव को निकालकर दिखला देते हो?

राजकुमार धैर्यपूर्वक सब श्रवण कर रहे थे। उन्होंने सेवकों को आज्ञा दी अग्निकुण्ड में से जलते हुए उस लक्कड़ को निकालकर लाओ। आदेश प्राप्त करते ही सेवक तत्क्षण ही अग्निकुण्ड के समीप पहुँचे और जलते हुए उस लक्कड़ को निकालकर बाहर लाये। कुमार ने सेवकों द्वारा उस लक्कड़ को सावधानी पूर्वक चिराया तो जलता हुआ एक विशालकाय नाग उस लक्कड़ में से निकला। वह नाग संपूर्ण गात्र में जलन होने से पीड़ा से व्याकुल हो रहा था, छटपटा रहा था। कुमार पार्श्व अपनी करूणा भरी आँखों से उसे निहार रहे थे और उन्होंने सेवकों को आदेश दिया कि तुम इनको नमस्कार महामंत्र सुनाओ एवं पच्चक्खण कराओ। तब सेवकों ने उसे नवकार मंत्र सुनाया और प्रत्याख्यान कराये। नवकार मंत्र को श्रवण करते ही उसके मन में श्रेष्ठ परिणाम आने लगे। वह विशुद्ध भावों से नवकार मंत्र सुनने लगा और कुमार पार्श्व की कृपामय दृष्टि से शांति का अनुभव करने लगा। जैसे-2 वह अद्वितीय आभामंडल वाले कुमार पार्श्व को निर्निमेष' दृष्टि से निहारता गया वैसे-2 उसका आर्त्त-ध्यान तथा रौद्र ध्यान दूर होते गया। शुभ भावों में सुस्थित बना वह अपने जीवन की अन्तिम घड़ियों को व्यतीत करने लगा। क्रमशः आयुष्य के समाप्त होने पर वह नागराज भवनवासी देवों में 'धरणेन्द्र' नामक इन्द्र के रूप में उत्पन्न हुआ। इस प्रकार कुमार पार्श्व ने नाग का उद्धार कर अहिंसा धर्म की प्रतिष्ठा की और वाराणसी में धर्म का दीप प्रज्वलित किया।

उसी वाराणसी में धर्म की गंगा बहाने हेतु भगवान महावीर पधार रहे थे। जहाँ पर अभी भी सत्य एवं अध्यात्म के उपदेशकों की जरूरत है। ब्रह्ममुहूर्त से संध्या-बेला तक गंगा-घाटों पर निरन्तर यात्रियों का आवागमन जारी रहता है। भयंकर कोलाहल एवं भीड़ में अनेक लोग घाटों पर आकर हिंसात्मक अनुष्ठान करते रहते हैं।

वे अज्ञान से मूढ़ बने ऐसा सोचते रहते हैं कि गंगा मैया की शरण में अनुष्ठान करने से गंगा हमारे सभी पापों को धो डालेगी। बाँस की छत्रियों के नीचे कई पंडित इन भक्तों को पूजा करवाने के लिए तत्पर रहते हैं। आज भी वहाँ अज्ञान तप का विशेष बोलबाला है।

चार किलोमीटर तक फैले यहाँ के विशाल घाट पर नवोदित सूर्य की किरणें जल-लहरों से अठखेलियाँ करती एक किनारे से दूसरे किनारे तक पहुँच जाती हैं। वरूण-नदी जहाँ से गंगा में प्रवेश करती है, वहाँ से घाट शुरू होता है और जहाँ उसी नदी प्रवेश करती है वहाँ घाट समाप्त हो जाते हैं। वहाँ पर लगभग 100 घाट हैं। वहाँ के दशवामेघ घाट के पास विश्वनाथ गली तथा चौक में कपड़े और बर्तनादि के कलात्मक कारीगरी सामान खरीदने व्यापारी वर्ग का आवागमन होता ही रहता है। वहाँ से 14 कि.मी. पर 'सारनाथ' है, जहाँ महात्मा बुद्ध ने 2500 वर्ष पहले अपना प्रथम प्रवचन दिया था।

उसी वाराणसी के भव्य-जीवों का उद्धार करने के लिए भगवान महावीर पधार कर 'कोष्ठक चैत्य' में ज्ञान, दर्शन और चारित्र्य से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विहरण करने लगे। भगवान के पधारने पर देवों ने समवसरण की रचना की तब पूरी नगरी में यत्र, तत्र, सर्वत्र एक ही चर्चा होने लगी कि भगवान महावीर कोष्ठक चैत्य में विराजमान है। हमें भगवान के दर्शन, वन्दन और प्रवचन श्रवण करने हेतु चलना है। वहाँ का राजा जित शत्रु भी भगवान के पदार्पण के समाचार श्रवण कर अत्यन्त हर्षित और संतुष्ट हुआ और वह भगवान की अमृत-देशना को श्रवण करने हेतु अपने पारिवारिकजन समुदाय के साथ निकलता हुआ भगवान महावीर के पास पहुँचा, तीन बार वन्दन कर वह भगवत्-चरणों में बैठ गया।

वाराणसी नगरी अनेक श्रेष्ठी और साहुकारों की नगरी थी। जहाँ ऋद्धि, समृद्धि सम्पन्न अनेक श्रेष्ठी निवास करते थे। वहाँ चुलनी पिता नामक एक गाथापति² भी निवास करता था, वह अत्यन्त समृद्ध एवं प्रभावशाली था। उसका वाराणसी में इतना जबर्दस्त प्रभाव था कि वह किसी से पराजित नहीं होता था। वह अनेक एश्वर्यशाली राजा, मंत्री

1. निर्निमेष-एकटक 2. सदृहस्थ

आदि एवं नागरिकजनों को सभी कार्यों में सत्परामर्श देता था।

उसकी श्यामा नामक पत्नी थी, जो सदैव अपने पति के अनुकूल चलकर समाधि बनाये रखने में सतत् सहयोग प्रदान करती थी। जैसा कार्य चुलनी पिता को अभीष्ट था, वैसा ही कार्य वह करने में अनुरक्त¹ रहती थी।

चुलनी पिता के पास चौबीस करोड़ की सम्पत्ति थी। आठ करोड़ स्वर्ण मुद्राएँ स्थायी पूँजी के रूप में उसके खजाने में थी, आठ करोड़ स्वर्ण मुद्राएँ व्यापार-व्यवसाय में लगी हुई थी तथा आठ करोड़ स्वर्ण मुद्राएँ धन, धान्य, द्विपद² चतुष्पद³ आदि साधन-सामग्री में लगी थी। अस्सी हजार गायों के आठ गोकुल उसके पास थे। उसकी व्यापार-व्यवस्था इस प्रकार थी कि कदाचित् व्यापार में घाटा भी लग जाये तो खजाने से पूर्ति हो सकती थी क्योंकि जितना धन व्यापार में लगा था, उतना ही धन खजाने में भी था।

चुलनी पिता जितना धन-सम्पन्न था, उतना ही धर्म-श्रद्धा सम्पन्न भी था। उसे जैसे ही पता लगा कि भगवान महावीर पधारे हैं, तब उसके मन में चिन्तन उभरा कि अरिहन्त भगवान का नाम-गोत्र श्रवण करना भी दुर्लभ है तो फिर उनके सन्मुख जाना, वन्दन करना, नमन करना, जिज्ञासा करना और पर्युपासना करना आदि का तो कहना ही क्या? ऐसे महापुरुषों के मुखारविन्द से एक सद्धर्ममय सुवचन श्रवण करना भी महान् है, तो फिर विपुल अर्थ सुनने की तो बात ही क्या? इसलिए अच्छा यही है कि मैं भी श्रमण भगवान महावीर के पास जाऊँ और भगवान को वन्दन, नमन कर उनका सत्कार⁴ सम्मान⁵ करूँ। भगवान कल्याण रूप, मंगल रूप, देवरूप, ज्ञानरूप हैं अतः मैं उनकी पर्युपासना⁶ करूँ।

ऐसा चिन्तन करके चुलनी पिता ने स्नान किया।^{VIII} शुद्ध एवं धार्मिक स्थल पर पहनने योग्य वस्त्राभूषणों से शरीर को अलंकृत किया और अपने घर से निकला एवं निकलकर कोरंट पुष्पों की माला से संपृक्त⁷ छत्र धारण कर अनेक पुरुषों से घिरा हुआ, पैदल ही चलता हुआ वाराणसी के बीचोंबीच होकर जहाँ कोष्ठक चैत्य था, जहाँ भगवान महावीर विराजमान थे, वहाँ पहुँचा और पहुँचकर तीन बार आदक्षिणा-प्रदक्षिणा की तथा वन्दन, नमस्कार करके पर्युपासना करने लगा।^{IX}

तत्पश्चात् भगवान महावीर ने जितशत्रु राजा, चुलनी पिता, प्रमुख विशाल

1. लगे रहना 2. दास-दासी आदि 3. गाय भैंस आदि चार पैर वाले 4. आदर करना 5. सम्मान-ईज्जत करना/कद्र करना 6. परिपूर्ण उपासना 7. युक्त

परिषद् को धर्मोपदेश देना प्रारंभ किया।^X उस धर्मोपदेश को श्रवण करने के लिए अतिशय ज्ञानी, वाक्संयमी, चारित्र धर्म में निरन्तर प्रयत्नशील श्रमण एवं विशाल संख्या में देवगण और बहुत बड़ी तादाद में श्रोतागण उपस्थित थे।^{XI}

पाठकगण विचार करें- भगवान महावीर सांसारिक दुःखों का बोध करवाते हुए सारगर्भित उपदेश फरमा रहे हैं।^{XII}

हे भव्यों! यह संसार दुःखों की भीषण आग से झुलस रहा है। यहाँ विभिन्न प्रकार के कष्टों के कांटे बिखरे हुए हैं, जिनकी चुभन से आत्मशक्ति छिन्न-भिन्न बन रही है। इस संसार में मनोनुकूल होना दुर्लभ है, तो मनःप्रतिकूल का नहीं होना और भी दुर्लभ है। संसार के समस्त पदार्थ जिन्हें हम सुख रूप मानते हैं वे देखने में सुख पैदा कर रहे हैं लेकिन वास्तव में दुःखों की भीषण परंपरा का पोषण कर रहे हैं। पदार्थों के प्रति लोलुपता ही असमाधि का कारण है। जिस शरीर के प्रति सघन मोह के कारण इसका परिपोषण हिंसात्मक तरीके से कर रहे हैं वही शरीर दुःखदायी बन जाता है, जब वह रोगों और दुर्बलताओं से घिर जाता है।^{XIII}

जिन परिजनों को तुम अपना मान रहे हो वे तुम्हारे अपने नहीं हैं,^{XIV} यह तो एक मात्र सपना है, जो समय के साथ क्षत-विक्षत हो जाने वाला है। आत्मा तो एक मात्र अकेला है। वह अकेला आता है, अकेला जाता है, अकेला दुःख पाता है और अकेला ही दुःखों से मुक्त बनता है।^{XV} इसी आत्मतत्त्व की पहचान करना ही भव्यों का लक्ष्य होना चाहिए। जिसने अपने आपको जान लिया उसने सबको जान लिया और जिसने सबको जान लिया उसने अपने आपको जान लिया है। वह श्रेष्ठ आत्मयात्री है जिसने सार और असार तत्त्वों का ज्ञान कर ज्ञाता-द्रष्टा¹ भाव को स्वीकार कर लिया है।

ऐसा मेधावी पुरुष अनेक दुःखों का क्षय कर जन्म-मरण से रहित होकर अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है।

हे भव्यों! तुम जानो कि इस संसार में जन्म, जरा और मरण का भयंकर दुःख प्रत्येक प्राणी मात्र को दुःखित करता रहता है। यहाँ संयोग और वियोग की चंचल लहरें जीवन को अस्त-व्यस्त बना देती हैं। चिन्ता की चिताएँ निरन्तर जलकर राग-द्वेष की परम्परा का पोषण करती रहती हैं। करुणा-जनक विलाप और लोभ से मूढ़ आत्माएँ यत्र-तत्र परिभ्रमण करती रहती हैं। जीवन पर्वतीय घाटियों के समान कभी सत्कार-

1. ज्ञाता द्रष्टा-जानना, देखना

सम्मान की ऊँचाइयों को तो कभी अवमानना, पराभव, अद्यःपतन की निम्नता को प्राप्त करता रहता है। सदैव बना रहने वाला मृत्युभय निर्भीकता को समाप्त प्रायः कर देता है। जन्म-मरण की विशाल परम्परा अपार दुःख उत्पन्न करने वाली है। यह अपार संसार-समुद्र दुस्तर¹ होने से महान् भय रूप है। अन्तहीन कामनाओं की आँधी अनवरत² चलती रहती है। भोगों की लोलुपता सदाचार को लील देती है। मोह के आवर्तों³ में फँसकर व्याकुल प्राणी दौड़धूप करते हुए अपनी शांति भंग कर देते हैं। प्रमाद का नाग फण फैलाए अनर्थों की खान बना रहता है। अनुपशान्त पाँचों इन्द्रियों के विषय मन, वचन और काया को अत्यन्त क्षुब्ध बनाते रहते हैं। दुःख और कष्टों से भरपूर जीवन में त्राण⁴ और शरण देने वाला कोई नहीं है। हिंसा, असत्य, चोरी, अब्रह्मचर्य और परिग्रह के गुरुत्तर भार से दबे हुए प्राणियों के लिए सुख को पाना अत्यन्त कठिन है। जो जीव यहाँ असंयम में स्थित है, उनको कोई भी आलम्बन, आधार और सुरक्षा का साधन मिलना अत्यन्त कठिन है। यह संसार अज्ञान-अंधकार से परिपूर्ण दुःखी प्राणियों का निवास स्थान है। इस संसार में पापकर्मकारी प्राणी जिस ग्राम-कुल आदि की आयु बांधते हैं वे बन्धु-बान्धवों, स्वजनों और मित्रजनों से रहित होकर उस स्थान में उत्पन्न होते हैं। वे तीव्र-कषायी, धर्मसंज्ञा से रहित, सम्यक् दर्शन से रहित, दरिद्रता के कष्ट से घिरे रहते हैं। वे सदा नौकर-चाकर, कृपण, रंक, दरिद्र ही बने रहते हैं। दूसरों द्वारा दिये गये निस्सार भोजन से पेट भरकर वे अपने दुर्भाग्य को कोसते रहते हैं। मनमानस में उदासी से संलित वे शोक की आग में जलते हुए तिरस्कृत बने रहते हैं। पशुतुल्य बुद्धि वाले वे सदा असफल मनोरथ वाले निराशा से ग्रसित रहते हैं।^{XVI}

तब वह विशाल परिषद भगवान महावीर की इस भव्य देशना को श्रवण कर, हृदय में धारण कर अत्यन्त प्रसन्न हुई। आत्मिक आनन्द प्राप्ति का अनुभव शुभ्र मानसिक भावों से ओत प्रोत होकर हर्षातिरेक से प्रफुल्लित हृदय से अभिभूत हो उठी और उन्हीं आह्लादपूर्ण भावों से तीन बार भगवान महावीर को आदक्षिण-प्रदक्षिणा, वन्दन-नमस्कार किया और कई भव्यात्माएँ आत्म-जागृति के रथ पर आरूढ़ होकर गृहस्थ जीवन का परित्याग कर श्रमण-श्रमणी^{IV} रूप में प्रव्रजित हुई। कईयों ने श्रावक योग्य बारह व्रत^V स्वीकार किये। भक्तिशील श्रद्धालुओं ने भगवान के चरणों में वन्दन-नमस्कार करके निवेदन किया भंते! यह निर्ग्रन्थ-प्रवचन सर्वोत्तम है। त्याग-मार्ग का जैसा उपदेश

1. कठिनाई से तैरने योग्य 2. लगातार 3. जाल 4. रक्षा

आपने दिया वैसा अन्य कोई नहीं दे सकता। सही सत्य-धर्म आचरणीय है। इस प्रकार भगवत्-स्तुति कर परिषद जिस दिशा से आई उसी दिशा में पुनः लौट गयी। नृपति जितशत्रु भी चला गया।

तत्पश्चात् धैर्य की प्रतिमूर्ति चुलनी पिता गाथापति भगवान से धर्म श्रवण कर अत्यन्त हर्षित होकर प्रभु को वन्दन नमस्कार करके कहने लगा-भंते! आप द्वारा प्ररूपित निर्ग्रन्थ प्रवचन ही सत्य, निःशंक है। वही श्रद्धा, प्रतीति¹ एवं रूचि के योग्य है, लेकिन भगवन् जिस प्रकार अनेक राजा, श्रेष्ठ आदि आपके चरणों में मुंडित होकर प्रव्रजित होते हैं, वैसा मेरा सामर्थ्य नहीं है। इसलिए मैं श्रावक योग्य पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत रूप बारह प्रकार के श्रावक धर्म को ग्रहण करना चाहता हूँ।

भगवान- देवानुप्रिय! तुम्हें जैसा सुख हो वैसा करो, परंतु विलम्ब मत करो।

तब चुलनी, पिता ने प्रभु महावीर^{VI} से श्रावक योग्य द्वादश व्रतों को ग्रहण किया और प्रतिज्ञा की आज से निर्ग्रन्थ धर्म के अतिरिक्त अन्य धर्म से सम्बंध पुरुषों को, उनके देवों को, उनके साधुओं को (धर्म मानकर, गुरु बुद्धि से) वन्दन नमस्कार करना, उनसे धार्मिक आलापसंलाप करना, उनको गुरु बुद्धि से चतुर्दश² प्रकार का दान देना ये मेरे लिए करणीय नहीं है। लेकिन राजा, माता-पिता, गुरु आदि का आदेश होने पर या आजीविक संकट में पड़ने से कदाचित् ऐसा करना पड़े तो उसका आगार है।

इस प्रकार का संकल्प-ग्रहण करने के पश्चात् चुलनी पिताजी ने अपने मन में रहे प्रश्न पूछे, भगवान ने उनका समाधान दिया। तब वे प्रसन्न होकर प्रभु को वन्दन नमस्कार करके घर की ओर चले गये।

घर में पहुँच कर अपनी भार्या-श्यामा से कहा देवानुप्रिये! आज मैंने भगवान महावीर से धर्म सुना है, वह धर्म मेरे लिए अत्यन्त इष्ट और रूचिकर है। तुम भी प्रभु के पास जाकर वन्दन-नमस्कार करके उनसे श्राविका योग्य बारह-व्रतों को ग्रहण करो।

जब श्यामा ने ऐसा सुना तो वह अत्यन्त हर्षित सन्तुष्टित होकर अंजलिबद्ध हाथों को जोड़े चुलनी-पिता के कथन को अत्यन्त आदर पूर्वक स्वीकार करती है और सेवकों को आदेश देती है कि तेज चलने वाले, एक जैसे खुर, पूँछवाले, विचित्र-सींगोवाले, गले में सोने के गहने एवं चांदी की घंटियों से युक्त, सोने की तारों के नाथ वाले, अनेक प्रकार की मणियों और सोने की घंटियों वाले श्रेष्ठ लक्षणों वाले युवाब्रैलों से युक्त धार्मिक यान को तैयार कराओ। सेवकों ने आदेश को स्वीकार किया और वैसा ही श्रेष्ठ रथ लाकर

1. विश्वास 2. अशनादि चौदह प्रकार का दान जिनका विवरण आगे है।

उपस्थित किया। श्यामा ने स्नानादि करके वस्त्राभूषणों से देह को अलंकृत किया और दासियों के समूह से परिवृत्त होकर रथ पर आरूढ़ होकर भगवान के पास पहुँची। वन्दन-नमस्कार करके धर्म श्रवण करने बैठ गयी।

भगवान ने उपस्थित समूह एवं श्यामा को धर्म देशना दी। श्यामा ने उस धर्म को हृदय में धारण किया। भगवान से बारह व्रत ग्रहण किये और जिस दिशा से आई थी उसी दिशा में लौट गयी। इस दृश्य का समालोकन कर विनय के अणगार गणधर गौतम के मन में चुलनी पिता के व्रत स्वीकार करने के पश्चात् जिज्ञासा उत्पन्न हुई कि चुलनी पिता का भविष्य क्या है? इसी जिज्ञासा का समाधान करने हेतु वे स्वयं भगवान महावीर के पास पहुँचे, उन्होंने भगवान को वन्दन-नमस्कार किया और पूछा- भन्ते! क्या श्रमणोपासक चुलनी पिता आपके सानिध्य में संयम ग्रहण करेगा? भगवान- नहीं। चुलनी पिता श्रमणोपासक बीस वर्ष तक श्रावक धर्म का पालन करेगा, ग्यारह उपासक प्रतिमाओं का भली-भाँति अनुपालन करेगा, अन्त में एक मास की संलेखना-संथारा करके, आलोचना-प्रतिक्रमण करके समाधिपूर्वक देह त्याग कर सौधर्म कल्प¹ के अरूणप्रभ विमान में देवरूप में उत्पन्न होगा। वहाँ श्रमणोपासक चुलनी पिता की आयु चार पल्योपम की होगी।

भगवान से यह श्रवण कर गौतम स्वामी ने वन्दन-नमस्कार किया तथा तप-संयम से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरण करने लगे।

चुलनी पिता एवं उसकी पत्नी श्यामा ने जीवाजीव पदार्थों का अच्छी तरह से ज्ञान प्राप्त कर लिया। निर्ग्रन्थ-प्रवचन के प्रति उनके अस्थि-2, मज्जा-2 में अनुराग भरा था। उनकी जिन धर्म के प्रति इतनी जबरदस्त आस्था थी कि कोई देव, दानव, मानव उनके इस जिनधर्म से डिगा नहीं सकता था। उनके द्वार सदैव दानादि के लिए खुले रहते थे और वह चौदह प्रकार की प्रासुक वस्तुएँ-अशन, पान, खादिम, स्वादिम, वस्त्र, पात्र, कम्बल, पाद-प्रोञ्छन औषध, भैषज प्रतिहारिक (वापिस लौटाने योग्य वस्तु) पाट, बाजोट आदि तथा शय्या-संस्तारक (बिछाने के घासादि) द्वारा श्रमण-निर्ग्रन्थों को प्रतिलाभित करता हुआ अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्या और पूर्णिमा को परिपूर्ण पौषध कर धार्मिक जीवन जीने लगा।¹⁷

टिप्पण-इन्हीं आत्मगुणों से ओतप्रोत होकर चुलनी पिता गाथापति को अनेकविध

1. प्रथम देवलोक

त्याग प्रत्याख्यान सहित बारह व्रत धारण किये हुए 14.5 वर्ष व्यतीत हो गये। वह त्याग की खुशबू से अन्तर मन को महका रहा था, क्योंकि जीवन की यात्रा में त्याग, तप और संयम ही समाधि का द्वार है, वही सब इच्छाओं का अल्पीकरण कर आत्मा को वीतराग बना देता है। ऐसे ही अध्यवसायों से भावित वह धर्म जागरण किया करता था। तब एक दिन अर्धरात्रि के समय धर्म जागरण करते हुए उसके इस प्रकार के मनोभाव उत्पन्न हुए कि कुटुम्ब के मध्य रहते हुए मेरा बहुत सारा समय सामाजिक एवं गृहस्थ सम्बन्धी कार्यों में व्यतीत हो जाता है। इन कार्यों को करते हुए मैं निरन्तर धर्म साधना में निरत नहीं रह सकता, अतः अब मुझे गृहस्थ सम्बन्धी सांसारिक कार्यों से परिपूर्ण निवृत्त होकर धर्म-ध्यान से अपनी आत्मा को भावित करते हुए आत्मोत्थान की दिशा में प्रयाण करना है। ताकि इस दुर्लभ मानव तन की घड़ियों को सार्थक कर सकूँ। कर्म-निर्जरा का विशेष प्रसंग उपस्थित कर अपनी आत्मशक्तियों का प्रकटीकरण कर सकूँ। मैं प्रातः प्राची के भाल पर सिन्दूरी आभा प्रकट होने पर अपने संपूर्ण स्वजन, परिजन आदि को आमंत्रित करूँगा, उनको आदर-सत्कारपूर्वक भोजन करवाकर आतिथ्य सत्कार का लाभ लेकर अपने ज्येष्ठपुत्र को कुटुम्ब का सम्पूर्ण दायित्व सौंपकर पौषधशाला में जाकर परिपूर्ण धर्मोपासना में समर्पित बनूँगा।

इस प्रकार अपने चिन्तन को संकल्पित करता हुआ निश्चय की ओर गतिमान हुआ और प्रातःकाल उसने सभी ज्ञातजनों, मित्रजनों को आमंत्रण दिया। साथ में दास-दासियों को भी आमंत्रण दिया। दास वर्ग का यह आमंत्रण समाज के श्रेष्ठियों के लिए एक प्रेरणा-दीप है, जो मानवीय भावनाओं के सर्वोच्च शिखर को प्रकाशित करता है कि खुशी के क्षणों में उस भृत्य-वर्ग का विस्मरण न करो, जिनका आपके जीवन के साथ महत्वपूर्ण योगदान है।

आमंत्रण देने के पश्चात् चुलनी पिता ने विशिष्ट सुगन्धित वस्तुओं से संयुक्त खाद्य सामग्री तैयार करवाना प्रारम्भ किया। विपुल मात्रा में खाद्य सामग्री तैयार होने पर वह अतिथियों के आगमन की प्रतीक्षा करने लगा। समय होने पर कोई भाई के साथ, कोई पुत्र के साथ, कोई मित्र के साथ, कोई पौत्र के साथ, कोई पूर्ण परिवार के साथ झुण्ड के झुण्ड बनाकर भोजन के लिए आने लगे। चुलनी-पिता ने सबका सत्कार सम्मान करते हुए उनको मनुहारपूर्वक भोजन करवाया और विपुल मात्रा में पुष्प, माला, वस्त्र, सुगन्धित इत्रादि एवं आभूषणादि देकर अपनी उदार मनोवृत्ति का परिचय दिया। तदनन्तर सभी के

समक्ष अपने पुत्र को बुलाकर उसे सम्पूर्ण कार्यभार सौंपते हुए इस प्रकार कहा- “वत्स! वाराणसी के मांडलिक-राजादि ऐश्वर्यशाली बहुत से पुरुष अनेक कार्यों में उपरामर्श आदि लेने हेतु मेरे पास आते हैं, इस व्याक्षेप¹ के कारण मैं धार्मिक साधना समुचित रूप से नहीं कर पाता, इसलिए अब मैं तुमको समाज एवं कुटुम्ब का सारा कार्यभार सौंपकर पौषधशाला में जाकर अपनी धर्म साधना करना चाहता हूँ। तब कुलदीपक, ज्येष्ठ पुत्र ने अत्यन्त विनयपूर्वक अपने पिताश्री कथन का समादर करते हुए कहा- “जैसी आपकी आज्ञा हो।”

श्रमणोपासक चुलनी पिता ने उपस्थित विशाल जनसमुदाय के मध्य अपने अंगज² को उत्तरदायित्व सौंपते हुए इस प्रकार उद्बोधन दिया- देवानुप्रियों! आज से आपको जो भी परामर्श करना है, वह अब मुझसे नहीं अपितु मेरे पुत्र से करें और मेरे लिए किसी भी प्रकार का आहार तैयार करवाकर मेरे पास न लाएँ।

इस प्रकार चुलनी पिता ने उद्बोधन देकर सभी से अनुमति लेकर पौषधशाला की ओर प्रस्थान कर दिया। उत्साह से संयुक्त होकर वह निवृत्तिप्रधान जीवन जीने के लिए पौषधशाला में जा रहा था।

कैसा आदर्श त्याग कि प्राप्त सर्वभौतिक ऋद्धि का परित्याग कर एकत्व भाव की साधना में निस्पृह होकर वह चला जा रहा है। गृहस्थ-पर्याय में रहते हुए धन-सम्पदा का सर्वथा त्याग कर देना वस्तुतः असाधारण है। जिस आगार धर्म में बिना पैसे एक दिन रह लेना कठिनप्राय है, उसी गृहस्थ-जीवन में रहते हुए सम्पूर्ण जीवन के लिए एक पैसा भी अपने पास न रखने का संकल्प कर लेना और उसी पथ पर चल पड़ना कितना महनीय प्रसंग है। चुलनी पिता का त्याग इंगित कर रहा है कि सर्वथा मुक्त बनकर जीना ही श्रमणोपासक का चरम तथा परम लक्ष्य है। अपेक्षाओं की उपेक्षा करने वाला सत्य से साक्षात्कार कर लेता है। अभिलाषाओं से मुक्त होने वाला वीतरागता का वरण कर लेता है। चुलनी पिता समस्त धन-सम्पत्ति आदि संयोगों से विमुक्त होकर मात्र आत्मसाधना में लीन बनने हेतु पौषधशाला में प्रविष्ट हुए और स्वयंमेव पौषधशाला का प्रमार्जन (सफाई) किया। शौच एवं लघुशंका के निवारण योग्य भूमि का प्रतिलेखन किया। तत्पश्चात् दर्भ-कुश का बिछौना लगाया, उस पर स्थित हुआ और स्थित होकर ब्रह्मचर्य एवं पौषध स्वीकार करके श्रमण भगवान महावीर द्वारा निरूपित शिक्षा-पद्धति के अनुरूप

1. व्याक्षेप-बाधा 2. अंगज-पुत्र

साधना में लीन हो गया।

दृढ़धर्मी : आत्मगवेषक चुलनी पिता स्वयं का निरीक्षण-परीक्षण करते हुए वीतराग भावों में रमण करने लगे। समय अपनी गति से गतिमान था। अर्धरात्रि का समय था। चुलनी पिता धर्मसाधना में लीन विशुद्ध भावनाओं से स्वयं को अनुप्राणित कर रहे थे। तभी एक पिशाच रूपधारी देव चुलनी पिता के समक्ष प्रकट हुआ। देव ने एक चमचमाती नीली तेजधार वाली तलवार निकाली और चुलनी पिता से कहा-श्रमणोपासक चुलनी पिता! तुम अपने व्रतों को तोड़ डालो, लिए हुए व्रतों से हट जाओ। यदि तुम अपने व्रतों को नहीं तोड़ोगे तो मैं आज तुम्हारे पुत्र को घर से निकालकर लाऊँगा और तुम्हारे सामने ही..... तुम्हारे अपने पुत्र को.....प्राणों से रहित कर दूँगा। इतना ही नहीं उसको मारने के पश्चात् उसके मृत-शरीर के तीन खण्ड करूँगा और उबलते पानी या तैल से भरी कढ़ाई में खौलाऊँगा। उसके पश्चात्.....उसके पश्चात् उसके माँस और रक्त को तुम्हारे शरीर पर छीटूँगा.....कान खोलकर सुनना, चुलनी पिता! इस दृश्य का अवलोकन कर तुम भीषण दुःख को प्राप्त करते हुए आर्तध्यान करते हुए असमय में ही प्राणों से हाथ धो बैठोगे।

चुलनी पिता सोच लो.....सोचो.....दो जीवों के प्राण गँवाने से.....व्रत तोड़ना अच्छा है। बोलो.....बोलो क्या मंजूर है?

चुलनी पिता निश्चलात्मा बनकर पिशाच रूपधारी देव की बातों को श्रवण कर रहा था। उसके त्याग को बहुत बड़ी चुनौती दी जा रही थी, या तो धर्म छोड़ो, व्रत तोड़ो या शरीर और परिवार.....।

चुलनी पिता के मन में जरा-सा भी संकल्प-विकल्प पैदा नहीं हुआ। वे क्षणभंगुर जीवन की चंचलता को जान चुके थे। प्राण खोकर भी अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहना उनका लक्ष्य बन चुका था। इसलिए उन्होंने शब्दों से अप्रभावित रहते हुए साधना में अपनी स्थिरता बनाये रखी।

उनकी धैर्यता को देखकर देव पुनः बोला- अरे! सुनता नहीं तू.....मैं.....तुम्हारे पुत्र का घात करके तुम्हारा भी घात कर डालूँगा, व्रत तोड़ दे.....धर्म छोड़ दे.....।

पिशाच की बातों का श्रवण कर भी चुलनी-पिता सुमेरूवत् निश्चल बने रहे।

तब तृतीय बार पुनः पिशाच बोला अरे.....मूढ़! मौत को चाहने वाले.....व्रत तोड़ दे। प्रण छोड़ दे.....।

पिशाच के तीन बार कहने पर भी चुलनी-पिता अत्यंत दृढ़ीभूत बना रहा।

टिप्पण :

उसकी इस निर्भीकता को देखकर देव अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और क्षणभर में ही चुलनी-पिता के ज्येष्ठ पुत्र को घर से लाया। चुलनी पिता के समक्ष ही उसे प्राणों से रहित किया। तदनन्तर उसके शरीर के तीन खण्ड करके उबलते पानी से भरी कड़ाही में खौलाया और उसके रक्त और मांस से चुलनी पिता के शरीर को सींचा।

निस्पृहता की परमज्योति में तल्लीन बनकर चुलनी पिता ने अत्यन्त धैर्य से उस तीव्र-वेदना को विविक्षापूर्वक सहन किया।

देव ने देखा कि मैंने इसके समक्ष इसी के ज्येष्ठ औरस पुत्र को मार डाला फिर भी यह अडिग बना हुआ है। अब मैं दूसरा प्रयास करता हूँ, जिससे यह अपने धर्म से रहित बन जाये। ऐसा चिन्तन कर देव ने चुलनी पिता से कहा- चुलनी पिता! देख, अब भी समझ ले। अब भी मान जा, मान.....तोड़ दे व्रत को.....छोड़ दे श्रमण भगवान महावीर के धर्म को.....नहीं तो क्या होगा? नहीं तो अब मैं तेरे मंझले बेटे को तेरे घर से उठा लाऊंगा। तेरे सामने उसकी हत्या करूंगा और ज्येष्ठ पुत्र के समान उसकी भी दुर्गति कर डालूंगा।

मान जा! मान जा! मान जा!

इस प्रकार देव द्वारा तीन बार कहे जाने पर भी श्रमणोपासक चुलनी पिता निष्कम्प बना रहा, दृढ़तापूर्वक अपने त्याग में तल्लीन रहा। शब्द मानो उसके दिल को तो क्या कानों को भी छू नहीं पाये। उसने तीक्ष्ण कंटक की भाँति दारूण-शब्दों को उसी प्रकार लौटा दिया जैसे श्रेष्ठ धनुर्धर बाण को बीच से ही लौटा देता है।

तब अत्यन्त क्रोध से मिलमिलाहट करते हुए देव उसके मंझले पुत्र को लाया और देखते ही देखते उस मंझले पुत्र को प्राणों से रहित किया। उस मृत शरीर के तीन खण्ड किये। उसे खौलते पानी में उबाला और रक्त-मांस युक्त उबलते पानी को चुलनी पिता के शरीर पर छींटा।

टिप्पण :

इस महाभयंकर वेदना को भी श्रमणोपासक चुलनी-पिता ने परम सहिष्णुता से सहन किया।

देव ने उस चुलनी-पिता की असीम सहिष्णुता को देखकर उसे भयभीत करने के लिए पुनः कहा- देख श्रमणोपासक तेरी जिछ के कारण तेरे दोनों पुत्रों का घात मैंने कर दिया है। अब तेरे घर में बस एक तेरा छोटा लड़का बचा है। यदि तू व्रत को नहीं तोड़ेगा,

धर्म को नहीं छोड़ेगा, मेरी बात नहीं मानेगा तो मैं अब तेरे सबसे छोटे पुत्र की भी वही दयनीय दशा करूँगा जो मैंने तेरे दो पुत्रों की की। श्रमणोपासक! छोड़ दे! छोड़ दे! व्रतों को तोड़ दे!

इस प्रकार देव द्वारा तीन बार कहे जाने पर भी चुलनी पिता अस्थि-अस्थि, मज्जा-मज्जा में धर्मानुराग से रंजित होकर अडोल बना रहा, वह शब्दों से ऐसे अलिप्त बना रहा जैसे कमल-जल से अलिप्त बना रहता है।

इस दृढ़ता की पराकाष्ठा से पादाहत सर्प के समान अत्यन्त क्रुद्ध बने हुए देव ने चुलनी पिता के अनुष्क¹ पुत्र को उसी के समक्ष लाकर वैसे ही घात करके, रक्त और मांस के उबलते पानी से चुलनी-पिता के शरीर की सींचा। पर देहातीत बने चुलनी पिता ने उस परम दारूण वेदना को अतीव समभाव से सहन कर लिया।

इस प्रकार अपने तीन पुत्रों को खोकर भी धर्म में अडिग बने रहे चुलनी पिता को धर्म से विचलित करने के लिए देव ने चतुर्थ बार चुलनी पिता से कहा- अरे! मौत को चाहने वाले चुलनी-पिता! अब यदि तुम अपने व्रत को नहीं तोड़ोगे तो क्या होगा...सुनना!....जरा ध्यान से सुनना!...इस बार मैं तुम्हारे लिये देव और गुरु सदृश पूजनीय, तुम्हारे हितार्थ दुष्कर कार्य करने वाली, अतीव कठिन धर्म क्रिया करने वाली, तुम्हारी माँ^{VII} भद्रा सार्थवाही को घर से लाऊँगा और उसकी हत्या तुम्हारे सामने करूँगा। तत्पश्चात् उसके शरीर के तीन खण्ड करके उबलते पानी के कड़ाह में खौलाऊँगा, उसके रक्त-मांस से तुम्हारी देह को सींचूँगी जिससे तुम भयंकर आर्त्तध्यान करते हुए, विकट दुःखों से पीड़ित होकर असमय में ही प्राणों से हाथ धो बैठोगे।

देव द्वारा ऐसा कहे जाने पर भी चुलनी पिता धर्मस्थान में सुस्थित बना रहा।

देव ने दूसरी बार पुनः कहा- अरे! धर्मढोंगी! मान जा। नहीं तो तेरी जन्मदात्री माँ की हत्या कर डालूँगा।

चुलनी पिता तब भी अडिग रहे। देव ने पुनः तृतीय बार कहा- अरे! इतना क्रूर बना है तू? माँ को मरवाकर धर्म कर रहा है? छोड़ दे धर्म! तोड़ दे व्रत!

चुलनी पिता ने जब तृतीय बार यह श्रवण किया तो उसके पैरों तले मानो धरती सरक गयी। उसके मन में इस तरह के परिणाम आने लगे कि यह पुरुष अत्यन्त अधम, नीच बुद्धिवाला, नीचता पूर्ण कार्य करने वाला है। इसने मेरे समक्ष मेरे तीनों पुत्रों को

1. अनुष्क-सबसे छोटा

मारकर उनके रक्त और माँस से युक्त उबलते पानी से मेरे शरीर को सींचा। इतने पर भी इसकी क्रूरता ने विराम नहीं लिया। अब ये मेरी माता भद्रा-सार्थवाही को भी निर्ममतापूर्वक मारकर उनकी नृशंस हत्या करना चाहता है। मुझे अत्यंत प्रिय वात्सल्यमयी माँ के साथ किये जाने वाले इस व्यवहार को रोक डालना चाहिये। ऐसा चिन्तन कर चुलनी पिता उस देव को पकड़ने के लिए दौड़े तो वह देव.....देव.....आकाश में उड़ गया और चुलनी पिता के पकड़ने को फैलाए हाथों में खम्भा आ गया। वह जोर-2 से शोर करने लगा।

जब चुलनी पिता का कोलाहल श्रवण किया, तो उनकी माँ भद्रासार्थवाही चुलनी पिता के पास आई और पूछा- वत्स! तुम्हें क्या हुआ? तुम जोर-जोर से क्यों चिल्लाये?

तब चुलनी पिता ने माँ के पूछने पर आद्योपान्त घटना जैसे घटी थी वैसी ही माँ को सुना डाली।

तब माँ ने कहा- बेटा! ऐसा कुछ भी हुआ ही नहीं है। तुम्हारे किसी भी पुत्र को कोई भी घर से लाया नहीं है। यह तो देवकृत उपसर्ग था, इसी से तुमने यह भयंकर दृश्य देखा है। अब तुम्हारा व्रत, नियम और पौषध भंग हो गया है। इसलिए पुत्र तुम इस स्थान की आलोचना, प्रतिक्रमण, निन्दा, गर्हा करो और यथायोग्य प्रायश्चित्त रूप तपः कर्म स्वीकार कर शुद्धिकरण करो।

चुलनी पिता बोले-मातृश्री! आप ठीक कहती हैं। इस प्रकार विनयपूर्वक श्रवण कर व्रत भंग, नियम भंग और पौषध भंग की आलोचना की यावत् प्रायश्चित्त के रूप में तपः कर्म स्वीकार किया।

तत्पश्चात् सम्पूर्ण जीवन को धर्म के रंग से रंगते हुए चुलनी पिता ने उपासक योग्य ग्यारह प्रतिमाओं का यथाविधि आराधन किया और बीस वर्ष तक श्रमणोपासक पर्याय का पालन किया।

इस प्रकार व्रतों की विधियुक्त आराधना करके एक मास की संलेखणा और एक मास का अनशन सम्पन्न कर मृत्यु का अवसर आने पर समाधि^{VIII} पूर्वक देह-त्याग कर इस उग्र-तपश्चरण के फलस्वरूप सौधर्म देवलोक में सौधर्मावतंसक महाविमान के ईशान-कोण में स्थित अरूणप्रभ विमान में देवरूप में उत्पन्न हुआ। चार-पल्योपम की आयु पूर्ण करके वह महाविदेह क्षेत्र में मोक्ष को प्राप्त करेगा।^{XVIII}

धन्य हुई धरा :

इस प्रकार अनेक भव्यात्माएँ^{IX} भगवान के चरणों में आकर अपने जीवन का

उद्धार कर रही थी। सतत् जिनवाणी के वर्षण से अनेक भव्यात्माएँ अपने जीवन को त्याग-पथ पर समारूढ़ करती हुई चली जा रही थी। नित-नूतन धर्मदिशना श्रवण कर सब अपने-2 जीवन को मंगलमय बनाते जा रहे थे। भीड़ बढ़ती चली जा रही थी, धर्म का ठाठ लग रहा था। अन्य मतावलम्बी भी विशाल तादाद में आकर जब धर्म श्रवण करने को उद्यत बन रहे थे, तब शकेन्द्रजी ने चिन्तन किया कि वाराणसी में समवसरण का निर्माण करना चाहिए। उन्होंने उसी समय देवों को आदेश दिया कि जाओ भूमण्डल पर समवसरण का निर्माण करो। शकेन्द्र का आदेश प्राप्त कर आभियोगिक¹ देवों ने भूमि को स्वच्छ बनाया तत्पश्चात् फुहारों से सुगन्धित बनाकर पंचरंगें अचित फूल बरसायें। व्यन्तर देवों ने तोरण द्वारों का निर्माण किया, तो वैमानिक, ज्योतिष्क एवं भवनवासी देवों ने क्रमशः तीन परकोटे बनाये और आभ्यन्तर परकोटे के बीचोबीच अशोक वृक्ष आदि आठ महाप्रतिहार्यों को स्थापित किया।

सारी नगरी में एक ही वार्ता सुनाई दे रही थी कि भगवान महावीर के धर्मोपदेश के लिए समवसरण की रचना हुई है। अतः हमें भी धर्म श्रवण हेतु जाना है। राजा जितशत्रु बड़े उल्लसित भावों से प्रजाजनों सहित धर्म श्रवण को निकला। विशाल परिषद धर्म श्रवण हेतु निकली। इस प्रकार पूरी नगरी में धर्म की धूम मची थी। वहाँ एक सुरादेव नामक गाथापति¹ भी रहता था। वह अत्यन्त समृद्ध था। उसकी छः करोड़ मुद्राएँ स्थायी पूँजी के रूप में खजाने में थी, छः करोड़ मुद्राएँ घर के धन-धान्य, द्विपद-चतुष्पद आदि सामग्री में लगी थी, उसके छह गोकुल थे और प्रत्येक गोकुल में दस दस हजार गायें थी।

उनकी धन्या नामक भार्या थी। वह सदैव अपने पति के अनुकूल चलने वाली थी। जब गाथापति सुरादेव को भगवान महावीर की धर्मदिशना की जानकारी मिली वह भी उसे श्रवण करने हेतु उत्सुक बना और आनन्दजी की तरह भगवान के समवसरण में पहुँच कर बहुत ही अहोभाव से वह पावन उपदेश श्रवण करने लगा। भगवान की वाणी से प्रभावित होकर उसने बारह व्रत ग्रहण किये, उसकी पत्नी ने भी श्राविका योग्य बारह व्रत ग्रहण किये और आनन्द जी की तरह ही वह उपासना में लीन बन गया।^{XIX}

टिप्पण :-सुरादेव श्रमणोपासक जीवन का विधिवत् पालन करता हुआ निरन्तर त्याग-मार्ग पर बढ़ रहा था। 14½ वर्ष तक आराधना करने के पश्चात् उसके मन ने ऐसा संकल्प प्रादुर्भूत हुआ कि सम्पूर्ण प्रकार की सामाजिक और पारिवारिक जिम्मेदारियों

1. सेवक

से मुक्त बनकर एकमात्र धर्माधना में आत्मा को संलग्न करना ही अब श्रेयस्कर है। ऐसा चिन्तन कर उसने चुलनी पिता की तरह समस्त जिम्मेदारियाँ अपने ज्येष्ठ पुत्र को समर्पित^x कर वह उपासना में चुलनी पिता की तरह लीन बन गया।

एक बार अर्थरात्रि के समय जब वह पौषध में प्रवृत्त था, उसके समक्ष पिशाच रूपधारी एक देव प्रकट हुआ। उसने तब नीली तेज धार वाली चमचमाती तलवार निकालकर सुरादेव से कहा- मृत्यु को चाहने वाले श्रमणोपासक सुरादेव! यदि तुम आज अपने व्रत आदि भंग नहीं करते हो तो मैं तुम्हारे ज्येष्ठ पुत्र को घर से उठाकर लाऊँगा, लाकर तुम्हारे सामने मार डालूँगा, मारकर उसके शरीर के पाँच-2 खण्ड करूँगा। उन खण्डों को उबलते पानी के कड़ाह में खौलाऊँगा और उस रक्त-मांस से तुम्हारे शरीर को सींचूँगा, जिससे तुम असमय में ही प्राणों से हाथ धो बैठोगे।

सुरादेव चुलनी पितावत् निर्भीक रहा और देव ने जैसे क्रमशः चुलनी पिता के लड़कों को मारा वैसे ही सुरादेव के तीनों लड़कों को मारा बस भेद इतना है कि सुरादेव के लड़कों के पाँच-पाँच टुकड़े किये।

तत्पश्चात् उस देव ने चतुर्थ बार सुरादेव से कहा- मृत्यु को चाहने वाले सुरादेव! यदि तुम अपने व्रतों का त्याग नहीं करोगे तो आज तुम्हारे शरीर में एक ही साथ दमा, खाँसी, बुखार, देह में जलन, पेट में तीव्र पीड़ा, भंगदर, बवासीर, अजीर्ण, नेत्र-शूल, कर्ण-वेदना, खुजली, जलोदर, कुष्ठ रोग आदि सोलह भयानक रोग उत्पन्न करूँगा, जिससे तुम आर्त्तध्यान तथा विकट दुःख से पीड़ित होकर असमय में ही जीवन से हाथ धो बैठोगे।

श्रमणोपासक सुरादेव, देव द्वारा यों कहे जाने पर भी जब तनिक भी भयभीत, त्रस्त, उद्विग्न, क्षुभित, चलित, आकुल नहीं हुआ तथा शांत भाव से धर्मध्यान में लीन रहा। तब देव ने दूसरी और तीसरी बार भी वैसे ही कहा।

तीन बार यों कहे जाने पर श्रमणोपासक सुरादेव के मन में इस प्रकार का विचार आया कि यह पुरुष बड़ा अधम है, जिसने मेरे समक्ष मेरे तीनों पुत्रों को मारकर उनके पाँच-पाँच खण्ड करके उबाला और उनके रक्त-मांस से उबलते पानी से मेरे शरीर को सींचा। अब वह मेरे शरीर में सोलह रोग पैदा करना चाहता है। इसलिए अब श्रेयस्कर है कि मैं इस पुरुष को पकड़ लूँ। यह सोचकर जब वह पकड़ने के लिए उठा तो देव आकाश

1. गाथापति-कुटुम्ब को निभाने वाला गृहस्थ

में उड़ गया और सुरादेव के फैलाये हाथों में खम्भा आ गया। वह जोर-2 से चिल्लाने लगा। कोलाहल सुना तो उसकी पत्नी धन्या वहाँ आई और पूछने लगी-देवानुप्रिये! आप जोर-जोर से क्यों चिल्लाये?

श्रमणोपासक सुरादेव ने सारी घटना वैसे ही सुनाई जैसे चुलनी पिता ने अपनी माँ को सुनाई। तब सम्पूर्ण घटना श्रवण कर धन्या ने कहा- देवानुप्रिय! किसी भी व्यक्ति ने तुम्हारे किसी लड़के को नहीं मारा और न ही कोई तुम्हारे शरीर में भयानक सोलह रोग उत्पन्न कर रहा है। यह सब देवकृत उपसर्ग है, इसकी आलोचना यावत् प्रायश्चित्त करो। इस प्रकार समग्र वृत्तान्त चुलनी पिता की तरह ही है। सुरादेव ने वैसे ही किया और मृत्यु का समय आने पर एक माह का संलेखना संथारा करके देह त्याग कर सौ धर्मकल्प में अरूणकान्त विमान में उत्पन्न हुआ। वहाँ चार पल्योपम का आयुष्य पूर्ण कर महाविदेह क्षेत्र से सिद्धावस्था को प्राप्त करेगा।^{XX}

संदेह से विमुक्ति :

वाराणसी में अनेक भव्यात्माएँ निरन्तर त्याग पथ पर आरूढ़ होती चली जा रही थी। भगवान के विराजने से कईयों ने साधु जीवन अंगीकार किया तो कईयों ने बारह व्रत ग्रहण किये, कईयों ने मिथ्यात्व का परित्याग कर सम्यक्त्व को ग्रहण किया। इस प्रकार अनेक भव्यात्माएँ मोक्षमार्ग की यात्रा में निरत बन गयी। भव्य जीव भगवान के चरणों में आकर स्वकल्याण की दिशा में प्रयाण करने लगे। इस प्रकार (अनन्त करुणासागर भगवान ने) अनेक भव्यों के प्रकाश स्तम्भ बनकर उनको सुखसागर में अवगाहन करवाकर वाराणसी से विहार कर दिया। वहाँ की श्रद्धालु धर्म-प्रवीण जनता ने विरह-वेदना को अन्तर में समाहित करते हुए भगवत्कृपा का स्मरण करते हुए भावभीनी विदाई दी।

प्रभु वहाँ से ग्रामानुग्राम विहार करते हुए अपने चरण-सरोजों से मेदिनी^I को त्याग की सुरभि से सुरक्षित करते हुए आलभिका^{XI} नगरी पधारे और वहाँ के शंखवन^{XII} नामक उद्यान में तप, संयम से अपनी आत्मा^{XII} को भावित करते हुए विहरण करने लगे।

उस शंखवन उद्यान से कुछ ही दूर पर मुद्गल (पुद्गल) नामक परिव्राजक रहता था। वह ऋग्वेद, यजुर्वेद आदि वेदों का और बहुत से ब्राह्मण ग्रंथों का धुरन्धर विज्ञाता था। बाल तपश्चर्या^I में रत रहने वाला वह लगातार बेले-2 की तपस्या करता हुआ आतापना भूमि में जाकर दोनों भुजाएँ ऊँची करके सूर्य की आतापना लेता हुआ विचरण करता

1. मेदनी-पृथ्वी

था।^{XXI}

वेदज्ञ और तपस्वी होने के बावजूद वह स्वभाव से भद्रिक परिणामी और अहं से कोसों दूर था। इसी कारण वह आतापना लेते हुए तपश्चर्या करते हुए अपनी सरलता को हृदय में धारण किये हुए रहता था। तब एक दिन तदावरणीय कर्मों के क्षयोपशम² के कारण ईहा³ अपोह⁴ मार्गणा⁵ और गवेषणा⁶ करते हुए उसको विभंगज्ञान^{XIV} उत्पन्न हुआ। उस समय विभंगज्ञान से वह पंचम ब्रह्मलोक कल्प में रहे हुए देवों की स्थिति जानने देखने लगा। इससे आगे वह जान-देख नहीं पाया।

ज्ञान उत्पन्न होने पर जब मुद्गल परिव्राजक को आतापना-भूमि में इस प्रकार का विचार स्मृतिपटल पर उभरने लगा कि मुझे अतिशय ज्ञान उत्पन्न हुआ है, जिससे मैं यह जानने लग गया हूँ कि देवलोक में देवों की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष की है, उसके उपरान्त एक समय अधिक, दो समय अधिक यावत् असंख्यात समय अधिक। इस प्रकार बढ़ते-2 उत्कृष्ट स्थिति दस सागरोपम की है।^{XXII} उससे आगे देव और देवलोक विच्छिन्न हैं। इस प्रकार उसने यह निश्चय किया और आतापना भूमि से नीचे उतर गया।

ज्ञान उत्पन्न होने पर उसको पचा पाना अत्यन्त कठिन होता है। उत्पत्ति के पश्चात् ही विचार उठते हैं कि यह बात किसी को बताऊँ और बताने के लिए मन उद्यत बन जाता है। मृगावतीजी के समान विरल ही आत्माएँ ऐसी होती हैं। जो ज्ञान की गोपनीयता धरोहर के समान रहस्यमयी बनाये रखती हैं।

मुद्गल परिव्राजक के मन में उत्साह जलधि-तरंगों की तरह किलोलें करने लगा और वह अपने स्थान पर आया। वहाँ से उसने त्रिदण्ड, कुण्डिका यावत् गैरिक-वस्त्रों को उठाया और उठाकर अपनी स्वभाविक चाल से आलभिका नगरी की ओर चल पड़ा। आलभिका नगरी में तापसों का मठ बना हुआ था। वह उस मठ में पहुँच गया, अपने भण्डोपकरण वहाँ रखे और आलभिका नगरी के श्रृंगाटक⁷ त्रिक⁸ चनुष्क⁹ यावत् राजमार्ग¹⁰ पर लोगों से इस प्रकार कहने लगा, प्ररूपणा करने लगा-हे देवानुप्रियों! मुझे अतिशय ज्ञान उत्पन्न हुआ है, जिससे मैं यह जानता-देखता हूँ कि देवलोक में देवों की स्थिति

1. अज्ञानवश तप करना 2. उदय प्राप्त कर्मों का क्षय और अशुद्धय प्राप्त का उपशम क्षयोपशम है। 3.,4.,5.6. तीनों ईहा के पर्याय वाची हैं...विभंगज्ञान-अवधिज्ञान से विपरीत ज्ञान 7. तिकोने स्थानों 8. तिराह 9. चौराह 10. विशाल मार्ग

जघन्य दस हजार वर्ष की उत्कृष्ट दस सागरोपम की है, उससे आगे देव व देवलोक विच्छिन्न हैं।

जब आलभिका नगर-निवासियों ने इस बात को सुना तो वे परस्पर इस प्रकार की प्रतिक्रिया व्यक्त करने लगे कि मुद्गल परिव्राजक ऐसा कह रहा है कि दस सागरोपम से ज्यादा स्थिति वाले देव नहीं है? उसकी यह बात कैसे स्वीकार करें? यह कथन विश्वसनीय प्रतीत नहीं होता?

इधर लोगों में इस प्रकार की चर्चाएँ हो रही थी, उधर उसी समय भगवान महावीर के ज्येष्ठ अन्तेवासी¹ शिष्य इन्द्रभूति गौतम जो निरन्तर बेले-2 की तपस्या करते हुए तप संयम से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरण कर रहे थे, उनके बेले के पारणे का अवसर आया। प्रथम प्रहर में स्वाध्याय किया, द्वितीय प्रहर में ध्यान और आदि तृतीय प्रहर में अनाकुल² चित्त से पात्र आदि की प्रतिलेखना³ की, उनका प्रमार्जन⁴ किया तदनन्तर उन पात्रों को लेकर भगवान महावीर के पास आये, प्रभु को वन्दन-नमस्कार किया और निवेदन किया भगवन! आपसे आज्ञा प्राप्त होने पर बेले के पारणे में आलभिका नगरी के उच्च, नीच मध्यम कुलों में सामुदानिक⁵ भिक्षा के लिए जाना चाहता हूँ।

भगवान ने फरमाया-देवानुप्रिय! तुम्हें जैसा सुख हो वैसा करो।

भगवान द्वारा इस प्रकार आज्ञा दिये जाने पर इन्द्रभूति गौतम ईयासमिति^{xiii} पूर्वक चलते हुए युगान्तर⁶ प्रमाण भूमि का अवलोकन करते हुए आलभिका के ऊँच, नीच, मध्यम कुलों में सामुदानिक भिक्षाचर्या^{xv} के लिए पर्यटन करने लगे।

जब वे भिक्षार्थ- परिभ्रमण कर रहे थे, तब उन्होंने बहुत से लोगों के मुख से इस प्रकार श्रवण किया कि मुद्गल परिव्राजक⁷ को अतिशय ज्ञान उत्पन्न हुआ है, जिससे वह यह जानने और देखने लगा है कि देवलोक में देवों की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष उसके उपरान्त एक समय अधिक, दो समय अधिक यावत् असंख्यात समय अधिक। इस प्रकार बढ़ते-2 उत्कृष्ट स्थिति दस सागरोपम की है, इसके आगे देव और देवलोक नहीं हैं। लेकिन उसकी यह बात कैसे मानें?

गौतम स्वामी ने जब जगह-2 लोगों को इस प्रकार चर्चा करते हुए सुना तो उनके मन में जिज्ञासा उत्पन्न हुई, वे आवश्यकतानुसार भिक्षा लेकर ईयासमिति^{xvi} पूर्वक गमन करते हुए भगवान के समीप पहुँचे। भगवान के पास पहुँचकर उन्होंने गमनागमन सम्बन्धी 1. समीप में रहने वाला शिष्य 2. शांत 3. देखना 4. पूँजना 5. सब घरों में समान रूप से 6. जुए प्रमाण (3½ हाथ)7. सन्यासी

प्रतिक्रमण किया, एषणा के दोषों की आलोचना^{xviii} की, लाया हुआ आहार-पानी भगवान को दिखाया और तत्पश्चात् भगवान से निवेदन किया-भंते! जब मैं भिक्षार्थ पर्यटन कर रहा था, तब लोग आपस में इस प्रकार चर्चा कर रहे थे कि मुद्गल परिव्राजक को अतिशय ज्ञान हुआ है। वह ज्ञान से इस प्रकार जानने लगा है कि “देवताओं की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट दस सागरोपम है, इससे आगे देव व देवलोक नहीं है? मुद्गल की यह बात कैसे मानें?” भगवान क्या मुद्गल-परिव्राजक का यह कथन सत्य है?

भगवान ने फरमाया- गौतम! मुद्गल परिव्राजक का यह कथन असत्य है। मैं इस प्रकार प्ररूपणा करता हूँ, इस प्रकार प्रतिपादन करता हूँ, इस प्रकार कथन करता हूँ कि देवलोक में देवों की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष की है किन्तु इसके उपरान्त एक समय अधिक, दो समय अधिक यावत् उत्कृष्ट स्थिति तैतीस सागरोपम की है, इसके आगे देव और देवलोक नहीं है।

इस प्रकार गौतम स्वामी के प्रश्न और भगवान के उत्तर को सन्मुख बैठी विशाल परिषद भी श्रवण कर रही थी। भगवान ने परिषद को धर्मोपदेश दिया। वह परिषद धर्मोपदेश श्रवण कर लौट गयी।

भगवान महावीर के मुखारविन्द से मुद्गल परिव्राजक के विषय में श्रवण कर आलम्बिका नगरी में शृंगाटक, चतुष्पथ और राजमार्गों आदि पर बहुत से लोग इस प्रकार चर्चा करने लगे कि हे देवानुप्रियों! मुद्गल परिव्राजक यों कहता है मुझे अतिशय ज्ञान उत्पन्न हुआ है, जिससे मैं देवों को जानता-देखता हूँ कि देवों की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष की, उत्कृष्ट दस सागरोपम की है। इसके आगे देव और देवलोक नहीं हैं, लेकिन उसका यह कथन मिथ्या है। श्रमण भगवान महावीर इस प्रकार कहते हैं कि निरन्तर बेले-2 तपस्या करते हुए मुद्गल परिव्राजक को विभंगज्ञान उत्पन्न हुआ है। इसी विभंगज्ञान से वे पाँचवे देवलोक तक के देवों को और उनकी स्थिति को जान देख सकते हैं, इससे आगे देवलोकों को और देवों की स्थिति वे नहीं जानते, इसलिए उनका कथन मिथ्या है। भगवान महावीर कहते हैं कि इससे आगे भी देवलोक है, क्योंकि देवलोक 5 ही नहीं अपितु बारह देवलोक, नव-त्रैवेयक और पाँच अनुत्तर विमान हैं और उनकी उत्कृष्ट स्थिति तैतीस सागरोपम की है।^{xxiv}

इस प्रकार की चर्चा को मुद्गल-परिव्राजक ने श्रवण किया तो उसे स्वयं के ज्ञान

पर संदेह होने लगा क्योंकि अभी तक वह विभंगज्ञान को ही अतिशय ज्ञान मानता था, लेकिन जब लोगों के मुँह से भगवान महावीर द्वारा कथित वास्तविकता को सुना तो उसे विभंगज्ञान में सन्देह पैदा हुआ और उसी शंका¹ कांक्षा² विचिकित्सा³ के कारण कलुषित भाव पैदा हुआ, जिससे उसका विभंगज्ञान नष्ट हो गया।

तब मुद्गल-परिव्राजक को इस प्रकार के सुन्दर अध्यवसाय⁴ पैदा हुए कि श्रमण भगवान महावीर स्वामी धर्म की आदि करने वाले, तीर्थंकर, सर्वज्ञ-सर्वदर्शी है। उनका अतिशय प्रभाव उद्योतित करने वाला धर्मचक्र सदैव उनके आगे गगन में चलता है। ऐसे महाज्ञानी भगवन्त स्वयं शंखवन उद्यान में विराजमान हैं। उन भगवान के दर्शन, वन्दन और प्रवचन श्रवण से महान् निर्जरा-रूप फल की उपलब्धि होगी। इसलिए मुझे भगवान के पास जाकर उनकी उपासना करनी चाहिए, यही मेरे लिए श्रेयस्कर है।

इस प्रकार प्रशस्त विचारों में वह निमग्न था। विचार हमारे जीवन की धरोहर है। विचार ही शब्द रूप में परिणत होते हैं। शब्द कार्य रूप में, कार्य आदत रूप में और आदत ही संस्कार बनते हैं। वे संस्कार ही हमें राह दिखाने वाले बनते हैं। मुद्गल परिव्राजक उन्हीं सुन्दर-विचारों में निमज्जित⁵ बना। जहाँ तापसों का मठ था, वहाँ आया और वहाँ आकर उसने अपने त्रिदण्ड, कुण्डिका यावत् गैरिक वस्त्रों को उठाया और जिधर भगवान महावीर विराजमान थे, उधर ही चल पड़ा।

अविराम गति से चलते हुए शंखवन उद्यान में आया। वहाँ उसने भगवान महावीर को देखा और उनके न अति निकट न अति दूर बैठकर हाथ-जोड़कर भगवान की पर्युपासना करने लगा।

भगवान ने उस मुद्गल-परिव्राजक को और महती परिषद को धर्मोपदेश दिया। निर्ग्रन्थ प्रवचन की मार्मिक प्ररूपणा की और फरमाया कि इसका पालन करने से जीव आज्ञा के आराधक होते हैं।

जैसे ही मुद्गल-परिव्राजक ने भगवान की मधुरवाणी सुनी तो उसने एक बार ही श्रवण कर हृदय में धारण कर लिया और अत्यंत पुलकित, आनन्दित एवं भावविभोर होकर प्रभु को तीन बार वन्दन-नमस्कार करके इस प्रकार निवेदन करने लगा- भगवन्! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन पर श्रद्धा, प्रतीति एवं रुचि करता हूँ। भगवन्! यही सत्य, तथ्य,

1. धर्म के फल में सन्देह करना 2. फल की आकांक्षा करना 3. विशेष रूप से मलिन भाव आना 4. आत्म-परिणाम 5. डुबा हुआ

असंदिग्ध, इष्ट और अभीष्ट है। इस प्रकार निवेदन कर विनयपूर्वक प्रभु को वन्दन कर वह ईशान कोण में गया, वहाँ जाकर त्रिदण्ड, कुण्डिका और गेरूए वस्त्र एकान्त में त्यागकर जहाँ भगवान महावीर विराजमान थे, वहाँ आया। प्रभु को तीन बार वन्दन-नमस्कार करके श्रीचरणों में निवेदन किया-

यह लोक वृद्धावस्था और मृत्युरूपी भीषण अग्नि से जल रहा है। मैं इस भीषण आग से जलते हुए लोक से अपनी आत्मा का उद्धार करना चाहता हूँ इसलिए भगवन्! मैं आपके पास मुण्डित और प्रव्रजित^{xviii} होना चाहता हूँ। भगवन्! आप अनुग्रह करके मुझे मुण्डित और प्रव्रजित कीजिए और मुझे संयम योग्य आचारादि धर्म का ज्ञान दीजिए।

मुद्गल-परिव्राजक का निवेदन श्रवण कर भगवान ने उसको प्रव्रजित किया और स्वयंमेव अनुग्रह करके उसको संयम-योग्य आचारादि का ज्ञान दिया।

मुद्गल मुनि भगवान महावीर से दीक्षित होकर उनकी धर्मप्रज्ञप्ति को यथायोग्य स्वीकार करके, अत्यन्त विशुद्ध रीति से निर्मल चारित्र^{xx} का पालन करने लगे। वे भगवान की आज्ञा को ही प्रधानता देकर कार्य करते थे। भगवदाज्ञा में उनकी परिपूर्ण आस्था और दृढ़-निष्ठा थी। उनके मन के प्रत्येक विचार के साथ भगवान की आज्ञा-आराधना के भाव दूध में मिश्रीवत् एकमेक होकर मिले हुए थे। उन्होंने अपने सम्पूर्ण विचारों को भगवान की आज्ञानुसार ही बना लिया था। इसलिए उसके प्रत्येक कार्य में समर्पण की सुगन्ध ही परिलक्षित होती थी। उनकी हर संध्या आशा भरी और हर भोर उत्साह भरी था। परिषहों में भी सुस्थितात्मा बनकर समभाव की यात्रा करने से उनकी क्रिया निर्जरा के लिए होती थी।

वे अत्यन्त विनय-विवेक से संयम-चर्या का पालन करने लगे। उन्होंने स्थविर भगवन्तों के सानिध्य में ग्यारह अंग-शास्त्रों का अध्ययन किया। अध्ययन करके श्रुत से अभिषिक्त¹ बनकर प्रत्येक क्रिया को अहिंसा की पवित्र धारा से अभिसिंचित² किया। मन के धरातल पर उठने वाले भावों को श्रुतचारित्र की रश्मियों से अलंकृत कर हृदय की प्रत्येक धड़कन में सजा लिया। कर्म-विनाशक समरांगण में कूदकर वे वीतरागता का धनुष लेकर सत्य के तरकश से समभावों का तीर चलाकर कर्म-कवच का भेदन करने लगे।²⁵ कालान्तर में जितेन्द्रियों में परम अग्रणी शूरी बनकर उपवास, बेला, तेला,

1. युक्त 2. सींचा

चौला इत्यादि विचित्र तपः कर्म से अपनी आत्मा को भावित करते हुए संलेखना से आत्मा को संलेखित कर साठ भक्तों से अनशन का छेदन कर अपने उद्देश्य की ओर अभिमुख बनकर क्षपक श्रेणी पर समारूढ बनकर सिद्ध, बुद्ध, निराकार, निरंजन अवस्था को सम्प्राप्त कर लिया।

इधर भगवान महावीर की धर्मदेशना से आलभिका नगरी में तप-त्याग, ज्ञान-ध्यान और संयम की लहर फैल गयी। अनेक भव्यात्माएँ निरन्तर सुषुप्ति¹ से जागरण की ओर अग्रसर हो रही थी। इस त्याग मार्ग के यश की सुगन्ध आलभिका के चप्पे-2 कोने-कोने में फैल रही थी और उसकी सुगन्ध से प्रेरित होकर जनता निरन्तर त्याग मार्ग के प्रति अग्रसर हो रही थी।

उस समय आलभिका में चुल्लशतक नामक एक गाथापति रहता था। वह अत्यन्त प्रभावशाली एवं समृद्ध था। राजा, तलवर² मांडबिक³ आदि अनेक लोग समय-2 पर उससे सत्परामर्श लेने हेतु आया करते थे। उसका खजाना सदैव भरा रहा था। छह करोड़ स्वर्ण मुद्राएँ उसके खजाने में रखी रहती थी, तो छह करोड़ व्यापार में लगी रहती थी। छह करोड़ स्वर्ण-मुद्राएँ घर के वैभव, द्वि-पद, चतुष्पद में लगी थी। उसके छह गोकुल थे। प्रत्येक गोकुल में दस-दस हजार गायें थीं। इस प्रकार वह साठ हजार गायों का पालनकर्ता था। उसकी बहुला नामक पत्नी थी जो सदैव उसके अनुकूल ही चला करती थी।

इधर भगवान महावीर की धर्म-देशना की पूरी नगरी में धूम मची थी। बहुत से अन्यतीर्थी⁴ भी आकर धर्मदेशना का लाभ लिया करते थे। तब देवराज शकेन्द्र ने देवों को समवसरण की रचना का आदेश दिया। उसी आदेशानुसार आलभिका में समवसरण की रचना हुई। झुण्ड के झुण्ड बनाकर लोग भगवान की धर्मदेशना श्रवण करने जाने लगे, ऐसा लग रहा था मानो आलभिका में कोई बहुत बड़ा उत्सव या महोत्सव हो। चुल्लशतक गाथापति ने जब सड़कों पर इस प्रकार उमड़ती हुई भीड़ को देखा और चिन्तन किया कि क्या बात है? आज इतने सारे लोग समूह बनाकर एक ही दिशा में क्यों प्रस्थान कर रहे हैं? तब लोगों से ज्ञात हुआ कि भगवान महावीर पधारे हुए हैं और सभी लोग उन्हीं की धर्मदेशना श्रवण करने जा रहे हैं। चुल्लकशतक की अन्तरात्मा में भी जागरण का शंखनाद हुआ, उत्साह की किरणें प्रस्फुटित हुईं और वह भी आनन्दजी श्रावक की तरह अनेक

1. सोना 2. किसी नृप द्वारा नियुक्त पट्टधर 3. मण्डलाधिपति 4. परधर्मी

लोगों से समाकीर्ण बना भगवन् के समवसरण भगवान को वन्दन-नमस्कार कर धर्म श्रवण करने लगा।

भगवान ने उस विशाल परिषद को धर्मोपदेश सुनाना प्रारम्भ किया कि सम्पूर्ण जगत् के जीवों की रक्षा करना, उन पर दया करना ही सर्वोपरि धर्म है। संसार के समस्त प्राणियों को सुख अभीष्ट है, कोई भी प्राणी दुःख को नहीं चाहता है। इसलिए सम्पूर्ण प्राण¹ भूत² जीव³ और सत्त्वों⁴ का हनन नहीं करना चाहिए, बलात् उन्हें शासित नहीं करना चाहिए, उन्हें दास नहीं बनाना चाहिए उन्हें परिताप नहीं देना चाहिए, और उनके प्राणों का विनाश नहीं करना चाहिए। यह अहिंसा-धर्म, शुद्ध, नित्य और शाश्वत है।

प्रत्येक जीव जिसने जन्म लिया है उसकी मृत्यु अवश्यंभावी है। फिर भी कुछ लोग विषय-भोगों में लिप्त बनकर अपनी इच्छा से प्रेरित होकर संसार में रचे-पचे रहते हैं। ऐसे मानव धर्माचरण का अवसर हाथ में आ जाने पर भी भविष्य में धर्म करेंगे, ऐसा सोचकर कर्म संचय करने में, धर्म संग्रह करने में रचे-पचे रहते हैं। ऐसे लोग विभिन्न योनियों^{xx} में बारम्बार जन्म-मरण करते रहते हैं।

यह स्वर्णिम अवसर मिला है, इसलिए एक मात्र आत्मा को देखते हुए कर्म शरीर को नष्ट कर डालो। जैसे अग्नि जीर्ण काष्ठ को शीघ्र जला डालती है वैसे ही तुम कर्मों को तप, ध्यान और चरित्र से नष्ट कर डालो। यह मनुष्य जीवन अल्पायु वाला है। इसलिए साधना में स्थिर बनकर क्रोधादि कषायों का त्याग कर डालो क्योंकि वस्तुतः कषाय दुःख को पैदा करने वाले हैं। क्रोधी पुरुष भिन्न-2 नरकादि स्थानों में विभिन्न दुःखों का अनुभव करता है, इसलिए पाप कर्मों से रहित बनकर जीवन को वीतराग पथ का पथिक बनाओ।

अणगार धर्म या आगार धर्म की साधना करके अपने आत्मा पर लगे हुए कर्ममल का विशोधन कर डालो, तो तुम्हारा जीवन शाश्वत सत्य का वरण करेगा।

भगवान की इस भव्य वाणी को श्रवण करके कईयों ने संसार का परित्याग कर संयम अंगीकार किया, कईयों ने श्रावक व्रतों को ग्रहण किया और कई गुणगान करते हुए शुद्ध भावों को प्राप्त हुए।

चुल्लशतक गाथापति भी प्रभु की निष्यन्दमयी⁵ वाणी से भावविभोर होकर गुणगान करता हुआ आनन्दजी की तरह बारह-व्रतों को ग्रहण करता है।²⁵ और अपनी धर्म

1. प्राण-द्विन्द्रिय आदि 2. भूत-वनस्पति 3. जीव-पंचेन्द्रिय 4. सत्त्व-पृथ्वीकायादि चार 5. अमृतमयी

सहायिका धर्मपत्नी को भी प्रेरणा करके बारह-व्रत धारी श्राविका बनाता है, और जीवा-जीव धार्मिक उपासना में लीन बनी आत्मा से सत्य का अन्वेषण करने हेतु तल्लीन बन जाता है।^{xxvi}

टिप्पण : श्रमणोपासक चुल्लशतक 14½ वर्षों तक गृहीत व्रतों का निरतिचार पालन करता रहा, तत्पश्चात् चुलनी पिता की तरह सम्पूर्ण सामाजिक एवं पारिवारिक दायित्वों को अपने ज्येष्ठ पुत्र को सौंपकर पौषध की आराधना में लीन हो गया। देव ने सुरादेव की तरह अर्धरात्रि के समय नीली तेजधार वाली तलवार लेकर उसके तीनों पुत्रों को मार डाला तब भी वह चुल्लशतक निर्भयता से व्रतों में लीन रहा।

तब देव ने चतुर्थ बार कहा- अरे श्रमणोपासक चुल्लशतक! तुम अब भी अपने व्रतों को भंग नहीं करोगे तो मैं तुम्हारे खजाने में छह करोड़ स्वर्ण मुद्राओं को, व्यापार में लगी छह करोड़ मुद्राओं को और घर के वैभव में लगी छह करोड़ मुद्राओं को ले आऊँगा और लाकर आलभिका नगरी के श्रृंगाटक-तिकोने स्थानों त्रिक-तिहारों चतुष्क-चौराहों, चत्वर-जहाँ चार से अधिक रास्ते मिलते हों चतुर्भुज-जहाँ से चार रास्ते निकलते हो, महापंथों-बड़े रास्तों में या राजमार्गों में चारों ओर बिखेर दूँगा जिससे तू आर्तध्यान एवं विकट दुःख से पीड़ित होकर असमय में जीवन रहित हो जायेगा।

उस देव द्वारा ऐसा कहे जाने पर भी चुल्लशतक अत्यन्त निर्भीक रहा। तब उसे देव ने दूसरी बार और तीसरी बार भी वैसा ही कहा।

तब चुल्लशतक के मन में सुरादेव की तरह विचार उत्पन्न हुआ और वह देव को पकड़ने के लिए दौड़ा तो खम्भा हाथ आया। चिल्लाया तो सुरादेव की तरह उसकी पत्नी ने सब समझाया और उसने चुलनी पितावत् आलोचना यावत् प्रायश्चित्त ग्रहण किया और उसी तरह श्रावक व्रत का पालन कर वह सौधर्म देवलोक में अरूणसिद्ध विमान में चार पल्योपम की स्थिति वाले देवरूप में उत्पन्न हुआ है। वहाँ से च्यवकर महाविदेह क्षेत्र में सिद्ध होगा।

भगवान महावीर आलभिका की भव्यात्माओं को संसार से तिराते हुए मोक्षमार्ग की राह बता रहे थे, जिससे अनेक भव्यात्माओं ने अपने जीवन को त्याग-तप से सजाने-संवारने का उपक्रम किया। समय अपनी गति से गतिमान था। प्रभु ने वहाँ अनेक भव्यों का उपकार करके, वहाँ से प्रस्थान किया। वहाँ की धर्म-प्रवण जनता ने अमनस्क होकर प्रभु को भावभीनी विदाई दी। भगवान आलभिका से राजगृह^{xxviii} की ओर पधारने लगे।

राजगृह का भव्य वैभव :

पहाड़ों की तलहटी में बसा राजगृह नगर अपनी मनमोहक शोभा से दर्शकों के नेत्रों को बरबत अपनी ओर आकर्षित कर लेता था। वैभारगिरि का वह वैभव अतुलित आनन्द की सरिता में दर्शकों को अवगाहित¹ करता रहता था। वहाँ का मनमोहक वातावरण मानो मनो में आलिन्द² खिलाता रहता था। सुरभित, सुगन्धित, मनमोहक पादप-वृन्द³ अपनी आभा से वसुन्धरा पर स्वर्ग की रचना कर रहे थे। पुष्पों का परिमल⁴ सर्वत्र अपनी भीनी-2 महक से वातावरण को सुगन्धित बना रहा था। आम्र की मंजरियाँ कोकिल को पंचम स्वर में गाने हेतु उल्लसित कर रहीं थीं। नागर-वेल की लताएँ तरूवरों⁵ से सम्पृक्त⁶ बन अपने यौवन को प्रदर्शित कर रहीं थीं। निर्मल स्वच्छ जल से भरे जलाशय की चंचल वीथियाँ⁷ अठखेलियाँ करते हुए क्षणभंगुर जीवन की भव्य प्रेरणा प्रदान कर रही थीं। जल में क्रीडारत मच्छलियाँ अपने स्फूर्तिमय गात्र से प्रबल पुरुषार्थ की ओर ईशारा⁸ कर रहीं थीं।

वैभारगिरि से निकलने वाला वह समुज्ज्वल प्रपात⁹ अपनी कल-2 निनाद से मधुर स्वर लहरियाँ प्रसृत करता हुआ सरिता में समर्पित बनने हेतु आतुरता¹⁰ प्रदर्शित कर रहा था। श्रावण मास के झूलों की तरह वृक्षों की सघन डालियों पर लदे मधुर फल समीर के झोंकों से आंदोलित हो रहे थे। मौम्बी और सन्तरे के झाड़ों पर गुच्छे-2 मौसम्बी और सन्तरे लटक रहे थे। फलों के भार से अवनत¹¹ वृक्षों का वसुन्धरा से मिलन रोकने के लिए उनको बाँस की वल्लियों से अनुबन्धित¹² किया गया था। वृक्षों पर आई नवीन कौंपले¹³ अपनी मृदुता से कमनीयता का सृजन कर रही थीं। पत्तों की हरीतिमा¹⁴ वातावरण में अभिनव¹⁵ उल्लास का संचार कर रही थी। सघन पादपों¹⁶ का समूह अमा¹⁷ के तमस¹⁸ पर विजय प्राप्त कर रहा था। लता-कुंजों का झुरमुट प्राकृतिक सुषमा को लिए विश्राम का पावन स्थल बना रहा था।

वृक्षों पर जीवन व्यतीत करने वाले परिन्दों¹⁹ से व्याप्त उद्यान, वन-खण्ड आदि कलख की ध्वनियों से गुंजायमान हो रहे थे। कहीं कोयल की कुहू-कुहू आनन्द विभोर बना रही थी तो कहीं नीलकण्ठ की टीऊ-2 ध्वनि कर्णगोचर हो रही थी। अपने नीले पंखों को फड़फड़ाते हुए नभ का चक्कर लगाते हुए नीलकण्ठ छोटी-2 उड़ानें भर रहे थे,

1. डुबाना 2. बाग 3. वृक्षों का समूह 4. सुगन्ध 5. वृक्षों 6. युक्त 7. लहरें 8. आकर्षित करना
9. झरनें 10. जल्दी 11. झुके हुए 12. बांधना 13. नये-2 पत्ते 14. हरियाली 15. नया 16. वृक्षों
17. अमावस्या 18. अंधकार 19. पक्षियो

कहीं खंजन-युगल अपने आकर्षक नेत्रों से बरबस मन हर लेते थे। कहीं चातक अपलक मेघों को निहारते हुए अपनी तृषा¹ शमित² करने के लिए स्वाति का ईन्तजार कर रहे थे। तो कहीं कपोतों³ का झुण्ड ऊँची-ऊँची उड़ाने भरते हुए दानें चुगने के लिए गमन कर रहे थे। कहीं भोजन दृष्टिगत होने पर काक अपने साथियों को काँव-2 करके बुला रहे थे। कहीं बया अपने घोंसलों के झूले बनाकर झूल रही थी।

उद्यानों की छटा कुछ और ही आकर्षक बन रही थी। कहीं भ्रमर-वृन्द मधुकरी वृत्ति⁴ से मधु ग्रहण कर मुनि दीक्षा का संकेत दे रहे थे तो कहीं रंग-बिरंगे पंखों वाली तितलियाँ अपने समूह में उड़कर मिट्टी की सौँधी गंध का आनन्द लूट रही थी। कहीं चम्पा की महक तो कहीं चमेली की सुरभि और कहीं मन्दार की कतारें चहुँओर सुगन्ध वर्षण कर रही थीं। पंक्तिबद्ध खड़े वृक्ष ऐसे लग रहे थे मानो वे सजग प्रहरी लोह खुरा जैसे दुर्दान्त⁵ चोर से लोहा ले रहे हो।

वर्षा के जल से सिंचित खेतों में धान, ईख, जौ आदि पौधे अपनी हरीतिमा से पृथ्वी को आच्छादित किये हुए थे। कृषक वर्ग अपने परिवार सहित खेत की रखवाली करते हुए फसलों की सुरक्षा कर रहे थे। पुष्टस्कन्ध⁶ वाले सांडों का समूह इधर-उधर भ्रमण कर रहा था। गायें और भैंसें अपनी गोचर भूमि में भ्रमण करती हुई रंभा रही थी। नन्हें-2 गवेलक⁷ अपनी माँ के साथ-2 खुले आकाश के नीचे घूम-2 कर अपना समय यापन कर रहे थे। एक सुदृढ़ परकोटे से घिरा राजगृह नगर अपनी समृद्धि का दिग्दर्शन कर रहा था। वहाँ के उच्च प्रासाद⁸ अट्टालिकाएँ और नक्काशी की कारीगरी कुशल-निर्माताओं के इतिहास की झाँकी प्रस्तुत कर रही थी। नन्हें-2 झरोखें तथा जालियों से युक्त खिड़कियाँ शुद्ध समीर⁹ के झौकों से मनमानस आप्लावित¹⁰ कर रही थी। शीशम, सागवन और चन्दन की लकड़ी के नक्काशीदार दरवाजें कलाकारों की कलाकृति का नमूना प्रस्तुत कर रहे थे। कपाटों¹¹ पर लगी अर्गलाएँ¹² सुरक्षा का मार्ग प्रशस्त कर रही थीं। वहाँ के नागरिकों में निरन्तर आनन्द का उत्स झरता ही रहता था। समय-2 पर आयोजित आयोजनों में नृत्यक, कथक, पुंगीवादक, वीणावादक, वांसुरीवादक आदि अपने कला कौशल से नागरिकों का मन हरण कर लेते थे।

1. प्यास 2. शान्त 3. कबूतरों 4. भ्रमर वृत्ति, वह अनेक फुलों से थोड़ा-2 रस लेकर जीवन निर्वाह करता है, एक फूल से नहीं। इस प्रकार फुलों को पीड़ा भी नहीं होती और उसका निर्वाह भी हो जाता है। 5. कठिनाई से दमन करने योग्य। लोहखुर का वर्णन अपश्चिम तीर्थंकर महावीर भाग-2 में देखे। 6. कन्धे 7. बछड़े 8. उँचे महल 9. हवा 10. युक्त 11. द्वारो 12. भोगलें

नाटक दिखाने वाले, नाचने वाले, रस्सी पर चढ़कर कला दिखाने वाले, पहलवान, मुक्केबाज, हँसी-मजाक के चुटुकले सुनाने वाले, कथा कहने वाले, नदी में तैरने वाले, वीर रस की गाथाएँ सुनाने वाले, बाँस के सिरे पर खेल दिखाने वाले, चित्रपट¹ दिखाकर आजीविका करने वाले, ताली बजाकर मनोविनोद करने वाले आदि अनेक प्रकार के कुशल मनोरंजकों से युक्त वहाँ की भूमि थी।

उद्यान, बगीचे, कुएँ, तालाब, बावड़ी आदि से परिवेष्टित नन्दनवन-सी वह राजगृह नगरी थी। उसके चारों ओर विस्तीर्ण और गहरी खाई नगर की सुरक्षा का बोध कराने वाली प्रतीत हो रही थी। परकोटे की सीमा पर तैनात सैनिक चक्र, गदा, भुसुंडि-पत्थर फेंकने का एक अस्त्र विशेष, गोफिया, शतघ्नी (महाशिला या महायष्टि गिराने का एक यंत्र विशेष जिससे सैकड़ों व्यक्तियों के प्राणों का अपघात² हो सकता है) ऐसे शस्त्रों से युक्त सीमा की रक्षा कर रहे थे। नगर में घुसने का प्रमुख द्वार छिद्र-रहित था वह विशालकाय होने से गगनचुम्बी प्रतीत होता था।

वहाँ का धनुषाकार परकोटा अर्धचन्द्र की शोभा को धारण कर रहा था। उस परकोटे के उपरी भाग में निर्मित झरोखें सहित कंगूरे शत्रुओं का निरीक्षण करने हेतु उत्तम प्रज्ञा का संसूचन³ कर रहे थे। उस परकोटे पर बनी घूमटियाँ सैनिकों की आश्रय स्थली थी। परकोटे पर बना आठ हाथ चौड़ा मार्ग सीमा सुरक्षा के लिए उपयुक्तता को लिए हुए था। उस परकोटे पर स्थान-2 पर बनी छोटी बारियाँ और नगर द्वार राजगृह की शक्ति का परिचय प्रदान कर रहे थे। उसकी विशाल अर्गला, इन्द्रकील और गोपुर के किवाड़ों के आगे जड़े हुए नुकीले कील सुयोग्य शिल्पाचार्यों की योग्यता प्रदर्शित कर रहे थे। किसी भी प्रकार की चुंगी न लगने से वहाँ के व्यापारी वर्ग अपने आप में राहत महसूस करते थे। रिश्वतखोरों और जेबकतरों से रहित उपद्रव शून्य थी राजगृह की पावन भूमि। अनेक व्यापारियों का वहाँ निवास होने से वहाँ के बाजार-हाट जनसमूह से घिरे रहते थे। वहाँ के त्रिकोन-तिराहो, चौराहों और चत्वर (जहाँ चार से अधिक मार्ग मिलते हैं) मार्गों पर बर्तन, कपड़े, विविध प्रकार की प्रसाधन सामग्री, खाद्यान्न और मिष्ठान की दुकानें विविध प्रकार की सामग्रियों से लदी हुई थी। मार्गों में यत्र-तत्र मदोन्मत्त हस्ती, रथ-समूह, शिविकाएँ, पर्देदार पालखियाँ, स्यन्दमानिका-पुरुष प्रमाण पालकियाँ, यान-गाड़ियाँ तथा युग्य-पुरातनकालीन गोल्लदेश में सुप्रसिद्ध दो हाथ लंबी-चौड़ी डोली जैसे यान परिलक्षित⁴ होते थे। श्वेत पुते हुए धवल भवन आत्मिक धवलता को प्रकट कर रहे थे।

1. चित्र बना पट्टिया 2. मृत्यु 3. सूचित करना 4. दिखाई देना

उस राजगृह नगर के उत्तर-पूर्व दिग्-भाग में निर्मित गुणशील चैत्य-यक्षायतन अपनी पुरातनता का परिचय दे रहा था। वहाँ काम करने वालों को उपयुक्त वेतन मिलने से वे प्रमुदित रहते थे। वहाँ लौकिक श्रद्धा सम्पन्न व्यक्ति न्याय प्राप्त करते थे। छत्रध्वजा पताका से परिमंडित वह चैत्य सुप्रसिद्ध था। चहुँओर छोटी और बड़ी झण्डियों से सजा चैत्य अपनी कीर्ति का दिग्दर्शन कर रहा था। सफाई के लिए वहाँ पर रोममय पिंछियाँ रखी हुई थीं, जिससे यतना का सन्देश मिलता था। वहाँ की भूमि गोबर से लिपी होने कारण वातानुकूलित थी। श्वेत-खड़िया मिट्टी और कलई से पुती दीवालें वातावरण में शान्तता प्रसरित कर रही थीं। धवल दीवारों पर गोरुचन और लाल चन्दन के हथेली सहित चर्चित हार्थों के छापे लगे हुए थे। तोरणों से द्वारों पर रखे चन्दन कलश अपनी महक से वातावरण सुरभित बना रहे थे। तोरणों से सजे द्वार तथा लम्बी लटकती फूलमालाएँ स्वागतातुर लग रही थीं। पंचवर्णों के पुष्पों के ढेर चढ़ाये जाने से वह पुष्पकुंज-सा प्रतीत हो रहा था। काले अगर, उत्तम कुन्दरूक, लोबान और धूप की मधमधाती¹ महक से वह मनोज्ञ और सुगंध वाटिका-सा प्रतीत होता था।

वहाँ कहीं नाटक दिखाने वाले अपना नाटक दिखा रहे थे। कहीं नृत्य हो रहा था, कहीं कलाकार बाँस और रस्सी पर चढ़कर अपनी कला का प्रदर्शन कर रहे थे। कहीं वीर रस की गाथाएँ गायी जा रही थी, तो कहीं मुक्केबाज और पहलवान अपने शारीरिक बल को प्रदर्शित कर रहे थे। कहीं तुम्बा-वीणा, पंगी, बांसुरी, तूण वाद्य की मधुर ध्वनियाँ कर्णगोचर हो रही थीं। कहीं पर चारणभाट वहाँ की यशगाथाएँ मुखरित कर रहे थे, तो कहीं पर चित्रकार, चित्रपट दिखाकर आजीविका कर रहे थे। इस प्रकार वह विविध कलाकारों और शिल्पियों के लिए आजीविका का स्थान बना हुआ था।

सम्पूर्ण नगरवासियों के दिलों में उस चैत्य के प्रति आकर्षण बना हुआ था। अनेक दानशील, उदारमना लोग वहाँ मुक्तहस्त से दान दिया करते थे। वह चैत्य भौतिक कामनाओं से संपृक्त² लोगों के लिए स्तुति, अर्चना प्रणाम, पूजा करने योग्य था। वह लोगों के लिए वस्त्रादि द्वारा सत्कार करने योग्य, सम्माननीय, मनोकामना पूर्ण करने वाला, मंगलमय, विपत्तिसंहारक, दैवी शक्ति से युक्त, विनयपूर्वक पर्युपासना करने योग्य था। वह अत्यन्त प्रभावशाली था। हजारों प्रकार की पूजा एवं उपासनाएँ वहाँ पर होती थीं। नगर के बहुत से लोग वहाँ पूजा उपासना करने के लिए आया करते थे।^{xxviii}

1. सुगन्धित 3. युक्त

वनखण्ड : वह गुणशीलक चैत्य चहुँओर से एक विशाल वनखण्ड से परिवेष्टित¹ था। वह वनखण्ड सघन वृक्षों से सुशोभित हो रहा था। वहाँ की शीतलता एयर कण्डीशन की शीतलता को पराजित करने में सर्वथा सक्षम थी। वृक्षों की छाया इतनी सघन थी कि वह दिन में रात्रि समान प्रतीत होता था। उस वनखण्ड में घूमने से ऐसा प्रतीत होता था, मानो वह विशाल पयोधरों² से घिरा है।

पादप : अनेक शाखा-प्रशाखाओं से परिमण्डित³ वृक्ष पत्रों पुष्पों और फूलों से लदे हुए अत्यन्त मनोहर लग रहे थे। घने और हरीतिमा युक्त पत्रों से आने वाला समीर वायुमण्डल को प्रदूषण रहित बना रहा था। किसलय⁴ प्रवाल⁵ अपने कोमल गात्र की कमनीयता से समाकृष्ट⁶ कर रहे थे।

सर्व ऋतु में फूलों, मंजरियों, पुष्प-गुच्छों, लता-कुंजों और पत्तों से युक्त रहने वाला वृक्ष-समूह उस वनखण्ड की शोभा में चार चाँद लगा रहा था। मंजरियों से परिवेष्टित⁷ वृक्षों के सामने मारवाड़ी गजरो की सुन्दरता फीकी लग रही थी। वह वनखण्ड विहंगों⁸ की मधुर स्वर लहरियों से सदा अभिगुंजित⁹ बना रहता था। कहीं हरित वर्ण के तोतों का समूह आओ, पधारो, स्वागतम्, सुस्वागतम् आदि-2 शब्दों से स्वागत कर रहा था, तो कहीं उनकी आकर्षक लाल चोंच अधरों की लालिमा का हरण कर रही थी। कहीं अपने रंग-बिरंगे पंखों पर बने नीले चंद्र को फैलाकर मयुर नृत्य कर रहे थे, तो कहीं मैना अपने परिवार सहित निनाद¹⁰ कर रही थी। कहीं कोकिल अपनी मधुर कुहू-2 की ध्वनि से कर्ण कुहरों को व्याप्त कर रही थी, तो कहीं चकोर दिवाकर को देखने हेतु लालायित बना हुआ था। कहीं तीतरों का झुण्ड वृक्षों के झुरमुटों में परिभ्रमण कर रहा था, तो कहीं निर्मल जलाशयों में तैरती बतखें अपनी श्वेतवर्णी आभा को विकीर्ण कर रही थी। कहीं चक्रवाक युगल अपने रात्रि विरह की वार्ता कर रहे थे, तो कहीं सारस पानी में तैर कर संसार समुद्र तिरने की प्रेरणा प्रदान कर रहे थे। फूलों के पराग का आस्वादन कर मधुकर अपने मधुर गुंजार से वातावरण को शब्दमय बना रहे थे, तो कहीं मधु-मक्खियों का समूह मधु एकत्रित करने में निरन्तर लगा हुआ था। कहीं तितलियों का समूह सौँधी-2 मिट्टी के गंध का आस्वादन कर रहा था।

1. घिराहुआ 2. बादलों 3. युक्त 4. अपरिपक्व पत्ते 5. ताम्र वर्णी नवीन पत्ते 6. आकर्षित 7. युक्त 8. पक्षियों 9. गुंजायमान 10. ध्वनि

फूलों और पत्रों से लदे वृक्षों के फल स्वादिष्ट, निरोग और रुचिकर थे। उसी वनखण्ड में बनी चौकोर, गोल और लम्बी बावड़ियों में जाली झरोखेदार सुन्दर भवन बने हुए थे। वृक्षों से निसृत¹ मनमोहक विपुल सुगन्ध अत्यन्त तृप्तिकारक थी। उन वृक्षों के नीचे अनेक रथ, वाहन, डोलियाँ और पालखियाँ रखी हुई थीं। वस्तुतः उस वनखण्ड का वातावरण रमणीय, मनोरम, दर्शनीय, मन का हरण करने वाला और मन में बस जाने वाला था।

अशोक वृक्ष : उस वनखण्ड के मध्यातिमध्य² भाग में एक विशाल भव्य अशोक वृक्ष था। उसकी जड़ें डाभ तथा तृणादि से रहित विशुद्ध थीं। वह पत्र, पुष्प, फल एवं बीज सम्पन्न था। अनेक शाखाओं तथा प्रशाखाओं से सघन बना वह वृक्ष नये हरे, चमकीले पत्रों से, प्रवालों से परिमण्डित³ था। वह पुष्पों और फलों से सदैव झुका हुआ रहता था। वह सर्व ऋतु में फूलों और फलों से अवनत बना रहता था। इस कारण अनेक परिन्दों का वह आश्रय स्थान बना हुआ था। उसके चारों ओर लता कुंज और मण्डप बने थे, जिससे वह अतीव शोभायमान हो रहा था। अपने-अपने रथ, वाहन, डोलियाँ, पालखियाँ उसके नीचे ठहराकर मनुष्य आमोद-प्रमोद में क्रीडारत रहते थे। वह अशोक वृक्ष अपलक नेत्रों से निहारने योग्य था।

उस अशोक वृक्ष के चारों ओर तिलक, लकुच, शिरीष, सप्तवर्ण, दधिपर्ण, लोध्र, धव, चन्दन, अर्जुन, नीप, कुटज, कदम्ब, पनस, दाडिम, शाल, ताल, तमाल, प्रियंगु, राजवृक्ष, नन्दिवृक्षों का समूह था, जो अपनी भव्य आभा से दर्शकों का आकर्षण केन्द्र बना हुआ था।

वृक्षों से अवलम्बित पद्मलता, नागलता, अशोकलता, सहकारलता, पीलुकलता, बसन्तिलता, अतिमुक्तकलताएँ सर्वऋतु में पल्लवित और कुसुमित होकर अपने चिरयौवन के वैभव को प्रदर्शित कर रही थीं।

उस अशोक वृक्ष के अधोभाग में तने से सटा हुआ। एक विशाल शिला-पटक था, जो नीली आभा से सुशोभित, अत्यन्त चमकदार और सचिक्कण था। वह दर्पण तल के समान सुरम्य था। उसके आठ कोने थे। वह चतुर शिल्पियों द्वारा चित्रित भेड़, बैल, अश्व, मनुष्य, मगर, पक्षी, साँप, किन्नर, हाथी, वनलता और पद्मलता के चित्रों से सुसज्जित था।^{xxix}

1. निकलने वाली 2. एकदम बीचों बीच 3. युक्त, सजा हुआ

उस राजगृह^{xxx}नगर में श्रेणिक राजा राज्य करता था। वह महान् हिमवान् पर्वत के समान महान्, मलय पर्वत के समान सुन्दर, सुगन्धित तथा सद्बिचार एवं आचरण वाला निष्कलंक जीवन जीने वाला और प्राचीन राजवंश में उत्पन्न हुआ था। वह राजोचित्त विशिष्ट लक्षणों से युक्त, बहुत से लोगों द्वारा सम्मानित, गुणसम्पन्न एवं सामर्थ्यवान् प्रजारक्षक था। उसका निष्कलंक मातृपक्ष-पितृपक्ष था। वह अन्यान्य राजाओं द्वारा राज्याभिषेक से अलंकृत किया गया था। करुणाशील-हृदयी राजा श्रेणिक मर्यादा पालक तथा मर्यादा नियामक था। वह ऐश्वर्य सम्पन्न होने से मनुष्यों में इन्द्रवत् प्रतीत होता था। वह राष्ट्र की सुरक्षा और कल्याण करने में सदैव तत्पर रहता था। वह धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों पुरुषार्थ में परमार्थ का चिन्तन करने के कारण श्रेष्ठ था।^{xxxi} वह कठोरता और पराक्रम में सिंहतुल्य, रौद्रता में बाघ तुल्य तथा क्रोध को सफल बनाने में सर्पतुल्य था। वह उत्तम, सुस्वार्थी तथा सेवाशील मनुष्यों के लिए आश्रयदाता था। वह पुरुषों में गन्धहस्ती के समान शत्रुमानमर्दक था। विशाल प्रासाद, विशिष्ट अन्तःपुराप्रभावी अश्वशाला, हस्तीशाला, गौशाला और विपुल सम्पत्ति का मालिक था। अनेक प्रकार के उपायों से वह अपने राज्यकोष की वृद्धि करता रहता था। उसके यहाँ पर भोजन करने के बाद बचने वाली विविध-सामग्री आने वाले भिक्षुक-याचक आदि में वितरित कर दी जाती थी। उसके यहाँ अनेक दास-दासियाँ और गाय, भैंस तथा भेड़ों की बहुलता थी। सबल सैन्य बल, शस्त्र बल और धन-धान्य का भरपूर भंडार था। उसकी विशाल शूरवीर सेना सीमा रक्षा करने में एवं पड़ोसी राजाओं को परास्त करने में सर्वथा समर्थ थी। उसने समोत्र विरोधियों का मान भंग कर उनका देश निर्वासन कर दिया था। अतएव वह समोत्र विरोधियों से रहित था। वह दुर्भिक्ष तथा महामारी के भय से रहित, क्षेममय, कल्याणमय, सुभिक्षयुक्त एवं शत्रुकृत विघ्न-बाधा रहित शासन करता हुआ विचरण कर रहा था।^{xxxii}

भगवान् कैसे थे ? : उस समय राजगृह के गुणशील चैत्य में साधना में निरत, आध्यात्मिक ऐश्वर्य से ओत-प्रोत, अविचल संयम पथ पर गतिमान, अपने युग में धर्म के आद्यसंस्थापक, साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविक रूप चार तीर्थ के प्रतिष्ठापक, स्वयं बोध को प्राप्त, पुरुषों में उत्तम, भगवान्^{xxxiii} महावीर पधारे। जिनका आत्मिक शौर्य सिंह के समान था। जो पंक¹ में खिले पंकज की तरह मोहादि भाव रहित निर्लेप जीवन के उद्गाता² थे। जिनका आध्यात्मिक वैभव पुरुषों में गन्ध हस्ती के समान था। जैसे गन्ध हस्ती के आगमन पर सामान्य हाथी स्वतः ही भाग जाते हैं, वैसे ही भगवान् का पदार्पण

1. कीचड़ 2. बताने वाले, कथन करने वाले

होने से पहले ही दुर्भिक्ष, महामारी और अन्य सभी उपद्रव अपने आप शांत हो जाते थे। भगवान के पधारने से प्राणी मात्र को अभय मिल जाने से सब निर्भीक होकर विचरण कर रहे थे। मुमुक्षुजनों के लिए सम्यक् ज्ञान, दर्शन, चरित्र रूप रत्न प्रदान करने वाले प्रभु उनके आश्रय दाता थे। जैसे दीप समस्त वस्तुओं को प्रकाशित करता है, वैसे ही भगवान अपने ज्ञान से तत्वों के यथार्थ स्वरूप के प्रकाशक थे। वे संसार समुद्र में भटकते हुए प्राणियों के लिए द्वीप सदृश्य थे। वे चार गतियों का अन्त करने वाले होने से आध्यात्मिक जगत् के चक्रवर्ती थे। अनुत्तर ज्ञान दर्शन के धारक, अज्ञान से रहित, राग भाव पर विजय प्राप्त करने वाले, रागादि सम्बन्ध की क्षणभंगुरता, असारता जानने वाले थे, इसलिए वे राग को जीतने का मार्ग बताने वाले थे। वे स्वयं आध्यात्मिक गुणों से संसार-सागर को पार करने वाले तथा दूसरों को अवलम्बन देकर संसार से पार उतारने वाले थे। वे राग, द्वेष, कषाय, आसक्ति और परिग्रह की ग्रन्थियों से मुक्त थे और अन्य अनेक भव्यात्माओं की रागादि ग्रन्थियों के विमोचक थे।^{xxxiv} वे स्वयं सर्वज्ञ, सर्वदर्शी थे तथा कल्याणमय-अचल-निरूपद्रव-अन्तरहित-अक्षय-बाधारहित तथा अपुनरागमन¹ वाली सिद्धगति को प्राप्त करने वाले थे।^{xxxv}

उनका अत्यन्त निर्मल, शुभ्र, उज्वल, कान्तिमय, श्रेष्ठतम परमाणुओं से निर्मित ज्योतिर्मय गात्र² सप्त हस्त ऊँचा, समचतुरस्र संस्थान वाला, सुन्दर अस्थिबन्ध वाला था, जिन्हें देखते ही नेत्र आनन्द को प्राप्त करते थे। जिनके शरीर के भीतर रहने वाली 84 प्रकार की वायु उचित गतिशीलता से युक्त थी। जिनका शरीर अत्यन्त सुगठित और निर्लेप था। उनके मुँह से निकलने वाली श्वास की वायु मानो पद्म नामक सुगन्धित द्रव्य या कमल के समान सुगन्धित परिमल³ विकीर्ण कर रही थी। उनकी अत्यन्त सुकोमल त्वचा अतीव मनोहर दृष्टिगोचर होती थी। उनका मांस, हंस-सदृश श्वेतता लिए हुए था। मैल दाग, धब्बे रहित निष्कलंक शरीर अत्यन्त स्वच्छ था। प्रत्येक अंगों से निकलने वाली दीप्ति अविराम दर्शनीय थी। अत्यन्त सघन, पुष्ट स्नायु बंध वाला, उत्तम लक्षणों से युक्त, पर्वत-शिखर के समान उन्नत जिनका मस्तक था। सेमल के बारीक रेशे की तरह अत्यन्त मुलायम, सुगन्धित, सुन्दर केशराशि, भ्रमरवृन्द की भाँति चमकीली कृष्णता लिए, घुंघरालु, छल्लेदार थी, जो बड़ी मनमोहक लगती थी। जिस त्वचा पर केशराशि थी, वह अनार के फूल तथा सोने के समान दीप्तिमान लाल, निर्मल और चिकनी थी।

1. आवागमन रहित 2. शरीर 3. सुगन्ध

उनके मस्तक का ऊपरी भाग सघन तथा छत्राकार था। उनका भव्य ललाट फोड़े, फुन्सी, घाव से रहित समतल, सुन्दर, शुद्ध, अर्धचन्द्र के समान था। प्रमाणोपेतु, दीर्घ कर्ण मुख से सटे हुए बड़े सुहावने लगते थे। उनके दोनों कपोल मांसल और परिपुष्ट थे। उनकी भौहें खींचे हुए धनुष के समान टेढ़ी, कृष्ण-बादल जैसी काली, पतली, और स्निग्ध थी। उनके नयन विकसित श्वेत कमल के समान अतीव आकर्षक थे। पलकें कमल की तरह विकसित थीं। गरूड़ के चोंच की तरह उन्नत, लम्बी, सीधी नासिका थी। बिम्ब फल के समान रक्ताभा¹ लिए अधरों² की कांति मनमोहक थी। निष्कलंक चन्द्र से भी निर्मल, निर्मल शंख, गोदुग्ध, फेन, कुन्द के पुष्प, जलकण और श्वेत कमल-नाल की तरह, समश्रेणि³ में स्थित दन्त पंक्ति थी। उनकी जिह्वा और तालु अग्नि में तपाये हुए स्वर्ण की भाँति लाल चमकदार थे। उनकी दाढ़ी, मूँछ अवस्थित⁴ बहुत हल्के, अद्भुत, सुन्दर थे। उनकी ठुड़ड़ी सुपुष्ट, सुगठित, प्रशस्त तथा चीते की तरह विस्तीर्ण थी। चार अंगुल चौड़ी ग्रीवा पर बनी हुई त्रिवली ज्ञान, दर्शन, चारित्र की उत्प्रेरक थी। उत्तम हस्ती स्कन्ध की तरह परिपुष्ट कन्धे बड़े सुहावने लग रहे थे। उनकी मांसल, पुष्ट, दृढ़, लम्बी भुजाएँ देखते ही हर्षातिरेक पैदा करती थीं। कलाईयाँ सुसंगत, गोल और पुष्ट थीं। उनके हाथ उन्नत, कोमल, मांसल, सुगठित और उत्तम लक्षणों से युक्त थे। अंगुलियाँ मिलाने पर हाथ निच्छिद्र दिखते थे। उनकी हथेलियाँ लाल, पतली, उज्वल, रुचिकर, स्निग्ध एवं सुकोमल थीं। उनकी हथेलियों में चन्द्र, सूर्य, शंख, चक्र, दक्षिणावर्त⁵ स्वस्तिक आदि चिह्न बने हुए थे। उनका वक्षःस्थल स्वर्ण शिला की भाँति उज्वल, समतल, मांसल, चौड़ा और विशालता लिए हुए था। उस पर श्री-वत्स स्वस्तिक का चिह्न बना हुआ था। उनकी देह की परिपुष्टता के कारण मेरूदण्ड दृष्टिगोचर नहीं होता था। उनका शरीर स्वर्ण की भाँति कान्तिमान, निर्मल, सुन्दर था तथा प्रभु का शरीर निरोग था। उनके शरीर में पुरुष के 1008 लक्षण पूर्णतया विद्यमान थे। उनके पार्श्व भाग⁶ नीचे की ओर क्रमशः संकीर्ण, देहानुरूप, सुन्दर, समुचित मांसल और मनोहर थे। उनके वक्ष तथा उदर भाग पर सीधे एक-दूसरे से सटे हुए सर्वोत्कृष्ट, हल्के, काले, चिकने, उत्तम, लावण्यमय बालों की पंक्ति थी। उनके उदर के नीचे के दोनों पार्श्व मत्स्य के समान सुन्दर और परिपुष्ट थे। उनका उदर मत्स्य जैसा था। आन्त्र समूह स्वच्छता एवं निर्मलता लिए हुए था। उनकी नाभि कमलवत् गूढ़, गंगा के भंवर की तरह गोल, दाहिनी ओर चक्कर काटती हुई तरंगों

1. लालिमा युक्त आभा 2. नीचे का होंठ 3. समान पंक्ति 4. नहीं घटने-बढ़ने वाले 5. सीधे हाथ की तरफ आवर्त वाला 6. पसलियाँ, पसवाड़े

की तरह घुमावदार, सुन्दर चमकते सूर्य के किरणों से विकसित कमल की तरह थी। उनकी देह का मध्यभाग मूसल, दर्पण के हत्थे के मध्य भाग समान, तलवार की मूठ तथा उत्तम वज्र के समान गोलाकार, पतला, प्रमुदित, रोग रहित था। उत्तम अश्व और सिंह के समान कमर गोल घेराव वाली थी। अश्व की तरह उनका गुदामार्ग, मूत्र द्वार सदैव निर्लेप रहता था। गजहस्ती की तरह गम्भीर चाल थी। हस्ती सूंडवत् उनकी जंघाएँ सुगठित थीं। उनके घुटने डिब्बे के ढक्कन की तरह निगूढ़, मांसल थे। उनकी पिण्डलियाँ मृगी¹वत् क्रमशः उतार सहित एवं गोल थीं। उनके टखने सुन्दर, सुगठित थे। उनके चरण कच्छापाकार² होने से मनोज्ञ थे। उनके पैरों की अंगुलियाँ क्रमशः छोटी, बड़ी, सुन्दर, एक-दूसरे से सटी हुई थीं। पैरों के नख उन्नत, पतले, ताम्रवर्णी, स्निग्ध थे। उनकी पगथलियाँ³ लालकमल के पत्रवत् मृदुल, सुकुमार और कोमल थीं। उनके चारू⁴ चरण पर्वत, नगर, मगर, सागर तथा चक्ररूप इत्यादि उत्तम चिह्नों से युक्त थे। उनका असाधारण रूप था और उनका तेज निर्धूम अग्नि की ज्वाला, विस्तीर्ण⁵ विद्युत् तथा उषाकालीन सूर्य-मरीचियों⁶ के समान था। वे प्राणातिपात आदि आश्रव स्थानों से रहित, राग-द्वेष विजेता, निर्ग्रन्थ प्रवचन के उपदेष्टा, धर्मसंघ के नायक, प्रतिष्ठापक और श्रमण-पति थे।^{xxxvi} वे सदैव श्रमण-वृन्द से घिरे रहते थे। वे चौत्तीस अतिशय और पैंतीस वाणी के गुणों से सम्पृक्त⁷ थे। आकाशगत चक्र, आकाशगत छत्र, आकाशगत चंवर, आकाशगत स्वच्छ स्फटिकमय सिंहासन और धर्मध्वज उनके आगे चलते थे। चौदह हजार साधु और छत्तीस हजार साध्वियों का उनका परिवार था। ऐसे भगवान महावीर स्वामी एक गाँव से दूसरे गाँव विचरण करते हुए राजगृह की ओर पधार रहे थे।^{xxxvii}

संयम की राह : राजगृह की सम्पूर्ण जनता पलक-पावड़े बिछाये प्रभु के आगमन का इन्तजार कर रही थी और भगवान उन पर अनुग्रह करने ग्रामानुग्राम विहार करते हुए राजगृह नगर के गुणशीलक चैत्य में पधारे। यथायोग्य अवग्रह ग्रहण कर तप-संयम से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विराजने लगे। भगवान के आगमन के समाचार समीर की तरह सम्पूर्ण राजगृह में प्रस्सृत हो गये। राजगृह की धर्म श्रद्धालु जनता में हर्ष की लहर संव्याप्त हो गयी।^{xxxviii} समूह के समूह बनाकर परिषद प्रभु के दर्शनार्थ और धर्म श्रवणार्थ निकली। मंकाई गाथापति ने भी जब यह वृत्तौन्त ज्ञात किया तब वह अत्यन्त हर्षित

1. हिरणी की तरह 2. कच्छुए की पीठ की तरह उठे हुए 3. पैर के तलुए 4. सुन्दर 5. फैले हुए 6. किरणों 7. युक्त

होकर स्नानादि करके यावत् शरीर को समलंकृत कर अपने घर से निकला और पैदल चलकर जहाँ भगवान महावीर थे, वहाँ पर पहुँचकर भगवान की विधिवत् पर्युपासना करने लगा। भगवान ने अपनी अमृतमयी देशना से भव्यों को प्रतिबोध दिया कि मनुष्य जीवन अत्यन्त दुर्लभ है।^{xxxix} इन क्षणों का आत्मजागृति में उपयोग करने वाला सुख के मार्ग की ओर प्रस्थान कर देता है। संयम ही सर्वोत्कृष्ट सुख का राजमार्ग है। इसे जिन्होंने भी अपनाया वे निहाल हो गये।^{xl}

इस प्रकार की धर्म-देशना का श्रवण कर मंकाई गाथापति ने भगवान से कहा- भंते! आपश्री का उपदेश श्रवण कर मेरी अन्तरात्मा धर्म-मार्ग में जागृत बनी है, अतएव हे देवानुप्रिय! मैं अपने ज्येष्ठ पुत्र को कुटुम्ब का उत्तरदायित्व सौंपकर आपश्रीजी के चरणों में प्रव्रजित होना चाहता हूँ।

ज्ञातपुत्र^{xxi} भगवान ने फरमाया- तुम्हें जैसा सुख हो वैसा करो, लेकिन धर्मकार्य में प्रतिबंध मत करो।

भगवान द्वारा ऐसा कहे जाने पर अतीव हर्षित हो मंकाई गाथापति अपने घर आया और चुलनी पिता की तरह स्वजन-सम्बन्धियों को बुलाकर, भोजन करवाकर उसने अपने ज्येष्ठ पुत्र को कुटुम्ब का भार सौंप दिया।

तत्पश्चात् अपने मित्र, जातिजन, स्वजनादि तथा ज्येष्ठ पुत्र की अनुमति लेकर सहस्र-पुरुषों द्वारा वहन करने योग्य शिविका पर समारूढ़ हुआ और उदायन राजा (जिसका वर्णन अपिश्चम तीर्थकर भाग-दो, पंचम वर्ष) की तरह परम-उत्साह से संयम ग्रहण किया। संयम लेकर मंकाई अणगार पाँच समितियों और तीन गुप्तियों की विधिवत् आराधना करने लगे।

टिप्पण : कालान्तर में उन्होंने गुण-सम्पन्न और वेष-सम्पन्न स्थविरों के समीप सामायिकादि ग्यारह अंगों का अध्ययन किया।

स्कन्दकजी के समान गुणरत्न संवत्सर तप का यथाविधि आराधन किया। सोलह वर्ष तक संयम पर्याय का पालन किया और अन्त में विपुलगिरि पर्वत पर स्कन्दकजी की तरह संथारा करके सिद्धगति को प्राप्त हुए।

भगवान की भवजल-तारिणी वीतराग-वाणी प्रतिदिन भव्यों का उपकार कर रही थी। अनेक भव्यात्माएँ भगवत्-चरणों में आकर आत्मकल्याण कर रही थी। राजगृह निवासी किंकम गाथापति ने भी मंकाई की तरह भगवान के समीप धर्म-देशना श्रवण कर तत्पश्चात् दीक्षित होकर संयम-पर्याय का पालन करके सिद्ध-गति को प्राप्त किया।

अहा जिन्दगी : राजगृह नगर में अर्जुन मालाकार नामक एक मालाकार रहता था। उसका नगर के बाहर अनेक रंग-बिरंगे फूलों से सुवासित एक उद्यान था। अनेक प्रकार के वृक्षों से घिरा वह उद्यान महामेघों¹ के समान कृष्ण आभा लिए हुए था। राजगृह की जनता के लिए वह उद्यान आकर्षण का केन्द्र बना हुआ था। उस पुष्पोद्यान के पास ही मुद्गरपाणि नामक यक्ष का यक्षायतन² था। उस यक्षायतन² की अर्जुन मालाकार के पिता, दादा, परदादा पूजा किया करते थे। अतएव अपने कुल की परम्परा नुसार अर्जुनमाली भी उसकी पूजा उपासना में संलग्न रहता था। उस मुद्गरपाणि यक्ष³ के यक्षायतन का राजगृह में अतिशय प्रभाव था। उस यक्षायतन में मुद्गरपाणि यक्ष की एक प्रतिमा बनी हुई थी। उस प्रतिमा में मुद्गरपाणि यक्ष के हाथ में एक हजार पल वाला लोह का मुद्गर स्थित था।

अर्जुनमाली के पैतृक संस्कार सुदृढ़ होने से वह बचपन से ही मुद्गरपाणि^{xxii} यक्ष का परमभक्त था। वह प्रतिदिन प्रातः नित्यकर्म से निवृत्त होकर अनेक टोकरियाँ लेकर राजगृह नगर से बाहर निकलता। निकलकर जहाँ स्वयं का उद्यान था, वहाँ आता और उस उद्यान में विकसित, सुरभित कुसुमों का चयन करता। उसके पश्चात् खिले हुए श्रेष्ठ पुष्पों को लेकर मुद्गरपाणि यक्ष के यक्षायतन में जाता और उन योग्य पुष्पों से मुद्गरपाणि यक्ष की पूजा करता तत्पश्चात् राजगृह के पथ पर आजीविका करके अपना जीवन निर्वाह करता था। उस राजगृह नगर में ललितांग नामक छः मित्रों की गोष्ठी थी। ये छहों मित्र समान आयु वाले थे। यौवन का उन्माद चरमसीमा को प्राप्त था और साथ में ऋद्धि से सम्पन्न थे। राज-अनुग्रह सम्प्राप्त होने से उनका कोई तिरस्कार नहीं कर सकता था। इस प्रकार सम्पूर्ण सामग्री और विलासिता में आकठ डूबे उनमें अनेक प्रकार की असद्-प्रवृत्तियाँ घर कर गयी और वे मनचाही हरकतें करते हुए यत्र-तत्र सर्वत्र घूमने लगे। उनका निरंकुश मन बिना लगाम वाले अश्व की तरह घूमने लगा और उन्होंने अपनी पाँचों इन्द्रियों को खुला छोड़ दिया। एक-एक इन्द्रिय का अनियन्त्रण भी महान् अनर्थ का कारण होता है, फिर पाँच इन्द्रियों के अनियन्त्रण का तो कहना ही क्या? वह ललितांग गोष्ठी स्वच्छन्द बनकर मानवीय सभ्यता और संस्कृति को लील रही थी।

इधर राजगृह नगर में एक बार प्रमोद महोत्सव की घोषणा हुई कि अमुक दिन प्रमोद महोत्सव होगा। जब यह घोषणा अर्जुन-मालाकार को ज्ञात हुई तो समय आने पर

1. मेघ माला/बादल समूह 2. यक्षायतन-यक्ष-मन्दिर 1. यक्ष-जो निवास स्थान को शीघ्र बदलते हैं (उत्तरा. चूर्ण)

उसने चिन्तन किया कि कल नगर में प्रमोद महोत्सव है और प्रमोद महोत्सव में अत्यधिक फूल लोग खरीदते हैं और उसका पुष्पाभरण आदि बनाने में उपयोग करते हैं। इसलिए प्रातः काल जल्दी उठकर बगीचे में जाऊँगा और अधिकाधिक पुष्प बेचकर आजीविका प्राप्त करूँगा। ऐसा चिन्तन करने के पश्चात् अर्जुनमाली ने अपनी पत्नी बन्धुमती से कहा- प्रिये! कल प्रातः तुम जल्दी उठना और मैं भी जल्दी उठूँगा। हम दोनों जल्दी उठकर उद्यान में चलेंगे और अधिक से अधिक फूलों का संग्रह करेंगे क्योंकि कल प्रमोद महोत्सव है और बहुत से लोग आमोद-प्रमोद में अपना समय व्यतीत करेंगे तथा फूलों के आभरण बनाकर अपने शरीर को अलंकृत करेंगे। बन्धुमती भार्या स्वामी के अनुरूप चलने वाली थी। उसने पति के कहते ही उनके अनुरूप ही अपने विचारों को प्रकट करते हुए कहा- स्वामिन्! ऐसा ही करेंगे। जैसा लौह का चुम्बक के प्रति आकर्षण होता है, वैसा ही पतिव्रता का पति की आज्ञा के प्रति समर्पण होता है। वह पति की इच्छानुरूप अपने जीवन को ढालने वाली होती है। बन्धुमती ऐसी ही समर्पित सद्नारी थी। उसने पति के वचनों का अनुसरण करने में अपनी सहमति जताई और वे यामिनी¹ के नीरव² वातावरण में अपनी थकान अपगत³ करते हुए निद्रा की गोद में चले गये। स्वल्प निद्रा के पश्चात् संकल्पानुसार बन्धुमती और अर्जुन दोनों ने निद्रा का परित्याग किया नित्यकर्म से निवृत्त होकर प्रातःकाल अपनी टोकरियाँ लेकर दोनों घर से निकलकर उद्यान की ओर चले गये। उद्यान में पहुँचकर दोनों एकाग्रतापूर्वक पुष्प-चयन करने लगे। इन्सान अपने भविष्य की कल्पना में अनेक ख्वाब संजोये रहता है, लेकिन कितने ख्वाब कब कैसे धाराशायी हो जाते हैं, कब क्या अनजाना, अनचाहा, अनसोचा घटित होता है वह छद्मस्थों की कल्पना से परे है। अर्जुन मालाकार आज के दिन बहुत सुखद कल्पनाओं से अभिभूत⁴ बना हुआ था, लेकिन कब सुखद क्षण दुःख में परिवर्तित हो जाये इसका अन्दाज लगाया नहीं जा सकता।

इधर अर्जुन मालाकार अपनी कल्पनाओं को साकार करने के ताने-बाने बुन रहा था। उधर वहीं स्वच्छन्द प्रवृत्ति में निरत ललितांग नामक छहों मित्रों की मण्डली भी जहाँ मुद्गरपाणि यक्ष का यक्षायतन था, वहाँ पर पहुँच गयी और स्वच्छन्द विचरण करने लगी।

अर्जुनमाली उद्यान में अपनी पत्नी के साथ सुरभित सुगन्धित विकसत सुमनों का चयन कर टोकरियाँ भर रहा है। एक के बाद एक सारी टोकरियाँ भरने के पश्चात् वह

1. रात्रि 2. शांत 3. दूर 4. युक्त

अपनी पत्नी से कहता है चल पहले मुद्गरपाणि यक्ष की उपासना करते हैं। उसके पश्चात् ही फूलों का विक्रय करेंगे। पत्नी अपने पति की अनुगामिनी बनी हुई स्वामी के वचनों को स्वीकार करती है और दोनों पुष्पों से लदी टोकरियाँ लेकर मुद्गरपाणि यक्ष के यक्षायतन की ओर चलने लगते हैं।

आकाश मण्डल में सूर्य का पदार्पण हो गया था। वह अपनी पीताभ¹ मयूखों² को प्रसृत³ कर रहा था। उसकी आभा में बन्धुमती का रूप और यौवन चरम उत्कर्ष को प्राप्त हो रहा था। इधर ललितंगा गोष्ठी वाले छहों मित्रों की कामुक कुदृष्टि बन्धुमती पर गिरी और गिरते ही ऐसे विकार पैदा हुआ मानो दूध में नींबू गिर गया हो। वे उसे देखकर परस्पर वार्तालाप करने लगे- देवानुप्रियों! बन्धुमती आ रही है। उसका रूप और यौवन रतिक्रीड़ा⁴ के लिए उत्प्रेरित कर रहा है। हम अर्जुन को अवकोटक बन्धन⁵ से बाँधकर बन्धुमती के साथ भोग भोगते हुए विचरण करेंगे। ऐसा विचार कर छहों ने दृढ़ निश्चय कर लिया और वे मौन होकर दरवाजे के पीछे अपने पापिष्ठ हृदय में कुत्सित भावनाओं को लिए हुए छिप गये।

अर्जुन मालाकार अपनी स्वधर्मिणी सहित शनैः-2 मुद्गरपाणि यक्ष के मन्दिर की तरफ आता है और जहाँ यक्ष की प्रतिमा थी, वहाँ प्रणाम करता है। श्रेष्ठ कुसुमित सुरभित पुष्पों से अर्चना करता है। घुटने और पाँव टेककर श्रद्धा पूर्वक नमन करता है। जैसे ही अर्जुन मालाकार झुकता है, वैसे ही अवसर की प्रतीक्षारत वे छहों मित्र अतिशीघ्रता से निकलते हैं, निकलकर अर्जुन मालाकार को पकड़कर अवकोटक बन्धन से बाँधते हैं और निःसहाय बन्धुमती के साथ जबरन विपुल भागों को कामी श्वानों की तरह सेवन करते हैं। भोग आदमी को अन्धा बना देता है, विवेकहीन बना देता है और मन को शैतान बना देता है।

इधर बंधन से आबद्ध परवश बना अर्जुन क्रोध से तमतमाते हुए नैत्रों से अपने अभीष्ट मुद्गरपाणि की प्रतिमा की ओर तीक्ष्ण दृष्टि से देखता है और चिन्तन करता है- मुद्गरपाणि! मैं प्रतिदिन तुम्हारी पूजा-अर्चा करता हूँ, तुम्हारी अर्चना करने के बाद ही मैं अपनी आजीविका के लिए उद्यत होता हूँ, यदि तुम इस प्रतिमा में होते तो क्या मेरे साथ

1. पीली प्रभा 2. किरणों 3. फैलाना 4. कामक्रीड़ा 5. अवकोटक बन्धन: - गले में रस्सी डालकर उसे पीछे मोड़ना तथा दोनों भुजाओं को पीठ के पीछे ले जाकर बांधना, अवकोटक बन्धन है। इसे लोक व्यवहार में मुश्कें बांधना भी कहते हैं।

यह सब अनिष्ट घटित होता? यह तो मात्र प्रतिमा है। प्रतिमा.....। यक्ष अर्जुनमाली के विचारों को जानकर तथा स्वयं पर अश्रद्धाउत्पन्न हुए देखकर तुरन्त अर्जुन मालाकार के शरीर में प्रविष्ट हो जाता है। यथाविष्ट अर्जुन अपने अवकोटक बन्धनों को तड़ातड़ तोड़ देता है, फिर हजार पल^{xxiii} वाले भारी भरकम मुद्गर को ग्रहण करता है और उसी समय उन छहों पुरुषों और अपनी बन्धुमती भार्या को प्राण रहित कर डालता है।

अब वह यथाविष्ट अर्जुन परवश बना हुआ प्रतिदिन छह पुरुष और एक स्त्री की घात करता हुआ राजगृह में घूमता रहता है।

जैसे ही अर्जुन ने इस प्रकार हत्या का कार्य प्रारम्भ किया, राजगृह के कोने-2 में, गलियों में, राजमार्गों में यह सूचना कानो-कान निरन्तर लोगों तक पहुँचने लगी। सम्राट श्रेणिक को भी यह सूचना गुप्तचरों के माध्यम से मिली।

सूचना प्राप्त होते ही राजा श्रेणिक ने यह घोषणा करवा दी कि अर्जुन मालाकार प्रतिदिन राजगृह के बाहर 7 (सात) स्त्री-पुरुषों की हत्या कर रहा है। अतएव कोई भी नागरिक लकड़ी, तृण, फल, फूल के लिए बाहर न जाये। सेवकों ने यह सूचना दो बार-तीन बार, पूरे नगर में घूम-घूम कर प्रत्येक नागरिक तक पहुँचा दी।

उस समय उस राजगृह नगर में ऋद्धि सम्पन्न जीवाजीवादि तत्वों का ज्ञाता सुदर्शन नामक प्रतिष्ठित श्रमणोपासक रहता था।

वह संसार में प्राणी किस प्रकार कर्म-बन्धन से बन्धता है और किस प्रकार कर्म-मल से रहित होता है, इस तथ्य को भलीभाँति जानता था। प्रत्येक कार्य में वह अत्यन्त स्वावलम्बी था। वह अपने किसी भी कार्य में दूसरों की सहायता की अपेक्षा रहित था। जिनवाणी पर उसकी इतनी अटूट श्रद्धा थी कि उसे कोई भी देव, दानव, यक्ष, राक्षस आदि निर्गन्ध-प्रवचन से विचलित नहीं कर सकता था। उसे वीतराग भगवन्तों की वाणी में किंचित् मात्र भी सन्देह नहीं था। उसने शास्त्रों के ज्ञान में प्रावीण्य प्राप्त कर लिया था। उसके अस्थि-अस्थि और मज्जा-मज्जा में सर्वज्ञ देवों के प्रति अनुराग भरा था। वह एकमात्र निर्गन्ध प्रवचन को ही सत्य-सारभूत समझता था।

ज्ञान और श्रद्धा का बेजोड़ संगम होते हुए भी उसका हृदय दया भावना से सदैव ओतप्रोत बना रहता था। उसके घर के द्वार सदैव दान के लिए खुले रहते थे। आज भी द्वार तो घरों में खुले रहते हैं, लेकिन एक रोटी तवे पर, एक चकले पर, एक थाली में और डिब्बा खाली मिलता है, बचा हुआ आटा फ्रीज में रख दिया जाता है। नौ बजे नाश्ता व दो बजे खाना उसमें भी कुछ नहीं बचाना, तो द्वार खुले रहने पर भी दान नहीं लगता।

आज पत्थरों पर नाम लगता है, लेकिन घरों से दान नहीं। याचकों की तो बात ही क्या? आये हुए अतिथियों को भी होटल में ठहराना, वहीं खिलाना-पिलाना घर के दर्शन तक नहीं करवाने की परम्परा चालू है। यहाँ तक कि वृद्ध माता-पिता भी सुबह-2 सिसकियाँ भरते रहते हैं। बहू के चौके में आने की प्रतीक्षा में नौ बजा दिया करते हैं और उसके बाद भी कम्पकम्पाते हाथों से स्वयंमेव दूध-चाय नाश्ता बनाकर खा-पी लिया करते हैं। अपने हाथों से स्वयं का भोजन भी नहीं बनाना, वह या तो नौकरानी बना दिया करती है या फिर ढाबे से, टिफिन सेन्टर से या होटल से आ जाता है। हर महिला ऑफिस में, बड़ी-2 कम्पनी में जाना चाह रही है और रसोईघर शैताइनघर बन रहा है। आटे में लट्टे, दाल में धनेरिये, चावल में इलियाँ पड़ रही है, फिर भी हर महिला अपने को आदर्श कह रही है। इस अन्धे धन की दौड़ में घरों की व्यवस्था अस्त-व्यस्त बनकर चरमरा रही है और भविष्य में आने वाले नतीजों के बारे में विचार करते ही धरती थर-थरा रही है। क्या होगा आगे का हाल? बच्चे तो विदेश में जाकर जिम्मेदारी से मुक्त बन रहे हैं और माता-पिता को वृद्धाश्रम की ओर भेज उसे 'अपनाघर' बता रहे हैं।

जरा ठहरकर सोचो- समझो कि सभ्यता और संस्कृति के चिन्दे-चिन्दे करके कहाँ तक हम अपने जीवन के ढाँचे को सुव्यवस्थित बना पायेंगे?

आओ मेरे साथ : सुदर्शन श्रावक तो नित्यप्रति घर में बनने वाली खाद्य-सामग्री से इतना लाभ उठाता था कि उसके यहाँ से कोई भी याचकादि खाली नहीं जाता था। उदार मनोवृत्ति से आप्लावित सुदर्शन श्रावक शीलधर्म में अत्यन्त निष्ठावान था। उसके नयनों से झलकने वाले शील की सात्त्विक ज्योति से राजगृह का प्रत्येक परिवार नतमस्तक था। इसी कारण वह बिना प्रतिबन्ध के किसी भी घर या अन्तःपुर में चला जाता था। उसका आगमन सभी के दिलों में आह्लाद पैदा करने वाला था। वह श्रावक के बारह व्रतों का निरतिचार पालन करने वाला था। अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्था और पूर्णिमा के दिन वह प्रतिपूर्ण पौषध करता था।^{xliii} श्रमण-निर्ग्रन्थों को अशन, पान आदि चौदह प्रकार की वस्तुओं से प्रतिलाभित करता हुआ विहरण करता था।^{xliiii}

इधर उसी समय श्रमण भगवान महावीर राजगृह नगर के बाहर गुणशीलक उद्यान में पधारे हुए थे। प्रभु के आगमन के समाचार अनेक लोगों को ज्ञात हुआ और वे राजगृह के त्रिकोणादि मार्गों पर इस प्रकार की चर्चा करने लगे कि जिनके नाम, गोत्र श्रवण करने मात्र से भी महाफल को समुपलब्धि होती है, ऐसे महाप्रभु महावीर का पदार्पण हो गया

है। उनके दर्शन करने से तो महान लाभ होगा ही, फिर उनके द्वारा-प्ररूपित धर्म के अर्थ को ग्रहण करने से क्या फल होगा उसका तो कहना ही क्या!

अनेक पुरुष जब इस प्रकार का वार्तालाप कर रहे थे, तो उसे श्रवण कर सुदर्शन सेठ के हृदय में यह विचार उत्पन्न हुआ कि अहो! स्वयं देवाधिदेव भगवान महावीर यहाँ पधारें हैं। मेरे भगवान मेरे यहाँ पर पधारें हैं, तो मुझे भगवान के दर्शन करने जाना चाहिए। मेरे अन्तरमन में भगवान के दर्शन करने के प्रबल भाव उठ रहे हैं। कितना भव्य उनका मुखमण्डल, कैसा उनका ओजस्वी वह आभामण्डल, अहा! जिन्हें देखते ही मेरा रोम-2 पुलकित हो उठता है। मेरा मन थकता नहीं है, मेरे भाव रुकते नहीं हैं। जिनका गंगा-सा निर्मल जीवन मेरे लिए शांति का शीतल झरना बहा देता है। जिनको गम्भीर वाणी सुनने को मेरा मन बेताब हो रहा है। जिनकी मधुर स्वरलहरियाँ मेरे कण-2 को ऊर्जावान बना देती हैं, जिन्हें देखते ही मैं सबकुछ विस्मृत कर जाता हूँ, अब जाता हूँ उन्हीं के पास। सुदर्शन के मन में बसे भगवान महावीर और वे चले गये अपने माता-पिता के पास। अपने दोनों हाथों को अंजलिबद्ध करके माता-पिता को प्रणाम किया और निवेदन करने लगे- पूज्य माताजी! पिताजी! भगवान महावीर गुणशीलक उद्यान में पधार गये हैं, जिनकी मैं निरन्तर प्रतीक्षा करता रहता था, जिनके दर्शन करने के लिए मेरा मन लालायित बना रहता था, जिनके वचन श्रवण करने की मेरी हमेशा जिज्ञासा बनी रहती थी, वे मेरे मनभावन भगवान पधार गये हैं, मैं उनकी पर्युपासना करने हेतु चला जाऊँ?

सुदर्शन के भक्तिभाव से ओत-प्रोत वचनों को श्रवणकर माता-पिता ने कहा- पुत्र। तुम्हारी भावनाएँ बड़ी सुन्दर एवं अनुकरणीय हैं, लेकिन पुत्र! तुम स्वयं समझदार हो। इन दिनों अर्जुन मालाकार का पूरे राजगृह में आतंक छाया हुआ है और तुम यदि इस समय जाते हो तो अर्जुन तुम्हारे शरीर को क्षति पहुँचा सकता है, इसलिए तुम यही रहकर भगवान महावीर स्वामी को वन्दन कर लो, वे तुम्हारा वन्दन यहाँ से स्वीकार कर लेंगे।

सुदर्शन ने माता-पिता से यह श्रवण किया और श्रवण करने के पश्चात् बड़े ही विनम्र शब्दों में निवेदन किया।

आये हैं मम द्वार प्रभु,

कैसे ना जाऊँ मैया?

प्रभु दर्शन बिन,

मेरा तो मुरझाता जाता है हिया!

भगवान देखें ? मैं ना देखूँ ?
यह विपदा है भारी।
बिन देखे स्वामिन को तो,
क्या मिटती प्यास हमारी ?
जीवन, मरण, कष्ट, सुख-दुःख सब
मिलते कर्मानुसारी।
लेकिन प्रभु बिन रह पाऊँ,
क्या होती यह तैयारी ?
समवसरण का ठाठ लगा है,
दिव्य बड़ा मनभावन !
देवलोक से देव आ गये
मानो आया सावन !
जैसे मेघ देखने हेतु
मयूर ही अकुलाता है
मेरा मन प्रभु को देखे बिन, तरस-तरस जाता है
आज्ञा दे दो ! आज्ञा दे दो !
प्रभु समीप जाऊँ मैं
अपने सूने आँगन में, भक्ति दीप जलाऊँ
ना रुक पाता, ना टिक पाता,
चंचल वीची सा मन।
आज्ञा दे दो मैया मेरी,
पाऊँ मैं प्रभु का धन।

सुदर्शन का हृदय भगवान के विरह को सहन करने में असमर्थ बन रहा था। वह भगवान के बिना आकुल-व्याकुल बन रहा था। उसके भावना का ज्वार रोके नहीं रुक पा रहा था। जैसे पर्वत से निकली सरिता सागर से मिलने के लिए कलकल दौड़ी जाती है, वैसे ही वह भी परमात्मा से मिलने के लिए अतीव आतुर था। उसके सुकोमल वचनों से झलकने वाली आतुरता ने माता-पिता के दिल में हिलोरो का संचार कर दिया। वे इस बात को समझ गये कि सुदर्शन को रोकना, उसके दिल में आघात-प्रत्याघात पहुँचाना है।

लेकिन पुनरपि एक प्रयास और कर लेते हैं, ऐसा सोचकर वे माता-पिता कहते हैं- पुत्र! तुम्हारी भावना उत्तम है, श्रावकोचित्त है, लेकिन बेटा! अर्जुन के आतंक को श्रवण करके हमारा कलेजा कम्पायमान हो रहा है। ऐसे इस हिंसक माहौल में हम तुम्हें कैसे भेज सकते हैं? कैसे अनुमति दे सकते हैं? इसलिए कुछ समय के लिए ठहरो, फिर जैसा अवसर होगा।

तब सुदर्शन ने कहा- मैया! स्वाति की बूंद के लिए लालायित चातक जैसे स्वाति में पानी मिलने पर जलपान किये बिना नहीं रहता, उसी प्रकार अब मैं अपने भीतर उमड़ते हुए भावनाओं के ज्वार को नहीं रोक पा रहा हूँ। इस नश्वर देह का तो एक दिन वियोग निश्चित है। मैं देह का वियोग सहन कर सकता हूँ, परन्तु प्रभु का वियोग सहन करने में समर्थ नहीं हूँ। इसलिए आप मेरी भावनाओं को अमलीरूप देने के लिए मुझे अनुमति प्रदान कर अनुग्रहीत करें।

माता-पिता ने देखा कि सुदर्शन की प्रबल भावना का वेग अब किसी भी प्रकार से रुकने वाला नहीं है, अतएव उन्होंने कहा- बेटा! तुम्हारी प्रशस्त भावनाओं के सामने हम नतमस्तक है, इसलिए अब तुम्हें जैसा सुख हो वैसा करो।

उस समय माता-पिता के मुख से निसृत अनुकूल वचनों द्वारा आज्ञा मिलने पर सुदर्शन श्रावक का रोम-2 पुलकित हो गया कि अहो! आज मेरे माता-पिता ने अनुग्रह करके मुझे अनुमति दे दी है।

आज तो माता-पिता की आज्ञा लेने की परम्परा नष्टप्रायः हो गयी है। माता-पिता भले ही सन्तान से आज्ञा लेते नजर आते हैं। आजकल के लड़के और लड़कियाँ माता-पिता की आज्ञा में यदि चल पायें तो समझिये उस घर में पुण्यवानी प्रबल है। अनुशासन और मर्यादाएँ घरों से प्रायः पलायन कर रही है। आदर-सम्मान तो दिलों से भी कोसों दूर दिखाई दे रहा है। बड़े-बुजुर्ग तो मौन साधे मूकदर्शक की भाँति वातावरण का मात्र अवलोकन करके रह जाते हैं। इस दूषित वातावरण में माता-पिता को जब बोलने का ही अवसर नहीं, तब आज्ञा देना और बच्चों द्वारा आज्ञापालन कर लेना वह तो प्रायः असंभव-सा बन गया है।

सेठ सुदर्शन की यह विनय-प्रतिपत्ति आदर्श बनकर उन सन्तानों का पथ-प्रदर्शन कर रही है, जो कर्तव्य मार्ग को सन्मुख रखकर अपना जीवन समर्पण के धरातल पर दैदीप्यमान बनाना चाहते हैं।

सेठ सुदर्शन उन्हीं श्रेष्ठ मनोभावों में बहुता हुआ, आनन्द को प्राप्त करता हुआ,

स्नानादि करके, वस्त्राभूषणों से अलंकृत होकर पैदल ही चलते हुए मुद्गरपाणि यक्ष के यक्षायतन के न अति दूर न अति निकट चलते हुए गुणशील उद्यान की ओर जाने लगा, जहाँ भगवान महावीर विराज रहे थे।

इधर अर्जुनमाली जिसके भीतर मुद्गरपाणि यक्ष प्रविष्ट था, वह भी उधर ही परिभ्रमण कर रहा था। संयोग से मुद्गरपाणि-यक्ष ने सुदर्शन श्रमणोपासक को समीप से ही जाते हुए देखा। उन्हें देखकर वह क्रुद्ध हुआ, रूष्ट, दांत पीसता हुआ, हजार पल वाले लोहे के मुद्गर को घुमाता हुआ सुदर्शन श्रमणोपासक की ओर आने लगा। सुदर्शन श्रावक ने मुद्गरपाणि यक्ष को अपनी ओर आते हुए देखा और देखकर चिन्तन करने लगा- अभी मेरी मृत्यु इस मुद्गरपाणि द्वारा संभव है, लेकिन मुझे किसी प्रकार का भय या उद्वेग नहीं है, क्योंकि एक दिन तो मृत्यु निश्चित है। इस प्रकार निर्भीक और अविचलित हृदय से उसने वस्त्र के अंचल से भूमि का प्रमार्जन किया तदनन्तर पूर्व दिशा की ओर मुँह करके दोनों हाथ अंजलिबद्ध करके मस्तक पर रखे और कहने लगा-

“मैं मोक्ष-प्राप्त सभी अरिहन्त-भगवन्तों को नमस्कार करता हूँ एवं धर्म की आदि करने वाले श्रमण भगवान महावीर को नमस्कार करता हूँ जो कि भविष्य में मोक्ष पधारने वाले हैं।

मैंने पहले श्रमण भगवान महावीर से स्थूल प्राणातिपात, स्थूल मृषावाद, स्थूल-अदत्तादान, स्वदार-सन्तोष और इच्छा-परिणाम रूपव्रत जीवनपर्यन्त के लिए ग्रहण किया था। अब मैं उन्हीं श्रमण भगवान महावीर को साक्षी से प्राणातिपात आदि का सर्वथा आजीवन त्याग करता हूँ। मैं सर्वथा क्रोध मान आदि 18 पापस्थान का आजीवन त्याग करता हूँ। (इस प्रकार अशन, पान, खादिम और स्वादिम इन चारों प्रकार के आहार का त्याग करता हूँ।) यदि मैं उस आसन्न¹ मृत्यु उपसर्ग से बच गया तो इस त्याग का पारणा करके आहारादि ग्रहण करूँगा। यदि इस उपसर्ग से मुक्त न बनूँ तो सम्पूर्ण त्याग जीवनपर्यन्त के लिए है। ऐसा निश्चय करके सुदर्शन सेठ ने उपर्युक्त रीति से सागारी पडिमा^{xxiv} अनशन व्रत को धारण किया और आत्मचिन्तन में लीन होकर अपने पावन मनभावन प्रभु महावीर का स्मरण करने लगा।

इधर हजार पलवाले लौहमय मुद्गर को घुमाते हुए वह मुद्गरपाणि यक्ष सुदर्शन श्रमणोपासक को मारने हेतु समीप आया। लेकिन कौन किसको मार सकता है? और

1. आसन्न-निकट

कौन किसकी मृत्यु को रोक सकता है? मृत्यु और जीवन की डोर कर्माधीन है, उसमें दूसरा कोई किंचित् मात्र भी परिवर्तन नहीं कर सकता। निर्भीक बना सुदर्शन श्रावक तो मृत्यु रूपी उपसर्ग का अंधेरा आने से पहले भक्ति और ज्ञान का दीप जला चुका था। इसी भक्ति की महान् शक्ति से मीरा ने जहर को अमृत कर दिया, सुदर्शन ने शूली को सिंहासन बना दिया, सोमासती ने साँप को फूल माला बना दिया और सीताजी ने अग्नि को निर्मल नीर बना दिया। यहाँ तक कि भक्ति ने सुभद्रा का कलंक भी दूर कर दिया। जिसने भी प्रभुभक्ति, गुरुभक्ति का सहारा लिया वह दुःख-मुक्त बन गया। उसका पापकर्म स्वल्प समय में वैसे ही दूर हट जाता है, जैसे सूर्य के आगमन से अन्धेरा। भक्ति सुषुप्त शक्तियों को जागृत कर जीवन-नैया को पार लगा देती है, वह पाप-पंक से उबारकर सुख-मार्ग पर समारूढ़ कर देती है।

इसी शक्ति का सहारा लिये सुदर्शन सेठ मृत्यु के उपसर्ग में भी निर्भीक बना हुआ भगवान महावीर से मिलने को लालायित बना हुआ है। अर्जुनमाली सुदर्शन के एकदम समीप आ गया है और वह सुदर्शन-श्रावक के चारों ओर मुद्रर घूमा रहा है। मुद्रर घूमता जा रहा है, लेकिन सुदर्शन पर उस मुद्रर का प्रहार नहीं हो रहा है। मानो मुद्रर तो सुदर्शन की परिक्रमा लगा रहा है। जब मुद्ररपाणि यक्ष सुदर्शन पर प्रहार न कर सका, भक्ति के समक्ष उसका तेज फीका पड़ गया तब वह अर्जुनमाली सुदर्शन के समक्ष आकर खड़ा हो गया और निर्निमेषक नेत्रों से उसके परम समुज्ज्वल भावों का अवलोकन करने लगा। जब यक्ष की शक्ति, भक्त की शक्ति से परास्त होने लगी, तब मुद्ररपाणि यक्ष ने अर्जुनमाली के शरीर का परित्याग कर दिया और हजार पल भार वाले लौहमय मुद्रर को लेकर जिस दिशा से आया था, उसी दिशा में लौट गया।

अर्जुनमाली का शरीर जैसे ही यक्ष से रहित बना, वैसे ही वह उस प्रकार शब्द के साथ भूमि पर गिर पड़ा। जैसे ही अर्जुनमाली भूमि पर गिरा, तब सुदर्शन श्रमणोपासक ने जाना कि अब मैं उपसर्ग रहित हो गया हूँ। उसने तुरन्त अपनी प्रतिज्ञा का पारणा किया और ध्यान को खोला।

देखा अर्जुनमाली मूर्च्छित होकर गिर पड़ा है। उसे मूर्च्छित देखकर वह वहाँ से गया नहीं कि जल्दी से भगवान की वाणी सुनने जाऊँ, देर हो जायेगी। वह अपने दिल की भावनाओं को थामे उसी अर्जुनमाली के पास बैठा रहा सोचता रहा कि ऐसी अचेत दशा में इसे छोड़कर कहाँ जाऊँगा। यह तो दया का पात्र है, इसकी सेवा करना मेरा धर्म है। यह कर्मों को मार से पहले ही बहुत हताश, निराश और असहाय बन गया है। इसका

सहयोग करना ही भगवान महावीर की उपासना करना है। मानवीय गुणों से ओत-प्रोत सुदर्शन अहोभाव से अर्जुन की मूर्च्छा दूर करने के लिए प्रयत्न कर रहा था।

लगभग अन्तर्मुहूर्त तक अर्जुनमाली बेसुध पड़ा रहा और तदनन्तर आश्वस्त एवं स्वस्थ होकर उठा, देखा सामने सुदर्शन सेठ बैठा हुआ था। उसे सामने बैठा देखकर अर्जुनमाली ने पूछा- देवानुप्रिय! आप कौन हैं?

सुदर्शन- मैं.....श्रमणोपासक सुदर्शन हूँ।

अर्जुनमाली- आप कहाँ जा रहे हो?

सुदर्शन- गुणशील-उद्यान में।

अर्जुनमाली- वहाँ.....वहाँ.....कौन है?

तुम वहाँ क्यों जा रहे हो?

सुदर्शन- वहाँ श्रमण भगवान महावीर स्वामी है। मैं उन्हीं को वन्दन नमस्कार करने के लिए जा रहा हूँ।

अर्जुनमाली- क्या मैं भी आपके साथ चल सकता हूँ?

सुदर्शन- हाँ! तुम्हें जैसा सुख हो वैसा कर सकते हो।

सुदर्शन श्रावक ने अर्जुनमाली के साथ जाने में किसी प्रकार का विरोध नहीं किया। एक हत्यारे के साथ भी जाना सहर्ष स्वीकार कर लिया। वस्तुतः श्रावक गुणों का सागर होता है, वह दूसरों की भूलों को उसी प्रकार पचा लेता है, छिपा देता है, जैसे सरिता पत्थरों को अपने तले में छिपा देती है। सुदर्शन श्रावक की सद्भावना श्रावकों के सकारात्मक विचारों की पोषक है। वह अत्यन्त प्रेम से अपने साथ में अर्जुनमाली को भगवान के पास ले जा रहा था।

खूनी से मुनि : रास्तेभर उसका सद्चिन्तन चलता रहा कि अर्जुन का संक्लेश भगवान के श्रीचरणों में समाप्त हो जाये और प्रभु के सामीप्य से उसकी आत्मा का कल्याण हो जाये। इसी शुभचिन्तन से चलते-2 मार्ग न जाने कब समाप्त हो गया, पता ही नहीं चल पाया और गुणशील उद्यान आ गया। दोनों जहाँ श्रमण भगवान महावीर स्वामी थे, वहाँ आये। भगवान को तीन बार आदक्षिणा-प्रदक्षिणा की और वन्दन-नमस्कार किया तथा मन, वचन और काया से एकीभूत बनकर विनयपूर्वक अंजलिबद्ध होकर भगवान के सम्मुख बैठकर प्रभु की पावन मूरत अपलक दृष्टिगत करते हुए धर्मोपदेश श्रवण करने लगे। प्रभु धर्मोपदेश फरमा रहे थे कि प्रत्येक प्राणी की आत्मा अनन्त शक्ति सम्पन्न है। सबको जीने का अधिकार है, जीवन प्रिय है। इसलिए सभी

प्राणियों की रक्षा करना, उनकी हिंसा न करना ही सर्वश्रेष्ठ धर्म है। अहिंसा धर्म सब धर्मों में प्रधान है, सभी के द्वारा आचरण करने योग्य है। तीर्थंकर भगवन्तों ने इसे ही अत्युत्तम बताया है। इसी को ही लघुकर्मो भव्य जीवों ने अभीष्ट माना है। जो भव्यात्मा अपनी दृष्टि, मति, गति, निष्ठा इसी अहिंसा धर्म में स्थिर कर लेता है, वह शाश्वत सुखों को सम्प्राप्त कर लेता है।^{xliv} भगवान महावीर की इस हृदय स्पर्शी वाणी को श्रवण करके अर्जुनमाली अपने भावों के ज्वार को रोक नहीं पाया। आत्मग्लानि के भीषण दावानल में झुलसता हुआ वह अपने आप को कनकसम विशुद्ध बनाने के लिए समुत्सुक बना और स्वर्णिम अवसर को जानकर प्रभु के समक्ष निवेदन करने लगा-

भंते! आपश्री की अनमोल वाणी को श्रवण करके, हृदय में धारण करके मुझे अतीव प्रसन्नता हो रही है। मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन पर श्रद्धा करता हूँ, रुचि करता हूँ यावत् आपके चरणों में प्रब्रज्या लेना चाहता हूँ।

भगवान महावीर ने कहा- 'देवानुप्रिय! जैसे तुम्हें सुख हो, वैसे करो।'

कितना प्रेरक प्रसंग है कि एक खूनी व्यक्ति जिसके हाथ खून से लथपथ, सने रहते थे। जिसने पाँच मास और तेरह दिन में 978 पुरुषों का, 163 स्त्रियों का अर्थात् कुल मिलाकर 1141 पुरुष-स्त्रियों को जीवन से रहित कर दिया वह आज भगवान के चरणों में समर्पित बनकर संयम का पालन करना चाहता है और भगवान परम दयालु-कृपालु बने उसका उद्धार कर रहे हैं। वास्तव में महापुरुष जितनी करूणा बरसा सकते हैं, उतनी करूणा कोई भी सांसारिक-सम्बन्धी नहीं बरसा सकता। संसार का स्वार्थलिप्त प्रेम अस्थायी है, जबकि महापुरुषों का अन्तरंग प्रीतिमय प्रेम चिरस्थायी और शाश्वत होता है।

अर्जुनमाली के हृदय में खुशियों का अम्बार लग गया। वह भगवान के स्वीकृति सूचक वचनों को श्रवण कर गद्गद हो गया। तब वह ईशान-कोण में गया और वहाँ जाकर स्वयंमेव पंचमुष्टि लुंचन किया और प्रभु के मुखारविन्द से संयम ग्रहण कर महाव्रतधारी अणगार बन गया। एक ही बार के भगवान के सानिध्य से वह खूनी से मुनि बन गया।

अर्जुन-अणगार ने जिस दिन से प्रब्रज्या ग्रहण की, उसी दिन भगवान महावीर के पास उन्होंने प्रतिज्ञा ग्रहण की- "भंते! आज से मैं निरन्तर बेले-बेले की तपस्या से आजीवन आत्मा को भावित करता हुआ विचरण करूँगा।" भगवान ने उनको उस प्रकार का अभिग्रहण करने की अनुमति प्रदान कर दी।

संयमी जीवन की प्रथम और द्वितीय रात्रि तपश्चर्या का आनंद लेते हुए व्यतीत

हुई। तृतीय दिवस बेले के पारणे का प्रसंग उपस्थित हुआ। पारणे के दिन प्रथम प्रहर में स्वाध्याय किया, दूसरे प्रहर में ध्यान किया और तीसरे प्रहर में भगवान महावीर की आज्ञा लेकर राजगृह नगर में भिक्षार्थ परिभ्रमण करने लगे।

समत्व योग : जिस समय अर्जुन-अणगार राजगृह नगर में उच्च, नीच, मध्यम कुलों में भिक्षार्थ परिभ्रमण कर रहे थे, उस समय अनेक नागरिक स्त्री-पुरुष, बाल, वृद्ध इस प्रकार उन्हें कहने लगे कि 'इसने मेरे पिता को मारा है। इसने मेरी माता को मारा है। अरे! रे! हत्यारा..... इसने मेरे भाई को मारा है। ओ ढोंगी।' इसने मेरी बहिन को मारा है। अरे क्रूरकर्मा! मेरा घर उजाड़ने वाले।..... इसने मेरी सुशीला पत्नी को मारा है। अरे! निर्दयी! इसने मेरी प्यारी-प्यारी मासूम-कली सी बिटिया को मारा है। अरे! रे! निर्लज्ज! इसने मेरी पुत्रवधु को मारा है। हे हिंसक! तूने मेरे मामा को मारा है। अरे! हत्यारे! तू... ने मेरे बेटे को मारा है। अरे अधम! तूने मेरे भैया को मारा है। हे अधर्मी! तूने मेरे नाना को मारा है। रे नराधम! तूने पिशाच बनकर मेरे पौत्र को मारा है....। जिधर जाओ उधर शब्दों की बौछारें! कोई गाली दे रहा है! तो कोई कड़वा और कठोर वचन कह रहा है। अरे धर्म के ढोंगी। अब मुनि बन गया!! अरे हत्यारे! तुझे जरा भी दया नहीं आयी। धिक्कार है तेरे मुनि जीवन को! ऊपर से दया का ढोंग करके घूम रहा है। अरे! अधर्मी! निकल मेरे घर से बाहर। तुझे मेरे घर पर प्रवेश नहीं करना है। अरे! पापी! श्वेत वस्त्र पहनने मात्र से तेरे पाप तो नहीं धुल जायेंगे। अरे! नीचकुल मैं जन्मा तू! तुझे घर-2 घूमते शर्म नहीं आती। हमारे ही सम्बन्धियों को मारकर अब हमारे ही घर भीख मांगने आया है। निकल यहाँ से बाहर, नहीं तो तुझे मार डालेंगे।

कोई तो अर्जुनमुनि को देखते ही रोष से भरकर उन्हें थप्पड़ मार रहा है। कोई ईंट लाकर उन पर फेंक रहा है। कोई पत्थर बरसा रहा है, तो कोई लाठी से प्रहार करके अपनी मनोभावनाओं का प्रकटीकरण कर रहे हैं।

इस प्रकार बहुत से स्त्री, पुरुष, बच्चे, बूढ़े आदि सभी के शाब्दिक या पौद्गलिक प्रहारों को परम सहिष्णुता से सहन करते हुए अर्जुन मुनि उन पर किंचित् मात्र भी द्वेष नहीं लाते हुए निर्जरा की आकांक्षा से क्षमा करते हुए, तितिक्षा रखते राजगृह के उच्च, नीच एवं मध्यम कुलों में गोचरी हेतु पधार रहे था।

उनके प्रति जनता का जबरदस्त आक्रोश था। उन्हें कभी भोजन मिलता तो पानी नहीं और पानी मिलता तो भोजन नहीं। इस प्रकार जैसा भी स्वल्प मात्रा में उन्हें भोजन मिलता उसे वे सर्वथा अदीन, अविमन, अकलुष, अमिलन, आकुल-व्याकुलता रहित

अखेद भाव से ग्रहण करते थे, किन्तु थकान का अनुभव नहीं करते थे।

इस प्रकार परीषहजन्य भिक्षा प्राप्त होने पर वे भगवान महावीर को प्राप्त-भिक्षा दिखलाते और उसी भिक्षा को मूर्च्छा-रहित, गृद्धि-रहित, राग-रहित, आसक्ति रहित होकर वैसे ही ग्रहण कर लेते जैसे सर्प^{xxvi} सीधा बिल में प्रवेश करता है।

इस प्रकार भीषण परिषह सहन कर अर्जुनमुनि अपनी कर्म जंजीरों को काट रहे थे।^{xlv}

भगवान राजगृह की ही माटी को पावन कर रहे थे। समय-समय पर अनेक भव्य भगवद चरण में आकर अपने जीवन को सफलीभूत बना रहे थे। उसी राजगृह में एक काश्यप नामक गाथापति भी रहता था। एक दिन वह भी मंकाई की तरह भगवान की धर्मदेशना श्रवण करने गया। उसने भी मंकाई की तरह भौतिक ऋद्धि का परित्याग करके संयम जीवन स्वीकार किया।^{xlvi}

इसी प्रकार राजगृह में रहने वाले वारत्त गाथापति भी मंकाई की तरह धर्मदेशना श्रवण कर गृहत्याग कर श्रमण बन गया और भगवान के चरणों में रहकर मंकाई की तरह ही त्याग-तप करते हुए वे अपनी संयम यात्रा को आगे बढ़ाने लगे। वारत्त गाथापति ने बारह वर्ष तक श्रमणपर्याय का पालन कर विपुलगिरि पर सिद्धत्व प्राप्त किया।^{2 xlvii}

अनेक भव्यात्माओं का उपकार निरन्तर हो रहा था और पावस-प्रवास की घड़ियाँ भी समीप आ गयी थी। भगवान ने इस वर्ष का चातुर्मास भी यहीं करने का विनिश्चय कर लिया था, अतएव केवलीपर्याय के छोटे चातुर्मास के लिए राजगृह में ही विराजे।

राजगृह नगर का राजा श्रेणिक जो भगवान का अनन्य भक्त था, वह अत्यधिक प्रमुदित हुआ कि प्रभु के सान्निध्य में चार माह तक धर्मध्यान करने का, धर्मोपदेश श्रवण का एक अनमोल-अवसर मिलेगा। वहाँ की धर्म प्रिय जनता निरन्तर लाभ लेने लगी। अनेक भव्यात्माएँ भगवान के चरणों में संयम जीवन अंगीकार करने लगी, तो अनेक भव्यात्माएँ श्रावक के बारह व्रत, अनेक भव्यात्माएँ सम्यक्त्व रत्न को प्राप्त करने लगी। धर्मध्यान और त्याग-तपस्या का बहुत जबर्दस्त मेला-सा लगा हुआ था। ऐसा लग रहा था मानो राजगृह नगर त्याग-तपस्या से सजा हुआ है। वहाँ के बच्चे-2 के मन में त्याग-तप के ही भाव जागृत हो रहे थे। स्थान-2 पर धर्म की ही चर्चा होती रहती थी।

1. मंकाई की तरह काश्यप ने भी सोलह वर्ष तक संयम जीवन का पालन किया और अन्त में विपुलगिरि पर सिद्धावस्था को प्राप्त किया।
2. वारत्त गाथापति ने बारह वर्ष तक श्रमणपर्याय का पालन कर विपुलगिरि पर सिद्धत्व प्राप्त किया।

प्रभु कृपा : राजा श्रेणिक स्वयं भगवान के सामीप्य को प्राप्त करके अपने जीवन को उत्कर्षमय बना रहा था। अनेक राजकुमार, राजा श्रेणिक की महारानियाँ भी भगवान की वाणी श्रवण कर अपने जीवन को संवारने में लगी हुई थी। उसी समय राजगृह में नन्द नामक मणिकार सेठ रहता था। वह जौहरी था और जवाहरात का व्यापार किया करता था। उसके यहाँ ऋद्धि-समृद्धि की किसी प्रकार से कोई कमी नहीं थी। वह अत्यन्त तेजस्वी था। अतीव प्रज्ञा-सम्पन्न नन्द मणिकार किसी से पराभूत नहीं होने वाला था।

एक दिन राजा श्रेणिक भगवान के प्रवचन को श्रवण करने गया। नगर की परिषद भी अतीव उत्साह के साथ प्रभु की पावन-वाणी से आप्लावित होने गयी। तब उस समय नन्द मणिकार ने भी यह चर्चा सुनी कि भगवान महावीर पधारे हैं और नगर के बहुत से श्रद्धालु भगवान का प्रवचन श्रवण करने जा रहे हैं। यहाँ तक कि महाराजा श्रेणिक स्वयं भी प्रवचन श्रवण करने जा रहा है, तब उसके मन में भी ऐसी भावना जागृत हुई कि मैं भी भगवान के दर्शन, वन्दन एवं प्रवचन को श्रवण कर अपने जीवन का आमूल-चूल परिवर्तन करूँ। इन्हीं भावों से संलिप्त बना वह स्नानादि करके वस्त्राभूषणों से अलंकृत होकर पैदल ही चलकर भगवान महावीर के पास पहुँचा और विधिवत् भगवान की उपासना करने लगा।

भगवान ने राजा श्रेणिक, नन्द मणिकार एवं विशाल परिषद को धर्मोपदेश देना प्रारम्भ किया।

हे भव्यों! मनुष्य जीवन के बेशकीमती पल समाप्त होते जा रहे हैं, जिन्हें पुनः प्राप्त करना, लौटा लेना शक्य नहीं है। सबकुछ लगाकर भी कोई भी कठिन समय को पुनः लौटा नहीं सकता। मात्र पश्चात्ताप ही करना पड़ता है। समय कभी ठहरता नहीं, रुकता नहीं, इन्तजार नहीं करता। इसलिए अवसर का उपयोग कर लेना, इसे पहचान लेना, जीवन की सबसे महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। समय को पहचानने वाला अपनी जीवन यात्रा को सुखद और आनन्दमय बना देता है। समय ही जीवन है और जीवन ही समय है। समय ही मंजिल है और मंजिल ही समय है। इस क्षण को जानोगे तो आत्मस्थ बन जाओगे। क्षण को पहचान लोगे तो तटस्थ बन जाओगे। क्षण को पहचान लोगे तो समाधिस्थ बन जाओगे। समय को समय पर पकड़ लेना ही विवेक प्रज्ञा का जागरण है। समय पर स्वयं को पहचान लेना ही जागरण की प्रारम्भिक अवस्था है।

समय व्यतीत होने पर जीवन के टूटने पर उसे जोड़ लेना वैसे ही शक्य नहीं जैसे फूल के डाली से टूट जाने पर उसे डाली में पुनः लगाना। जो आत्माएँ विषय-भोगों में

प्रमत्त बनकर हिंसा में निरत रहती है, उन असंयमी आत्माओं की कोई रक्षा करने वाला नहीं होता। धन में प्रमत्त बना मनुष्य पापोपार्जित धन को यहीं छोड़कर राग-द्वेष के जाल में आबद्ध बनकर, वैर-परम्परा से बन्धकर महाभयंकर, सर्वाधिक दुःखकारी नरक स्थान को प्राप्त करता है। वहाँ वह स्वयंकृत अधर्माचरण के कारण छेदन, भेदन, रूदन और भयंकर त्रास को प्राप्त करता है।

सांसारिक प्राणी अपने भाई-बन्धुओं के लिए, परिवार आदि के लिए, प्रमाद में पड़कर धनादि के लिए जो हिंसादि पापकर्म करते हैं, तो उस कर्म के फल भोगने का जब अवसर आता है तो वे बन्धु-बान्धव बन्धुता नहीं दिखलाते हैं। उस समय अकेले ही कर्मों का भीषण फल भोगना पड़ता है।

साथ ही आज तक कोई भी मनुष्य धन से संरक्षण प्राप्त नहीं कर पाया है। धन तो उसे अनन्त दुःख के गर्त में वैसे ही गिरा देता है, जैसे तृणादि से ढका कूप पथिक को गिराने में सहायक बनता है। इसलिए अब सुषुप्ति से जागरण की ओर जाना ही परमार्थ है। मृत्यु के आने से पहले जागरण का तुमुलघोष निनादित कर लेना चाहिए और भारण्ड पक्षी की तरह अप्रमत्त होकर हिंसादि पापों से बचकर अहिंसादि में अपने जीवन को प्रतिष्ठापित करना चाहिए।

जैसे शिक्षित हुआ कवचधारी अश्वयुद्ध में अपनी स्वच्छन्दता पर नियन्त्रण करके ही विजय पाता है, वैसे ही अहिंसादि अप्रमाद से अभ्यस्त आत्मा भी स्वच्छन्दता पर नियन्त्रण करके जीवन संग्राम में विजयी बनकर मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। कोई भी आत्मा तत्काल आत्मविवेक, त्याग को प्राप्त नहीं कर सकती, अतः अभी से कामभोगों का त्याग करके, संयम पथ पर दृढ़ता से खड़े होकर लोक को समत्व दृष्टि से देखकर आत्मरक्षक बनकर अप्रमत्त भाव से विचरण करो तथा संयम योग्य व्यवहारों का अनुसरण कर आत्मा को बन्धन-मुक्त बना डालो। भगवन् की इस भव्यवाणी को श्रवण कर सबने अहोभाव से प्रवचन की सराहना की। किसी ने श्रमण जीवन स्वीकार किया, तो किसी ने श्रावक जीवन और किसी ने बोधिरत्न प्राप्त किया।

नन्द मणिकार भी अत्यन्त भावविभोर होकर भगवान महावीर के समीप पहुँचा और उसने भी भगवान से श्रावक योग्य बारह व्रतों को स्वीकार* किया।^{xlviii}

अब प्रतिदिन जिनवाणी की वह अमोघधारा बरसने लगी और अनेक आत्माएँ स्वकल्याण के पथ पर बढ़ने लगीं। वक्त बीतता हुआ चला गया और यह भव्यातिभय

वर्षावास भी मानो पलक झपकते वैसे ही व्यतीत हो गया जैसे पयोधरों में चमकने वाली बिजली झलक दिखलाकर विलुप्त हो जाती है।

***टिप्पण :** नन्द मणिकार के श्रावक व्रत ग्रहण करने के पश्चात् जब भगवान महावीर का विहार राजगृह से हो गया तब नन्द मणिकार को साधुओं के दर्शन और उपासना करने का सौभाग्य नहीं मिल पाया। इस कारण उसके मन में वीतराग-वचनों को श्रवण करने की आकांक्षा क्रमशः क्षीण प्रायः होने लगी। शनैः शनैः मिथ्यात्व के पर्यायों की वृद्धि होने लगी। तब एक बार वह मिथ्यात्व अवस्था को प्राप्त हो गया।

तत्पश्चात् नन्द मणिकार श्रेष्ठी ने किसी समय ग्रीष्म-ऋतु की भीषण तपतपाती गर्मी में ज्येष्ठ मास में जब धरती अंगारे के समान जल रही थी तब तेला तप स्वीकार किया और पौषधशाला में परिपूर्ण पौषध लेकर विचरने लगा।

उस भीषण-गर्मी में चौ विहार तेले से उसे तृषा-परिषह उत्पन्न हुआ। वह तेज प्यास से आकुल-व्याकुल होकर उद्विग्न हो गया। जैसे जैसे उसका तेले का तप पूर्णता की दिशा में आगे बढ़ रहा था, वैसे वैसे उसकी तृषा ज्वार की तरह बढ़ती ही जा रही थी, तब उसके मन में इस प्रकार के अध्यवसाय उत्पन्न हुए कि वे राजा, ईश्वर, सार्थवाह आदि धन्य हैं, पुण्यवान् हैं, वैभवशाली हैं, जिनकी राजगृह नगर के बाहर बहुत सी बावडियाँ हैं, पुष्करिणियाँ हैं, दीर्घिकाएँ-लम्बी बावडियाँ हैं, गुंजालिकाएँ-कमल-युक्त बावडियाँ हैं, सरोवर हैं, सरोवर की पंक्तियाँ हैं, जिनमें बहुत से लोग स्नान करते हैं, पानी पीते हैं, पानी भरकर ले जाते हैं।

मैं भी कल प्रभात होने पर श्रेणिक राजा की आज्ञा लेकर राजगृह से बाहर उत्तरपूर्व दिशा में, वैभारगिरि के समीप में, वास्तु-शास्त्र के अनुरूप नंदा पुष्करिणी खुदवाऊँ, यह मेरे लिए उचित होगा। ऐसा विचार पौषध में किया।

दूसरे दिन प्रातःकाल उसने पौषध पारकर स्नानादि करके मित्र-ज्ञातिजनों को साथ लेकर, राजा श्रेणिक के लिए बहुमूल्य उपहारों को लिया और राजा श्रेणिक के पास पहुँचा।

उपहार समक्ष रखते हुए राजा श्रेणिक को उसने इस प्रकार निवेदन किया- स्वामिन्! आपकी अनुमति होने पर मैं राजगृह नगर के बाहर पुष्करिणी खुदवाना चाहता हूँ।

राजा श्रेणिक ने कहा- जैसा सुख हो, वैसा करो।

राजा श्रेणिक द्वारा यों कहे जाने पर नन्द मणिकार अत्यन्त हर्षित-सन्तुष्टि हुआ।

वह राजगृह नगर के बीचोबीच होकर निकला और वास्तुशास्त्र के ज्ञाताओं के पास गया और उन्हीं के द्वारा चयनित भूमि-भाग पर नन्दा पुष्करिणी को खुदवाने का कार्य प्रारम्भ कर दिया।

खुदते-खुदते चतुष्कोण और समान किनारों वाली पूर्ण पुष्करिणी बन गयी। उसमें शीतल जल लबालब भरा गया। उसमें बहुत सारे लाल कमल, श्वेत-कमल, नील-कमल, सौ पंखुडियों वाले कमल, हजार पंखुडियों वाले कमल खिलने लगे। उन कमलों पर भ्रमर गुंजार करने लगे। अनेक पक्षियों के समूह से वह पुष्करिणी अभिगुंजित होने लगी। उसकी नयनाभिराम छटा दर्शकों के नयनों को समाकृष्ट करने वाली बन गयी।

तत्पश्चात् उस नन्दमणिकार श्रेष्ठी ने नन्दा पुष्करिणी की चारों दिशाओं में चार वनखण्ड लगवाये। धनी आभा वाले वृक्षों की सुन्दर पंक्तियों से सुशोभित वे वन खण्ड अपनी हरीतिमा से अतीव शोभायमान होने लगे।

तत्पश्चात् नन्द मणिकार श्रेष्ठी ने पूर्व-दिशा के वनखण्ड में एक विशाल चित्रसभा बनवाई। सैकड़ों स्तम्भों से युक्त वह चित्रशाला मनमोहक प्रतीत हो रही थी। उस चित्रसभा में पंचवर्णी काष्ठ की आकर्षक पुतलियाँ स्थान-स्थान पर बनी हुई थीं। वस्त्रों के पर्दे इस प्रकार आकर्षक लग रहे थे कि उस पर से नेत्र निमेष-मात्र भी नहीं हटते थे। चित्रकारों द्वारा बनाये गये विविध प्रकार के चित्र अपनी सजीवता से दर्शकों को मंत्रमुग्ध बना रहे थे। रंग-बिरंगे अनेक सजीव आकृतियों से अलंकृत मिट्टी के पुतले दर्शकों के आकर्षण का केन्द्र बने हुए थे। स्थान-स्थान पर डोरा गूँथकर एवं फूलों की गेंद की तरह लपेट-लपेट कर बनायी गयी कलाकृतियाँ अपने वैभव को प्रदर्शित कर रही थीं। कुछ कलाकृतियाँ स्वर्ण आभा लिए ऐसी प्रतीत होती थी, मानों वे कनक-निर्मित हों। अनेक कलाकृतियाँ जोड़-2 कर बनायी गयी थीं। ये सब दिखने में इतनी मनोहर थी कि दर्शकगण उनकी प्रशंसा किये बिना नहीं रहते।

उस चित्रसभा में बैठने योग्य तथा शयन योग्य वस्त्रादि बिछे रहते थे। दर्शनार्थियों के मनोरंजन के लिए वहाँ बहुत से नाटककार अपना नाटक दिखाते, तो कभी नृत्य करने वाले विविध प्रकार के नृत्यों से जनसमुदाय का मन-हरण करते थे। कहीं पर राजा की स्तुति करने वाले स्तुति पाठ सुनाते तो कहीं पर मल्ल लोग कुशती लड़कर अपना कौशल प्रदर्शित करते थे। कहीं पर मुष्टियुद्ध करने वाले अपने विजय का डंका बजाते, तो कहीं पर विदुषक हंसी-मसखरी भरी कहानियाँ सुनाया करते थे। कहीं पर तैराक लोग अपनी कला का प्रदर्शन करते, तो रास गाने वाले रासलीला का सजीव अभिनय करके दर्शकों

का मन भावविभोर बना देते थे। कहीं पर ज्योतिषी शुभाशुभ फल कथन करते, तो कहीं पर बांस पर चढ़ने वाले ऊँचे चढ़कर अपनी कला की उत्कृष्टता दिखलाते थे। कहीं पर चित्रपट दिखाकर आजीविका करने वाले विविध चित्रों का प्रदर्शन करते थे, तो कहीं पर तूण वाद्य एवं तूंबे की वीणा की स्वर-लहरियाँ कर्ण-कुहरों¹ को झंकृत करती थी। इस प्रकार इन सभी कला-प्रदर्शकों को नन्द मणिकार आजीविका, भोजन एवं वेतन दिया करता था।

राजगृह से बाहर सैर करने के लिए जाने वाले बहुत-से लोग इस चित्रसभा में आकर बिछे हुए आसनों पर बैठकर अथवा शयनों पर लेटकर सारे करतब² देखा करते थे और वहाँ की मनोहर छटा को देखकर आनन्द का अनुभव करते थे।

नन्द मणिकार श्रेष्ठी ने उस पुष्करिणी के दक्षिणी वनखण्ड में एक भोजनशाला का निर्माण करवाया था। वह भोजनशाला सैंकड़ों स्तम्भों पर निर्मित होने से आकर्षण का केन्द्र थी। उस भोजनशाला में भोजन पकाने के लिए बहुत से लोग जीविका, भोजन एवं वेतन देकर रखे गये थे। वे विपुल-मात्रा में अशन, पान, खादिम और स्वादिम पकाया करते थे और बहुत से श्रमणों, ब्राह्मणों, अतिथियों और द्रविड-भिखारियों को भोजन दिया करते थे।

तत्पश्चात् नन्द मणिकार सेठ ने उस पुष्करिणी के पश्चिम दिशा में एक औषधालय निर्मित करवाई। उस चिकित्सालय में बहुत से वैद्य, वैद्यपुत्र, वैद्यक-शास्त्रों के न पढ़ने पर भी अनुभव के आधार पर चिकित्सा करने वाले ज्ञायक, ज्ञायक-पुत्र, तर्क से चिकित्सा के ज्ञाता-कुशल, कुशलपुत्र आजीविका, भोजन और वेतन पर नियुक्त किये गये थे। वे बहुत से व्याधितों³ की, ग्लानों⁴ की, रोगियों⁵ की और दुर्बलों की चिकित्सा किया करते थे।

उस चिकित्साशाला में दूसरे भी बहुत से लोग आजीविका, भोजन और वेतन देकर रखे हुए थे, जो उन रोगियों की दवा, भोजन, पानी आदि से शुश्रूषा⁶ किया करते थे।

तत्पश्चात् नन्द मणिकार ने उत्तरी वनखण्ड में एक बड़ी अलंकार सभा⁷ बनवायी। वह सैंकड़ों-स्तम्भों पर निर्मित अतीव मनोहर थी। उसमें शरीर का श्रृंगार करने वाले बहुत से पुरुष आजीविका, भोजन और वेतन देकर रखे हुए थे, जो कि बहुत से श्रमणों,

1. कर्ण-कुहरों-कानों 2. करतब-खेल तमाशे 3. व्याधितो-शोक आदि से उत्पन्न चित्त पीड़ा से पीड़ित 4. ग्लान-अशक्तों की 5. रोगी-ज्वरादि से ग्रस्त 6. शुश्रूषा-सेवा 7. अलंकार सभा-श्रृंगार सभा

अनार्थों, ग्लानों, रोगियों और दुर्बलों के शरीर की शोभा बढ़ाने का कार्य किया करते थे।

उस नन्दा-पुष्करिणी में बहुत से सनाथ, अनार्थ, पथिक, पांथिक, करोटिका¹, घसियारे, पत्तों का भार उठाने वाले, लकड़हारे आदि आते थे। उनमें से कोई स्नान करते, कोई पानी पीते, कोई पानी भरकर ले जाते थे। कोई पसीने, जल², मल³, परिभत, निद्रा, क्षुधा⁴ और पिपासा⁵ का निवारण करके सुखपूर्वक रहते थे।

नन्दा-पुष्करिणी में राजगृह के भी बहुत से लोग जल में रमण करते थे, विविध प्रकार से स्नान करते थे। कदली गृहों, लतागृहों, पुष्प शय्या और अनेक पक्षियों के समूह के मनोहर शब्दों से युक्त नन्दा पुष्करिणी और चारों वनखण्डों में क्रीड़ा करते-2 विचरते थे।

इस प्रकार नन्दा पुष्करिणी में स्नान करते हुए, पानी पीते हुए, पानी भरकर ले जाते हुए बहुत से लोग आपस में इस प्रकार कहते थे- हे देवानुप्रिय! नन्द मणिकार सेठ धन्य है-उसका जन्म और जीवन सफल है, जिसने यह नन्दा-पुष्करिणी और सब प्रकार की सुविधाओं से युक्त शालाओं का निर्माण करवाया है। इससे कितने लोग आनन्द की अनुभूति करते रहते हैं।

राजगृह नगर के गली-गली, चौराहे-चौराहे पर हर व्यक्ति के मुख पर यही चर्चा कि नन्द मणिकार का जन्म सफल है। नन्द मणिकार श्रेष्ठी जब इस चर्चा को श्रवण करता तो उसकी प्रसन्नता गगन तल का स्पर्श करने लगती। जैसे मेघ-धारा से कदम्ब का पुष्प विहँसने लगता है, वैसे ही इन प्रशंसात्मक शब्दों से उसकी कली-कली खिल जाती और नन्द मणिकार को अतीव साता की अनुभूति होती थी।

भगवान महावीर ने इसी प्रशंसा को कर्म-बन्धन का कारण माना है। यह प्रशंसा आत्मा को पुद्गलानन्दी बनाकर मोक्ष मार्ग से दूर करती है। आचारांग सूत्र में कहा है कि विषयाभिलाषी पुरुष मोक्ष रूपी अमृत से दूर रहता है। इसलिए समभाव में रमण करना ही वीतरागता की ओर गमन करता है।

इस प्रकार सुखमय वातावरण में नन्द- मणिकार आनन्द का अनुभव कर रहा था। लेकिन सांसारिक सुख क्षणिक हैं, वे दुःख में परिवर्तित हो जाते हैं। कुछ समय पश्चात् नन्द मणिकार श्रेष्ठी के साथ भी ऐसा ही घटित हुआ। उसके शरीर में सोलह रोग उत्पन्न हुए :- 1. श्वास 2. कास-खाँसी 3. ज्वर 4. दाह-जलन 5. कुक्षि शूल-कूँख का शूल

1. करोटिका-कावड़ उठाने वाले 2. जल-प्रवाही मैल 3. मल-जमा हुआ मैल 4. क्षुधा-भूख 5. पिपासा-प्यास

6. भगंदर 7. अर्श-बवासीर 8. अजीर्ण 9. नेत्रशूल 10. मस्तक शूल 11. भोजन की अरुचि 12. नेत्र-वेदना 13. कर्ण-वेदना 14. कंडू-खाज 15. जलोदर 16. कोढ़।

इस प्रकार रोग पैदा होने पर उसने कौटम्बिक-पुरुषों को बुलाया और कहा कि पूरे राजगृह नगर में घोषणा करो कि नन्द मणिकार श्रेष्ठी को सोलह रोग हुए हैं, जो कोई एक भी रोग को शांत कर देगा उसे नन्द मणिकार श्रेष्ठी विपुल सम्पत्ति देगा।

उन कौटम्बिक-पुरुषों ने नन्द मणिकार की आज्ञानुसार दो-तीन बार राजगृह नगर में ऐसी घोषणा की। उस घोषणा को श्रवण करके अनेक वैद्य, वैद्यपुत्र शस्त्रों की पेटी, शलाका, शस्त्रों को तीखा करने का पाषाण, औषधादि लेकर नन्द मणिकार के यहाँ आये। उन्होंने नन्द मणिकार को देखा और विविध प्रकार के उपचारों से उसका रोग शांत करने का प्रयास किया, लेकिन वे किसी एक भी रोग का उपचार न कर सके। तब वे वैद्य, वैद्यपुत्रादि अत्यन्त खिन्न होकर अपने-2 घरों में लौट गये।

तब नन्द मणिकार रोग से आक्रान्त¹ होकर, नन्दा² पुष्करिणी में आसक्त बना। उसने उस समय तिर्यच योनि के आयुष्य का बंध किया। आर्तध्यान के वशीभूत होकर मृत्यु के समय काल करके नन्दा पुष्करिणी में एक मेंढकी की कुक्षि में मेंढक के रूप में उत्पन्न हुआ।

तत्पश्चात् समय आने पर वह मेंढक गर्भ से बाहर निकला और शनैः शनैः बाल्यावस्था को पार कर वह यौवनावस्था को प्राप्त हुआ। यौवन में वह मेंढक नन्दा-पुष्करिणी में घूम-घूम कर आनन्द का अनुभव करने लगा।

उस समय नन्दा पुष्करिणी में बहुत से लोग स्नान करते हुए, पानी पीते हुए और पानी भरकर ले जाते हुए इस प्रकार वार्तालाप करते थे- देवानुप्रिय! नन्द मणिकार श्रेष्ठी धन्य है, उसका जन्म और जीवन सफल है, जिसने नन्दा पुष्करिणी, वखण्ड और शालाएँ बनवाकर खूब पुण्य कमाया है, उससे बहुत से लोगों को आनन्द मिलता है।

इस प्रकार बार-बार लोगों से इस बात को श्रवण कर, मन में समझकर उस मेंढक को इस प्रकार विचार उत्पन्न हुआ कि-ये शब्द मुझे परिचित से लग रहे हैं। ऐसे शब्द मैंने पहले भी कहीं सुने हैं। इस प्रकार विचार करने से, शुभ परिणाम के कारण मतिज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से जाति-स्मरण ज्ञान उत्पन्न हो गया और वह अपना पूर्वभव जानने लगा।

1. आक्रान्त-युक्त 2. नन्दा : उसने पुष्करिणी का नाम अपने नाम पर रखा क्योंकि उस नन्द मणिकार श्रेष्ठी के मन में यशलिप्सा जागृत बन गयी थी।

तत्पश्चात् उस मेंढक को इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ कि मैं पूर्वभ्रम में इसी राजगृह नगर में नन्द नामक मणिकार सेठ था। भगवान महावीर के सान्निध्य से मैंने श्रावक के बारह व्रतों को स्वीकार किया था, लेकिन कुछ समय पश्चात् मुझे सन्त-महापुरुषों का सान्निध्य नहीं मिला, तब मैं मिथ्यात्व अवस्था को प्राप्त हो गया।

तब एक बार भयंकर ग्रीष्म के समय ज्येष्ठ मास में मैंने चौविहार तेले की तपश्चर्या की। उस समय प्यास से व्याकुल होने से पौषध में ही मेरे मन में इस प्रकार के विचार आये कि मैं नन्दा पुष्करिणी खुदवाऊँ। तब पौषध पालकर, श्रेणिक राजा से आज्ञा लेकर मैंने नन्दा पुष्करिणी, वनखण्ड और शालाएँ बनवाई। अपनी प्रशंसा में आसक्त और नन्दा पुष्करिणी में ही अनुरक्त बनकर मैंने तिर्यच आयु का बंध किया। इसी कारण मैं मेंढक के रूप में उत्पन्न हुआ हूँ। मैं अधन्य हूँ। अपुण्य हूँ, मैंने पुण्य नहीं किया, अतः मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन से नष्ट हुआ, भ्रष्ट हुआ और एकदम भ्रष्ट हो गया। अब मेरे लिए यही श्रेयस्कर है कि पहले अंगीकार किये हुए पाँच अणुव्रतों को और सात-शिक्षाव्रतों को मैं स्वयं ही पुनः अंगीकार करके रहूँ।

नन्द-मणिकार के जीव उस मेंढक ने इस प्रकार विचार किया और विचार करके पहले अंगीकार किये हुए बारह-व्रतों को पुनः अंगीकार किया और अभिग्रह धारण किया कि आज से मुझे जीवनपर्यन्त बेले-बेले की तपस्या से आत्मा को भावित करते हुए विचरणा कल्पता है।

तब वह मेंढक बेले-बेले पारणा करता है और बेले के पारणे में भी नन्दा पुष्करिणी के पर्यन्त भागों में, प्रासुक हुए स्नान के जल से और मनुष्यों के उन्मर्दन, आदि द्वारा उतारे हुए मैल से अपनी आजीविका चलाता है।

उस काल उस समय में श्रमण भगवान महावीर गुणशील चैत्य में पधारे। वन्दन करने के लिए परिषद निकली। उस समय नन्दा-पुष्करिणी में बहुत से लोग नहाते हुए, पानी ले जाते हुए आपस में इस प्रकार बातें करने लगे कि श्रमण भगवान महावीर यहीं गुणशील उद्यान में पधारे हैं। अतएव हे देवानुप्रियों! चलो हम सभी भगवान महावीर की पर्युपासना करते हैं। यह हमारे लिए इहभव और परभव में हित के लिए, सुख के लिए। क्षमा और निःश्रेयस के लिए होगा, परभव में यही साथ जायेगा।

तब बहुत जनों से यह वृत्तान्त सुनकर और हृदय में धारण कर उस मेंढक को ऐसा विचार, चिन्तन, अभिलाषा और मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ कि निश्चय ही श्रमण- भगवान महावीर यहाँ पधारे हैं, तो मैं जाऊँ और भगवान की वन्दना करूँ।

ऐसा विचार करके वह धीरे-धीरे नन्दा पुष्करिणी से बाहर निकला, बाहर निकलकर राजमार्ग पर आया। आकर मेंढक योग्य उत्कृष्ट गति से चलता हुए भगवान महावीर के पास जाने के लिए कृत-संकल्पित हुआ।

उसी समय राजा श्रेणिक सर्व-अलंकार से विभूषित, श्रेष्ठ हाथी के स्कन्ध पर आरूढ़, कोरंट की माला धारण किये, श्वेत-चामरों से शोभित हाथी, रथ और बड़े-बड़े सुभटों के समूह रूप चतुरंगिणी सेना से घिरा हुआ भगवान महावीर को वन्दन पर्युपासना करने हेतु चला आ रहा था। तब वह मेंढक श्रेणिक राजा के एक नौजवान अश्व के बांये पैर से कुचला गया। उसकी आंते बाहर निकल आयी।

वह मेंढक शक्तिहीन, बलहीन, वीर्यहीन, पुरुषाकार-पराक्रम से रहित हो गया। उसने सोचा अब यह जीवन धारण करने योग्य नहीं है, ऐसा जानकर वह एक तरफ चला गया। वहाँ दोनों हाथ जोड़कर, मस्तक पर आवर्तन करके, मस्तक पर अंजलि करके इस प्रकार बोला- समस्त अरिहंत भगवन्तों को यावत् तीर्थंकर भगवन्तों को मेरा नमस्कार हो। मेरे धर्माचार्य मोक्ष उन्मुख श्रमण भगवान महावीर को मेरा नमस्कार हो, मैंने पहले श्रमण भगवान महावीर के समीप स्थूल प्राणातिपात यावत् स्थूल परिग्रह का त्याग किया था, अब भी उन्हीं भगवान के निकट समस्त प्राणातिपात यावत् समस्त परिग्रह का प्रत्याख्यान करता हूँ। जीवनपर्यन्त के लिए सर्व अशन, पान, खादिम और स्वादिम का त्याग करता हूँ। यह जो मेरा इष्ट, कान्त शरीर है जिसके विषय में चाहा था कि रोग आदि स्पर्श न करें, इसे भी अन्तिम श्वासोच्छ्वास तक त्यागता हूँ। इस प्रकार उस मेंढक ने पूर्ण प्रत्याख्यान किया।

यद्यपि यहाँ मेंढक ने सर्वविरति रूप प्रत्याख्यान किया तथापि उसको सर्व विरति नहीं मान सकते क्योंकि टीकाकार अभयदेव सूरि ने कहा है कि तिर्यचों में देशविरति हो सकती है, सर्व-विरति नहीं। इस विषय में टीकाकार ने दो गाथाएँ उद्धृत की हैं-

तिरियाणं चारित्तं, निवारियं अहं य तो पुणो तेसिं।

सुव्वइ बहुयाणं पि हु, महव्वयारोहणं संभवो तेसिं॥1॥

न महव्वयसव्भावेवि, चरित्त परिणाम संभवो तेसिं।

न बहु गुणाणंपि जओ, केवलसंभूइपरिणामो॥2॥

अर्थात्-तिर्यचों में सर्वविरति चारित्र होने का आगम में निषेध किया गया है फिर भी बहुत से तिर्यचों ने महाव्रत ग्रहण किये ऐसा सुना जाता है। किन्तु महाव्रतों के सद्भाव

में भी तिर्यचों के चारित्र-परिणाम संभव नहीं। जैसे बहुत गुणों से सम्पन्न जीवों को केवलज्ञान उत्पन्न नहीं हो सकता। अतएव तिर्यचों का चारित्र मात्र व्यवहार चारित्र है, निश्चय चारित्र नहीं।

तत्पश्चात् वह मेंढक मृत्यु के समय काल करके सौधर्म कल्प में, दर्दुरावतंसक नामक विमान में, उपपात सभा में, दर्दुरदेव के रूप में उत्पन्न हुआ। वहाँ उस दर्दुर-देव की स्थिति चार पल्योपम की है। तत्पश्चात् वह दर्दुर-देव आयु, भव, स्थिति के क्षय से वहाँ से च्यवकर महाविदेह क्षेत्र से सिद्ध होगा, बुद्ध होगा यावत् समस्त दुःखों का अन्त करेगा।

टिप्पण :

अनुत्तर ज्ञान-चर्या का छट्ठा वर्ष

1. धान : धान्य चौबीस प्रकार बतलाया है- 1. यव-जौ, 2. गेहूँ 3. शाली (डांगर) 4. ब्रीहि-चावल 5. षष्टिका-60 रात में पकने वाली शाली विशेष 6. कोद्रव कोदरी 7. युगन्धरी 8. कांगनी 9. कंगूविशेष 10. तिल 11. मूंग 12. उड़द 13. अलसी 14. काले चने 15. त्रिपुटग-धान्य विशेष 16. वाल 17. शिलिन्द-मोठ 18. चौला 19. इक्षु-बंटी 20. मसूर 21. तूर 22. कुलत्थ 23. कुसुंभरी-धनिया 24. मटर।

1. भगवती-सूत्र, 2. प्रवचन सारोद्धार

2. बनारस : वाराणसी का अपभ्रंश नाम बनारस है। पहले यहाँ वरणा तथा असि-नदी के संगम पर बसी हुई वाराणसी नाम की प्रसिद्ध नगरी थी, जो काशी राष्ट्र की राजधानी थी। इसके बाहर कोष्ठक नामक चैत्य था, जहाँ पर भगवान महावीर ठहरा करते थे। यहाँ के तात्कालीन राजा का नाम जितशत्रु लिखा मिलता है। चुलनी पिता और सुरादेव नामक यहाँ के धनाढ्य गृहस्थ महावीर के दस श्रमणोपासकों में से थे। यहाँ के राजा लक्ष को काममहावन चैत्य में भगवान महावीर ने अपना श्रमण-शिष्य बनाया था। भगवान महावीर के मुख्य विहार-क्षेत्रों में बनारस भी एक था। यहीं के नौ गणराज भगवान महावीर के निर्वाण के समय में पावा में उपस्थित थे और उस दिन सबके उपवास था।

श्रमण भगवान महावीर

पुरा. प. श्री कल्याण-विजयजी गणि पृ. 384

3. भगवान पार्श्वनाथ जन-जन को सुख का राजमार्ग बतलाना चाहते थे। इसलिए उन्होंने यज्ञ-हिंसा का घोर विरोध किया। इस विषय में आधुनिक इतिहास कारों ने परिकल्पना की है कि यज्ञ करने वाले लोगों ने उनका घोर विरोध किया तो वे अनार्य-क्षेत्र में उपदेश देने गये। भगवान पार्श्वनाथ के समय यह अनार्य जाति दक्षिण बिहार और उड़ीसा या छोटा नागपुर के आसपास और उसके पूर्व दक्षिण में निवास करती थी। भगवान पार्श्वनाथ ने अनार्य देशों में धर्म प्रचार किया। उस समय नाग जन-जाति के आर्य आसाम की पहाड़ियों में बस गये। भगवान पार्श्वनाथ के उपदेश से ये अत्यन्त प्रभावित हुए। इस प्रकार आर्य-अनार्य दोनों जातियों पर भगवान पार्श्व का प्रभाव होने से भगवान को पुरिसादरणीय (पुरुषादानीय) कहा जाने लगा।

आधार ग्रन्थ : 1. भगवान पार्श्वनाथ एक अनुशीलन पृष्ठ 7, 2. हिस्टोरिकल बिगिनिंग ऑफ जैनिज्म पृ.78

4. श्रमण-श्रमणी के सत्ताईस गुण : 6 व्रत, 6 काया की रक्षा, पाँच इन्द्रिय और लोभ का निग्रह, क्षमा, भाव-विशुद्धि, प्रतिले खनादि कार्यों में विशुद्धि, संयम-योगों में तत्परता, अप्रशस्त मन-वचन और काया का निरोध, शीतादि परीषहों की पीड़ा को सहन करना तथा मारणांतिक उपसर्गों को सहना-ये सत्ताईस गुण हैं।

विवेचन :

- 6 व्रत :** अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह और रात्रिभोजन विरति।
 - 6 काय :** पृथ्वीकायादि छः काय के जीवों की सर्व-प्रकार से रक्षा करना।
 - 5 इन्द्रिय :** पाँचों-इन्द्रियों के शुभाशुभ विषय में राग-द्वेष न करते हुए संयम-पूर्वक प्रवृत्त होना।
 - 1 लोभ-निग्रह :** वीतराग भाव की साधना करना
 - 1 क्षमा :** क्रोध पर नियन्त्रण रखना।
 - 1 भाव-विशुद्धि :** आत्मा का विशुद्ध परिणाम रखना।
 - 1 क्रिया-विशुद्धि :** उपयोग-पूर्वक पडिलेहण.....प्रतिक्रमणादि क्रिया करना।
 - 1 संयम-विशुद्धि :** संयम योग में प्रवृत्ति करते हुए समिति-गुप्ति का पालन करना।
 - 3 योग-निरोध :** संयम पालन में सहायक मन, वचन और काया के व्यापार में प्रवृत्त होना तथा अप्रशस्त योगों का निरोध करना।
 - 1 वेदना-सहन :** सर्दी, गर्मी, वायु आदि जन्य वेदना को समभावपूर्वक सहन करना।
 - 1 उपसर्ग-सहन :** मरणांक उपसर्गों को भी समभावपूर्वक सहन करना तथा उपसर्ग करने वालों को कल्याण-मित्र मानते हुए उनके प्रति समभाव रखना।
- ये श्रमण-श्रमणी के सत्ताईस गुण बतलाये हैं।

अन्य प्रकार से श्रमण-श्रमणी के सत्ताईस गुण :

5 महाव्रत : अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अरिग्रह।

5 इन्द्रियों का संयम : 5 इन्द्रियों पर संयम रखना।

4 कषाय : क्रोधादि 4 कषाय का निग्रह करना।

3 सत्य : 1. भाव-सत्य :-आत्मशुद्धि 2. करण-सत्य-क्रिया-शुद्धि योग सत्य : मन, वचन, काया की एकरूपता।

1 क्षमा : उदय प्राप्त क्रोध व मान का निरोध करना।

1 विरागता : आसक्ति का त्याग तथा माया व लोभ का अनुदय होना।

3 मन, वचन, काया की अशुभ प्रवृत्ति का त्याग।

3 ज्ञान, दर्शन व चारित्र की आराधना।

1 समभावपूर्वक वेदना सहन करना।

1 मारणान्तिक उपसर्ग सहन करना।

ग्रंथ :- प्रवचन सारोद्धार/गाथा 1354-55

5. प्रवचन सारोद्धार गाथा 1322/1350 में व्रतधारियों के 2, 8, 32, 735, 16808 प्रकार बतलाये हैं।

6. शारीरिक लक्षणों के बारे में ऐसा कहा जाता रहा है कि तीर्थंकर भगवान के शरीर में 1008 लक्षण होते हैं। यदि भगवान के गुणों का चिन्तन करें तो सत्त्व, धैर्यादि आन्तरिक गुणों की दृष्टि से उनमें अनंत गुण होते हैं।

ग्रंथ : प्रवचन सारोद्धार गाथा 1409

7. माँ को सभी परम्पराएँ अत्यन्त सम्मान की दृष्टि से देखती हैं। डॉ. रूडोल्फ होर्नल (The Usasagadasao Lecgture III Page 94) ने माँ को देवों के गुरु बृहस्पति के समान पूजनीय माना है। भारतीय परम्पराएँ तो एक स्वर से माता के विशिष्ट गौरव को स्वीकार करती हैं। कहा भी है 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी। महर्षि मनु ने मनुस्मृति में यहाँ तक कहा है :-

“उपाध्यायान्दशाचार्य आचार्याणां शतं पिता।

सहस्रं तु पितृन्माता गौरवेणातिरिच्यते।।”

मनुस्मृति 2/145

अर्थात् एक उपाध्याय से दस आचार्य, सौ आचार्यों से एक पिता, सहस्र-पिताओं से एक माता गौरव में बढ़कर है।

तैत्तिरीयोपनिषद् में ऐसा उल्लेख मिलता है कि अध्ययन समाप्ति के पश्चात् आचार्य जब शिष्य को भावी जीवन के लिए उपदेश देता है तो उसे विशेष रूप से कहता है- मातृ देवो भव-माता को देव-तुल्य समझना।

तैत्तिरीयोपनिषद् वल्ली1/अनुवाक् 11.2

8. समाधि-मरण की महत्ता को बतलाते हुए संधार-पड़ण्यं में कहा है कि जीवन के अन्तिम समय में इसे स्वीकार करना चाहिए। जैसे दरिद्र-व्यक्तियों के लिए सम्पत्ति की प्राप्ति, मृत्युदण्ड प्राप्त व्यक्तियों के लिए मृत्युदण्ड सम्बन्धी आदेश का निरस्तीकरण और योद्धाओं के लिए विजय-पताका फहराना जीवन का लक्ष्य होता है, उसी प्रकार सुविहितों के जीवन का लक्ष्य समाधिमरण होता है।

मणियों में वैदूर्यमणि, सुगन्धित-पदार्थों में गोशीर्ष चन्दन, रत्नों में वज्र, श्रेष्ठ पुरुषों में अरिहंत, महिलाओं में तीर्थकरों की माताएँ, वंशों में तीर्थकर वंश, कुलों में श्रावक-कुल, गतियों में सिद्धगति, सुखों में मुक्ति सुख, धर्मों में अहिंसा धर्म, मानवीय वचनों में साधु वचन, श्रुतियों में जिन-वचन तथा शुद्धियों में सम्यक्-दर्शन की तरह समस्त साधनाओं में समाधिमरण श्रेष्ठ है। यह समाधिमरण देवों के लिए दुर्लभ है। तीनों लोकों के देवेन्द्र भी इसका एकाग्रचित्त से ध्यान करते हैं। श्वेत-कमल, कलश, स्वस्तिक आदि सभी मंगलों में इसे प्रथम मंगल कहा है।

ग्रंथ : संधारगपड़ण्यं गाथा 2-15

9. भव्य : भवति-परमपदयोग्यता मासादयतीति भव्यः जो मोक्ष गमन की योग्यता को प्राप्त करता है, वह भव्य है।

ग्रंथ : नवीन कर्मग्रंथ टीका, जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर, सन् 1934

भव्य के दो भेद हैं :-

1. **दूर भव्य** : जो मोक्ष जाते हैं किन्तु लम्बे समय के बाद, वे दूर भव्य।
2. **आसन्न भव्य** : जो उसी भव में या दो-तीन भव के बाद निश्चित मोक्ष जाते हैं।
वृद्धमतानुसार-मोक्ष पाने की तीव्र अभिलाषा वाला मैं भव्य हूँ या अभव्य? ऐसा चिन्तन करता है, वह जीव भव्य होता है।

प्रवचन सारोद्धार गाथा-246

10. पुत्र को समर्पण : अपने वंश की प्रतिष्ठा के लिए, कुल-पद्धति के साथ, अपने पुत्र को धन तथा कुटुम्ब का समर्पण कर देना अन्वय-दत्ति है। इसे सकल-दत्ति के नाम से भी कहा जाता है।

महापुराण 38/40-41

आलभिका :- इस नगरी के बाहर शंखनाद उद्यान था। आलभिका के तात्कालीन राजा का नाम जितशत्रु था। महावीर के दस श्रमणोपासकों में से पाँचवाँ उपासक गाथापति चुल्लशतक इसी नगरी का रहने वाला था। भगवान के ऋषिभद्र प्रमुख दूसरे भी अनेक प्रसिद्ध उपासक यहाँ रहते थे, जिनकी भगवान महावीर ने प्रशंसा की थी। यहीं पर भगवान महावीर ने पोगल परिव्राजक को निर्ग्रन्थ प्रवचन का उपदेश देकर अपना श्रमण-शिष्य बनाया था।

कतिपय विद्वान् आधुनिक 'एखा' को जो इटावा से बीस मील उत्तर पूर्व की तरफ अवस्थित एक प्राचीन नगर है, उसे 'आलभिया' कहते हैं; परन्तु जैनसूत्रों के लेखानुसार हमें यह

मानने को बाध्य होना पड़ता है कि आलभिया आजकल का सखा नहीं किन्तु काशी राष्ट्रगत एक प्रसिद्ध नगरी थी। यह राजगृह से बनारस जाते हुए मार्ग पर अवस्थित थी। महावीर जब बनारस से राजगृह और राजगृह से बनारस को विहार करते तब बीच में आलभिया में अवश्य ठहरा करते थे।

आधार ग्रंथ : श्रमण भगवान महावीर/वही/पृ. 361

12. शंखवन उद्यान : यह उद्यान आलभिका के समीप था। भगवान महावीर आलभिया जाते समय इसी उद्यान में ठहरा करते थे।

वही/पृ.396

13. आत्मा: अतति : सततं गच्छति शुद्धि संक्लेशात्मक परिणामान्तराणीत्यात्मा।

ग्रंथ : उत्तराध्ययन/शान्त्याचार्य टीका/वही/

14. (1) विभंगज्ञान : विरूद्धो वितयो वा अन्यथा वस्तुभंगो-वस्तु विकल्पो यस्मिंस्तद्विभंगम्।

जिसमें भंग/विकल्प/ज्ञान-विरूद्ध या वितथ होता है, वह विभंगज्ञान है।

आधार ग्रंथ : स्थानांग टीका/सेठ माणेकलाल, चुनीलाल, अहमदाबाद/सन् 1937/ पृ.368

(2) विभंग ज्ञान : शास्त्र में तीन प्रकार के अज्ञान बतलाये हैं- 1. मति अज्ञान 2. श्रुत-अज्ञान, 3. विभंग-ज्ञान इन तीन प्रकार के अज्ञानों में विभंगज्ञान मात्र पंचेन्द्रिय जीवों को होता है, जबकि मति-अज्ञान श्रुत-अज्ञान एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक के जीवों को हाता है।

आधार ग्रंथ : भगवती सूत्र 8/2

15. भिक्षाचर्या : वृत्तिपरिसंख्यान का दूसरा नाम भिक्षाचर्या है। स्नानाङ्ग भगवती सूत्र, उत्तराध्ययन और औपपातिक में इस वृत्तिपरिसंख्यान तप को भिक्षाचर्या नाम से कहा गया है, जबकि समवायांग में वृत्तिसंक्षेप और तत्वार्थ सूत्र आदि में वृत्तिपरिसंख्यान के नाम से इस तप की विवेचना की गई है।

जैन साधुओं/मुनियों द्वारा संतोषवृत्ति के साथ साम्यरस से मुक्त मन से आहार की गवेषणा करना, 'भिक्षाचर्या' कहा जाता है। वह भिक्षा के मिलने पर या न मिलने पर भी अपने मन में संतुष्ट रहता है। रसपूर्ण और विरस भिक्षा में भी उसे संतोष रहता है क्योंकि वह केवल जीवन निर्वाह के लिए गृहस्थ के घर से सहजभाव से शुद्ध आहार ग्रहण करता है। उसकी इसी क्रिया को 'भिक्षाचर्या' कहा जाता है। अभिग्रहपूर्वक भिक्षाचर्या करने से 'कृति' का संक्षेप होता है, इसलिए इसका 'वृत्तिसंक्षेप' नाम मिलता है। 'परिसंख्यान' का अर्थ होता है-भोजन, भाजन, घर-बार और दाता। यहाँ प्रयुक्त 'बार' शब्द का मतलब होता है- 'मुहल्ला'। इन वृत्तियों के साथ बंधा (जुड़ा/संबंधित) हुआ, जो भिक्षा का ग्रहण करना है उसे वृत्तिपरिसंख्यान कहेंगे। अर्थात् एक प्रतिज्ञा/अभिगृह/संकल्प के साथ, वृत्तियों का परिमाण या सीमा का निर्धारण भी 'वृत्तिपरिसंख्यान' कहा

जायेगा। जब भिक्षा का इच्छुक साधु/मुनि एक घर आदि विषयक संकल्प ग्रहण करता है तब वह 'वृत्तिपरिसंख्यान' नामक तप करता है।

उत्तराध्ययन, दशवैकालिक, आचारांग आदि आगम ग्रन्थों में 'गोचर' शब्द का प्रयोग पर्याप्त मात्रा में हुआ है, जिसका आशय है 'गाय की तरह चरना', भिक्षा के लिए भ्रमण करना। इसे स्पष्ट करते हुए श्वेताम्बर परम्परा के आचार्य कहते हैं- जैसे गाय, यह घास बढ़िया किस्म की, है या घटिया किस्म की। इस प्रकार की भेदभावना मन में न बनाकर अपनी उदरपूर्ति के लिए वह एक किनारे से चरती हुई दूसरे किनारे तक चली जाती है। वह घास को जड़ से उखाड़े बगैर ही, ऊपर-2 से चरती है, इसी तरह साधु भी किसी गृहस्थ को कष्ट दिये बगैर ग्राम या नगर की किसी भी गली में एक छोर से दूसरे छोर तक भिक्षा के लिए भ्रमण करता है। इसी सिद्धान्त के अनुसार श्वेताम्बर परम्परा के सन्तों में 'भिक्षाचर्या' के लिए 'गोचरी' शब्द का प्रयोग अधिक प्रचलित है। 'गोचरी' को 'मधुकरी' नाम से भी खूब जाना/समझा जाता है। मधुकरी का भी काफी कुछ वैसा ही भाव है जैसे कि गोचरी का। जिस तरह भंवरा किसी भी फूल को क्षति पहुँचाये बिना उससे पराग ग्रहण कर लेता है वैसे ही श्रमण सन्तों की 'गोचरी' को मधुकरी जान लेना चाहिए।

राजवार्तिक में भी भिक्षाचर्या के पाँच नाम बतलाये गये हैं- गोचरी, अक्षभ्रक्षण, उदराग्नि प्रशामन, भ्रमराहार और स्वभ्र (गर्त) पूरण। इन भेदों में श्वेताम्बर मान्यता/परम्परा में 'गोचरी' और 'मधुकरी' नामों को 'गोचरी' और 'भ्रमराहार' नाम से बताया गया है। यह नाम साम्य होने के बावजूद 'गोचरी' वृत्ति की व्याख्या में व्यक्त किये गये भावों में काफी भिन्नता भी दिखलाई पड़ती है। गोचरी को स्पष्ट करते हुए राजवार्तिकार का कहना है- किसी गाय के सामने सुन्दर आभूषणों से सजी-धजी कोई युवती घास लेकर जाये अथवा कोई बलिष्ठ सजा संवरा पुरुष- वह घास लाने वाले की ओर न देखकर सिर्फ घास को ही देखती है। इसलिए उसे न तो यह भाव पैदा होता है किसी सुन्दर/सुन्दरी ने उसे घास दी है या किसी कुरूप/कुरुपा ने। वह तो अपने सामने लाई गई घास को ही देखती है और उसे खाती है। इसी तरह भिक्षु भी परोसने/देने वाले के मृदु ललित रूप, वेष और उस स्थान की सजावट आदि को देखने की उत्सुकता नहीं रखता। आहार सूखा है या गीला? किस धातु के बर्तन में रखकर उसकी योजना की गई है? इत्यादि बातों की अपेक्षा न करता हुआ दाता की ओर आँख तक नहीं उठाता। बल्कि उसे जो आहार दिया जा रहा है उसी की ओर अपना ध्यान रखता है। अतः इस तरह की भिक्षाचर्या को गौ की तरह 'चर' (भक्षण) करने के कारण 'गोचर' या 'गवेषणा' कहते हैं।

इस विवेचना को देखने से यह ज्ञात होता है कि श्वेताम्बर परम्परा ने 'गोचरी' शब्द की 'गोचर' में आये 'चर' शब्द का अर्थ 'भ्रमण' मानकर व्याख्या की है, तो दिगम्बर परम्परा ने 'चर' शब्द का अर्थ 'भक्षण' मानकर इसकी व्याख्या की है। दोनों ही परम्पराओं में जो भाव व्यक्त किये गये, वे एक श्रमण की सच्ची भावनाओं के द्योतक हैं। अतः दोनों का भाव मिला-जुलाकर गोचरी का स्वरूप निर्धारित होता है।

श्वेताम्बर परम्परा द्वारा प्रयुक्त 'मधुकरी' शब्द में जो भाव माने गये हैं, राजवार्तिक के 'भ्रमराहार' शब्द में भी वे ही भाव बतलाये गये हैं। इसके साथ ही अन्य जो तीन भावनाएँ/स्थितियाँ राजवर्तिकार ने बतलाई हैं, उन्हें भी एक श्रमण की भिक्षाचर्या में उपयोगी माना/पाया जाता है। इन तीनों का आशय वहाँ इस प्रकार बतलाया गया है-

जिस तरह कोई एक व्यापारी रत्नों से लदी हुई अपनी गाड़ी में जिस किसी भी प्रकार के तेल का ऑगन लगाकर उसे अपने गंतव्य नगर तक ले जाता है, वैसे ही मुनि भी अपने गुणों के समूह रूप शरीर को निर्दोष भिक्षा से 'समाधि' नगर पहुँचाता है। इस प्रकार की भिक्षाचर्या को वहाँ अक्षभ्रमण कहा गया है।

जब किसी के भण्डार गृह में आग लग जाती है तब उस गृह का मालिक जैसा भी जल उस समय मिलता है, उस जल की शुचिता/अशुचिता का ध्यान न करता हुआ उसके द्वारा अपने घर की आग को बुझाता है, इसी तरह भिक्षु भी उदराग्नि को शान्त करता है, तो उसकी इस भिक्षाचर्या को उदराग्नि प्रशमन कहा जाएगा।

इसी तरह 'स्वभ्रूपण' भिक्षाचर्या है। जैसे किसी खुदे हुए गड्ढे को भरने के लिए यह नहीं देखा जाता कि जिस मिट्टी को उसमें भरा जा रहा है वह उर्वरा है या अनुर्वरा। उसे भरने का लक्ष्य ही मुख्य होता है, न कि मिट्टी की योग्यता का। वैसे ही अणगार मुनि, श्रमण भी अपने उदर की पूर्ति के लिए भिक्षा में मिले भोजन के सुस्वाद या अस्वाद पर ध्यान दिये बगैर उसे ग्रहण कर लेता है। इसी को 'स्वभ्रूपण' कहा गया है।

राजवार्तिककार ने वृत्तिपरिसंख्यान की व्याख्या करते हुए बतलाया है- एक, सात आदि घरों की संख्या का, एक-दो आदि गलियों की संख्या का निर्धारण और आधे गांव (ग्राम) आदि के विषय में भी विचार निर्धारण आदि का संकल्प लेकर भिक्षा के लिए जाना, वृत्तिसंख्यान नाम से कहा जाएगा।

आहार के लिए जाने से पूर्व अपने मन में श्रमण संकल्प करता है कि आज एक घर या दो घर आदि तक जाऊँगा, नीरस आहार मिलेगा तो ग्रहण करूँगा। वैसे ही आहार मिल जाने पर उसे पशु (गौ) की तरह ग्रहण करूँगा। इस तरह की वृत्ति को आचार्य कार्तिकेय ने 'वृत्ति' परिसंख्यान कहकर पूर्व वर्णित मान्यता का समर्थन किया है। तत्त्वार्थसार और मूलाचार में भी कुछ ऐसे ही भाव व्यक्त करते हुए बतलाया गया है कि मैं आज एक ही वस्तु का भोजन करूँगा, दस घरों से अधिक घरों में नहीं फिरूँगा, अमुक तरह का पेय द्रव्य मात्र ग्रहण करूँगा, सिर्फ मूँग ही लूँगा, इत्यादि प्रकार का संकल्प अथवा गृहों का परिमाण, भोजन देने वाले व्यक्तियों का परिमाण, कांसे आदि पात्रों का परिमाण, मौँठ, सत्तू आदि भोजन का परिमाण, आदि को लक्ष्य करके किये गये संकल्प के साथ भोजन ग्रहण करने को 'वृत्तिपरिसंख्यान' कहा है।

इस तरह इस तप के परिसंख्यान से जुड़े सिद्धान्तों को जान तो लेता है, पर उनकी व्यवहारिक वृत्ति में वह असंदिग्ध नहीं रह पाता। फलतः उसका यह ज्ञान आचरण की उत्कृष्टता

को अंगीकार नहीं कर पाता। फलतः उसका यह ज्ञान आचरण की उत्कृष्टता को अंगीकार नहीं कर पाता। क्योंकि जैन-सिद्धान्तों को समझना आसान होते हुए भी आचरण करना मुश्किल सिद्ध होता रहा है। अतः श्रमण की भिक्षावृत्ति से जुड़े दाता, पात्र, चरण, भिक्षान्न और गृह आदि विषयों का लक्ष्य कर किये जाने वाले संकल्पों/अभिग्रहों का संक्षिप्त स्वरूप यहाँ स्पष्ट कर देना उचित होगा।

एक श्रमण जब भिक्षा के लिए निकलता है, तब वह भिक्षा से सम्बन्धित दाता आदि विषयों के बारे में कुछ संकल्प, जिन्हें श्रमण संस्कृति की भाषा में अभिग्रह कहना ज्यादा उचित है, कर लेता है। इनकी संख्या के परिसीमन (कम करने) के मूल में एक विशेष आशय छिपा रहता है। वस्तुतः वह आशय ही जीवन जीने की इस सामान्य किन्तु अनिवार्य जरूरत को एक तप के रूप में पहुँचा देती है। यहाँ पर जो सामान्य दिग्दर्शन किया जा रहा है उसका आशय यही है कि हमारा श्रद्धालु वर्ग सामान्य आचार में निहित उच्च भावों, आदर्शों को जान/पहिचान सके।

भिक्षा एक ऐसी क्रिया है, जिसे कोई भी श्रमण अकेले स्वयं के द्वारा पूरा नहीं कर सकता। इसमें एक 'दाता' का होना बहुत ही आवश्यक होता है। यह दाता यानी भिक्षा देने वाला पुरुष हो सकता है और स्त्री भी, युवा हो सकता है और वृद्ध भी, बाह्यण, क्षत्रिय आदि किसी भी जाति का हो सकता है। इस तरह दाता का भेद/प्रकार अनगिनत तरह का हो सकता है। भिक्षाचर्या एक श्रमण का सामान्य भाव है किन्तु जब वह वृत्तिपरिसंख्यान तप करने का संकल्प ले लेगा तब वह भिक्षाचर्या के लिए जाने से पूर्व अपने मन में एक संकल्प/प्रतिज्ञा करता है कि-“आज मुझे भिक्षा देने वाला, दाता अमुक-2 तरह का होगा, तभी उससे भिक्षा ग्रहण करूँगा अन्यथा नहीं”।

इस संकल्प को वह अपनी भिक्षाचर्या में पूरा होते देखता है, तभी भिक्षा ग्रहण करता है अन्यथा बगैर भिक्षा लिए ही वापिस लौट आता है। उसका यह क्रम तब तक चलता रहता है, जब तक कि उसका संकल्प पूरा नहीं हो पाता। यानी, एक दिन लिया गया संकल्प जितनी बार भिक्षाचर्या के लिए जाने तक पूरा नहीं हो पाता उतनी ही बार, वह बिना भिक्षा लिए वापिस लौट आता है। भले ही इसकी पूर्ति में कई दिन बीत जायें।

आधार ग्रन्थ : उत्तराध्ययन 30/35, औपपातिक, समवायांग 6, तत्त्वार्थ सूत्र-9/19, धवला 13/5/4/26, दशवैकालिक 5/1/13, हरिभद्रीय टीका 163, आचारांग 2/1, दशवैकालिक 1/5, राजवार्तिक 9/6/16, राजवार्तिक 9/19/4, कार्तिकेयानुप्रेक्षा 445, तत्त्वार्थ सार 7/12, मूलाचार 355।

16. ईर्या समिति : किसी भी प्राणी को कष्ट न हो इस प्रकार सावधानी पूर्वक चलना, ईर्यासमिति की परिशुद्धि चार प्रकार से होती हैं। वे इस प्रकार हैं:-

1. आलम्बन : मुनि ज्ञान, दर्शन एवं चारित्र इन तीनों में से किसी का उद्देश्य होने पर गमन करे।

2. काल : मुनि दिन में ही गमन। रात्रि में ईर्याशुद्धि का अभाव होने से गमन न करे, लेकिन यदि बड़ी नीति, लघु नीति आदि परिष्ठापन के लिए गमन करना पड़े तो परिमार्जन करके चले।

3. **मार्ग** : उन्मार्ग का परित्याग करके सन्मार्ग पर गमन करे क्योंकि उन्मार्ग पर जाने से आत्म-विराधना तथा संयम-विराधना संभव है।

4. **यतना** : यतना के चार प्रकार हैं- द्रव्य से नेत्रों से देखकर गमन करे। क्षेत्र से युग मात्र (3½ हाथ प्रमाण) प्रमाण भूमि देखकर चले। काल से दिन में देखकर, रात्रि में पूजकर चले। भाव से उपयोग सहित चले।

आधार-ग्रंथ : उत्तराध्ययन सूत्र 24 अध्ययन।

17. **आलोचना** : आत्मा में लगे हुए पाप रूपी कांटे को निकालने के लिए आलोचना करना आवश्यक है। इस सम्बन्ध में यह ज्ञातव्य है कि यदि आलोचना देने योग्य गीतार्थ गुरु यदि क्षेत्र व काल की अपेक्षा से समीप न मिले तो क्षेत्र की अपेक्षा सात सौ योजन और काल की अपेक्षा बारह वर्ष तक खोज करनी चाहिए।

आधार ग्रंथ : प्रवचन सारोद्धार : गाथा 862

18. **प्रव्रजित** : 1. पव्वइए इति प्रगतो गिहातो संसारातो वा।
जो घर या संसार से निकल जाता है, वह प्रव्रजित है।
2. वधादीयो पावादो व्रजितो पव्वयितो।
जो प्राणातिपात आदि पापों से व्रजित दूर है,
वह प्रव्रजित है।

आधार ग्रंथ : दशवैकालिक, अगस्त्यसिंह चूर्णि प्राकृत ग्रंथ परिषद, वाराणसी/सन् 1973/पृ. 36/234

19. **चरित्र** : 1. चर्यते-आसेव्यते यत् तेन वा चर्यते-गम्यते मोक्ष इति चरित्रम्।
जिसका चरण-आसेवन किया जाये, वह चरित्र है।
जिससे मोक्ष प्राप्त किया जाता है, वह चरित्र है।

आधार ग्रंथ : स्थानांग टीका/पत्रांक 49

2. **चरन्ति** : गच्छन्त्यनिन्दितमनेनेति चरित्रम्।
जिसके द्वारा चरण/अर्निद्य आचरण किया जाता है, वह चरित्र है।

आधार ग्रंथ : आवश्यक/मलयगिरी टीका/आगमोदय समिति, बम्बई/सन् 1928, पत्रांक 117

20. **योनि** : 1. जणीति जोणि : जो पैदा करती है, वह योनि कहलाती है।

आधार ग्रंथ : उत्तराध्ययन चूर्णि/देवचन्द्र लालभाई जैन पुस्तकोद्धार, सन् 1933/पृ. 165

2. **यौति** : मिश्री भवति असुमान् यासु ता योनसः।
जिसमें जीव सम्मिश्रित होता है, वे योनियाँ हैं।

3. युवन्ति : तैजसकर्मणशरीरवन्तः सन्त औदारिकादि शरीरण मिश्री भवन्त्यास्यामिति योनिः

जिसमें विविध शरीरों का मिश्रण होता है, वह योनि है।

नन्दी/टीका/पृ. 3

4. आसु जन्तवो जुषन्ते सेवन्ते ता इति वा योनयः।

जीव जिनमें बार-बार आते हैं, रहते हैं, वे योनियाँ/उत्पत्ति स्थल हैं।

उत्तराध्ययन/शान्त्याचार्य टीका/पत्रांक 183

21. ज्ञातपुत्र : क्षत्रियकुण्ड में 'ज्ञातृ' क्षत्रिय रहते थे। इस कारण ज्ञातृवंश में पैदा होने से भगवान ज्ञातपुत्र कहलाये।

22. मुद्गर-पाणि : मुद्गर-अस्त्र विशेष (गदा) है, पाणि-हाथ में जिसके, ऐसा यक्ष मुद्गरपाणि है।

23. हजार पल : 10 मासे का एक कर्ष, 2 कर्ष का एक पल होता है, ऐसा शार्ङ्गधर संहिता में लिखा है। प्राकृत शब्द महार्णव में लिखा है कि पल यानि चार तोला। इस प्रकार यदि चार तौले का एक पल माना जाये तो यक्ष के हाथ में 1 मन 10 सेर का विशाल मुद्गर था।

आधुनिक व्यवहार में पाँच रुपयों के भार बराबर एक पल होता है। सोलह पलों का एक सेर, इस तरह हजार पल के 62½ सेर होते हैं।

24. सागार प्रतिमा : कोई व्यक्ति प्रतिज्ञा करते समय उसमें जब किसी वस्तु विशेष या समय की छूट रख लेता है कि अमुक काम हो जायेगा तो मैं अनशन खोल लूंगा और यदि नहीं हुआ तो मैं अपना अनशन नहीं खोलूंगा, उसे लगातार चलाऊंगा। इस प्रकार का संकल्प करके यदि कोई नियम लिया जाता है तो उस नियम को सागार-प्रतिमा कहा जाता है।

25. अन्तर्मुहूर्त : यहाँ मूल पाठ में शब्द आया है- मुहूर्तंतरेणं-मुहूर्तान्तरेण स्तोत्रकालेन। यहाँ मुहूर्त शब्द का अर्थ 48 मिनट। दो घड़ियों को मुहूर्त कहते हैं तथा दो घड़ी से न्यूनकाल को अन्तर्मुहूर्त कहते हैं।

26. सर्प सीधा बिल में : अर्थात् जैसे सर्प बिल के दोनों भागों का स्पर्श किये बिना केवल बिल के मध्य-भाग से ही बिल में प्रवेश करता है, उसी प्रकार अर्जुन अणगर मुख के दोनों भागों का स्पर्श किये बिना केवल मुख में आहार रखकर गले में उतार लेते हैं, उसका आस्वाद नहीं लेते।



अनुतर ज्ञानचर्या का सातवाँ वर्ष : परम समीप

समता के सिद्धत्व :

छठा वर्षावास परिसमाप्त¹ होने पर भी अनेक भव्यों का उपकार होते देखकर दयासागर भगवान महावीर राजगृह में ही विराजे रहे।

अर्जुन अणगार को संयम-ग्रहण किये चार माह से अधिक समय व्यतीत हो गया था और वे उसी समभाव से गालियों की बौँछारों को मधुर संगीत मानकर सहन करते रहें। ताड़नाओं और तर्जनाओं में भी समभाव से तल्लीन बने वे अपने भीषण कर्मवृन्द² को वैसे ही तप से जला रहे थे, जैसे अग्नि स्वर्ण-मैल³ को जलाकर शुद्ध बना देती है। इस तरह अर्जुनमुनि ने उदार, श्रेष्ठ एवं पवित्र भाव से गृहीत महालाभकारी विपुल तप से अपनी आत्मा को भावित करते हुए परिपूर्ण छह मास तक श्रमण धर्म का पालन किया। अर्धमास की संलेखणा-संधारा करके वे सिद्ध, बुद्ध और मुक्त अवस्था को सम्प्राप्त हुए।

यहाँ यह प्रश्न उपस्थित होता है कि 1141 मनुष्यों की हत्या करने वाले अर्जुनमुनि सिद्ध गति को कैसे प्राप्त हो गए, जबकि शास्त्रों में इस प्रकार उल्लेख मिलता है कि पंचेन्द्रिय वध⁴ नरक-गति का कारण है।

1. परिसमाप्त- परिपूर्ण
2. कर्मवृन्द- कर्म-समूह
3. स्वर्णमैल- सोने का मेल
4. वध- हिंसा/प्राण-नाश

इसका समाधान यह है कि अर्जुनमुनि ने अर्जुन मालाकार की अवस्था में जो मनुष्यों की हत्या की वह परतंत्रता-वश की, क्योंकि उस समय मुद्गरपाणि यक्ष उसके शरीर में प्रविष्ट था, अतः वध वस्तुतः यक्ष द्वारा किया गया। अर्जुन उस समय यक्षाविष्ट होने से पराधीन था। वह तो यंत्र की भाँति प्रवृत्ति कर रहा था। मनुष्य-वध योग्य तीव्र कषाय उसमें संभव नहीं थे, इसलिए उसने नरकायु का बंध नहीं किया और काषायिक¹ भावों के कारण जो कर्मबन्धन हुआ, वह उसने तपश्चर्या एवं समभाव के द्वारा क्षय कर दिया। प्रवचन-सार में कहा भी है :-

अण्णाणी जं कम्मं खवेइ, भवसयसहस्सकोडीहिं।

तं नाणी तिहिं गुत्तो खवेइ ऊसासमेत्तेणं ॥

अर्थात् - अज्ञानी जीव जिन कर्मों को लाखों-करोड़ों वर्षों में खपाता है, उन्हें मन, वचन और काया रूप तीनों गुणियों से गुप्त ज्ञानी एक श्वास जितने स्वल्प² काल में क्षय कर डालता है।

इस प्रकार धर्म की नौका में बैठने से अर्जुनमुनि ने भगवान के चरणों में अपना चरम³ कल्याण कर लिया।⁴

जिज्ञासा के आईने में :

राजगृह में अनेक भव्यात्माएँ भगवान की शरण में आकर अपने जीवन को धर्म से अनुप्राणित⁴ कर रही थीं। भविकों⁵ का आवागमन निरन्तर वृद्धिगत होता ही जा रहा था। समय-समय पर अनेक भव्यात्माएँ आकर अपनी जिज्ञासाओं का समाधान प्रभु चरणों में कर रही थीं।

एक दिन मगध-सम्राट के मन में जिज्ञासा पैदा हुई कि भगवान के शासन में अन्तिम केवली कौन होगा ? इसी जिज्ञासा का समाधान प्राप्त करने हेतु उनकी उत्सुकता बढ़ती गयी और वे भगवान के चरणों में पहुँच गये। भगवान को वन्दन नमस्कार किया और पृच्छा की- भगवन्! आपके तीर्थ में अन्तिम-केवली होने का सौभाग्य किस महान् आत्मा का होगा ? केवल ज्ञान का उच्छेद⁶ कब होगा ?

इसी समय महान् कान्ति वाला विद्युन्माली⁷ नामक देव जो पंचम देवलोक के इन्द्र का सामानिक⁷ देव था, वह अपनी चार देवियों को लेकर प्रभु को वन्दन करने के लिए आया था।

यद्यपि पंचम देवलोक में देवियाँ नहीं होतीं। तथापि पंचम देवलोक में परिचारणार्थ जो देवियाँ जाती हैं इनके साथ विद्युन्माली देव का आगमन हुआ होगा ऐसी सम्भावना बन सकती है। इसलिए तीर्थकर-चारित्र में जो यह उल्लेख किया है “वह देव अपनी चार देवियों के साथ उपस्थित हुआ।” परन्तु यह बात सिद्धान्त के विपरीत है।⁸

1. काषायिक- क्रोधादि कषाय से युक्त 2. स्वल्प- थोड़ा 3. चरम- अन्तिम/श्रेष्ठ

4. अनुप्राणित- युक्त 5. भविको- भव्यों 6. उच्छेद- उच्छिन्न/समाप्ति

7. सामानिक- इन्द्र के समान ऋद्धि वाले लेकिन इन्द्र पदवी से रहित।

क्योंकि देवियाँ तो दूसरे देवलोक के आगे नहीं होती और ब्रह्मदेवलोक तो पाँचवाँ है। यह संगत प्रतीत नहीं होता। तत्त्वं तु केवलिगम्यम्।

वह विद्युन्माली देव भगवान को वन्दन-नमस्कार करता है और भगवान उसी की ओर संकेत करते हुए सम्राट श्रेणिक का समाधान करते हैं - श्रेणिक! यह विद्युन्माली देव अन्तिम केवली होगा।

तब श्रेणिक ने पूछा - भंते! क्या देवों को भी केवलज्ञान होता है ?

भगवान- श्रेणिक! आज से सातवें दिन यह देव च्यव¹ करके तुम्हारे नगर के निवासी धनाढ्य श्रेष्ठी ऋषभदत्त के यहाँ पर पुत्ररूप में उत्पन्न होगा। तदनन्तर यह मेरे शिष्य सुधर्मा का शिष्य बनेगा। यही अन्तिम केवली बनेगा। इसके पश्चात् इस अवसर्पिणी काल में यहाँ से कोई भी कैवल्यज्ञान को प्राप्त नहीं करेगा। इस प्रकार भगवान ने श्रेणिक का समाधान किया। केवली के लिए ऐसा सिद्धान्त है कि तृतीय और चतुर्थ आरक में जन्म लेने वाला ही कैवल्यज्ञान को प्राप्त कर सकता है, पंचम आरे में जन्म लेने वाला नहीं, साथ ही अवसर्पिणी के अन्तिम तीर्थकर के शासन में ऐसा नियम भी है कि उनके दो पाट ही केवली के होते हैं, उससे अधिक नहीं। अतएव भारत क्षेत्र में जम्बू अन्तिम केवली बनेंगे, ऐसा समाधान भगवान ने दिया।²

तब श्रेणिक ने अपनी अन्य जिज्ञासा प्रभु के समक्ष प्रस्तुत करते हुए निवेदन किया- भंते! इस विद्युन्माली देव के च्यवन³ का समय नजदीक है, तथापि इसका तेज मंद नहीं हुआ, इसका क्या कारण है ?

प्रभु ने फरमाया- अभी इसका तेज मन्द पड़ गया है। पूर्व के पुण्य से पहले इसका तेज इससे भी उत्कृष्ट था।

भगवान से समाधान श्रवण कर श्रेणिक अत्यंत हर्षित एवं संतुष्ट हुआ।

वह चिन्तन की चाँदनी में निमग्न होकर सोच रहा था, कितना भव्य माहौल है कि परमपिता परमात्मा के चरणों में बैठकर उन्हीं के मुखारविन्द से समाधान प्राप्त कर हम धन्य-धन्य बन गये हैं।

राजगृह की अनेक भव्यात्माएँ भगवान के सान्निध्य का लाभ उठा रही हैं। यहाँ के धार्मिक वातावरण की सुरभि से आप्लावित होकर शक्रेन्द्र⁴ ने समवसरण की रचना देवों द्वारा करवा दी थी।

भगवान, श्रेणिक का समाधान करने के पश्चात् समवसरण में पधारे और अर्धमागधी भाषा में धर्मदेशना आरम्भ की।

जत्थे-जत्थे लोग आकर मधुरिम वाणी से स्वयं को आप्लावित⁵ करने लगे। इसी समय स्वयं श्रेणिक महाराजा, महामंत्री अभयकुमार आदि आभिजात्य³ वर्ग के वर्चस्वी पुरुष धर्मोपदेश श्रवण करने लगे। वहाँ पर कालशौकरिक कसाई भी उपस्थित था। कितने ही ग्रन्थकारों के मन्तव्यानुसार वह समवसरण के बाहर बैठा था।⁶

1. च्यव- च्युत 2. भगवान! मालकोश राग में फरमाते थे। (संदर्भ पीछे देखें)

3. आप्लावित- सराबोर 4. आभिजात्य- उच्च/कुलीन

रहस्य भावी का :

भगवान की वह भवजल शोषिणी¹ वाणी शीतल समीर की तरह मनो को आन्दोलित कर रही थी। भाव-विभोर जनसमूह एकाग्रचित्त से इतने तल्लीन होकर, इतने निमग्न होकर देशना श्रवण कर रहे थे, मानो वे अपने अस्तित्व को ही विस्मृत कर गये हों। सभा में इतना सचाटा छाया था कि एक सूई भी गिरे तो भी आवाज हो जाये। ऐसे शांत-प्रशांत माहौल में एक वृद्ध जिसका शरीर एकदम जर्जरित था, जो वृद्धावस्था से कम्पायमान हो रहा था, एक लाठी के सहारे चलता हुआ लड़खड़ाते पैरों से आगे चला आ रहा था। मैले-कुचले बदन² पर चिथड़े लिपटे हुए थे, जो उसकी दीन-हीन दशा को प्रदर्शित कर रहे थे। एक पैर कहीं तो दूसरा पैर कहीं रखता हुआ चला आ रहा था और भगवान के पास आकर जमीन पर बैठ गया। उसके पश्चात् अपने अंग से बहने वाले मवाद को लेकर भगवान के चरणों में चन्दन जैसे लगाता है। यह देखकर सम्राट श्रेणिक को भयंकर क्रोध आया, लेकिन वह मौन रहा। इतने में भगवान को छींक आई तब वह वृद्ध बोला - मर जाओ।

सारी सभा यह दृश्य दृष्टिगत³ कर स्तम्भित⁴ हो गयी। 'भगवान के समवसरण में यह सब क्या है ? यह कौन व्यक्ति है ? जो मर्यादाओं और नियमों को दरकिनार रखकर प्रभु को इस प्रकार बोल रहा है ? यह सब बहुत गलत हो रहा है।' लोगों की नजरें उस वृद्ध पर जा टिकी। इतने में राजा श्रेणिक की ओर उसने मुँह किया, अभिवादन किया और बोला- सम्राट! आप चिरकाल तक जीवित रहो।

यह श्रवण करते ही राजा की एवं वहाँ विद्यमान परिषद की भाँहें तन गयी कि भगवान को मरने का एवं राजा को जीने के लिए क्यों बोल रहा है ? पर... पर... क्या करते... यह तो भगवान का समवसरण था, जिसमें राजा को भी अपने बल प्रयोग करने का कोई अधिकार नहीं था क्योंकि यहाँ प्रत्येक प्राणी को समान अधिकार प्राप्त था। सब मूकदर्शक बनकर उसे देखे जा रहे थे। तभी अभयकुमार को छींक आई। तब उस वृद्ध ने सम्राट के पास बैठे महामंत्री अभयकुमार की ओर मुँह करके कहा- तुम चाहे जीओ, चाहे मरो ?

जनसमुदाय की जिज्ञासा बढ़ती ही जा रही थी कि आखिर ये है कौन ? जो कभी कुछ, कभी कुछ बोले ही जा रहे हैं। इतने में कालसौकरिक कसाई को छींक आई तब उसने कालसौकरिक कसाई को सम्बोधित करके कहा- कालसौकरिक! तुम न मरो, न जीओ।⁵

अब तो लोगों के धैर्य का बाँध टूट गया। सारी सभा स्तब्ध बनी समाधान चाह रही थी कि यह सब क्या है ? सबकी दृष्टि वृद्ध पर जा टिकी, लेकिन अगले ही क्षण देखा तो वृद्ध अदृश्य हो गया। आकाश में उड़ गया। अब सम्राट श्रेणिक उठे और उन्होंने भगवान से पृच्छा की- भंते! यह कौन था ? इसने आपका अविनय क्यों किया ? इसके पीछे क्या रहस्य है ?

भगवान ने अपने श्रीमुख से फरमाया- नरेश!⁵ यह कोई मनुष्य नहीं था, यह देव था।

1. भवजल शोषिणी- संसार समुद्र को सुखाने वाली
2. बदन- शरीर
3. दृष्टिगत- देखकर
4. तम्भित- स्तब्ध/आश्चर्य चकित
5. नरेश- राजा

उसने मेरा अविनय नहीं किया, उसका सम्पूर्ण कार्य रहस्य भरा था।

श्रेणिक- भगवन्! वह कोढ़ी क्यों बना ?

भगवान- मैं उसका वर्णन बतला रहा हूँ, जिससे तुम्हारी सारी जिज्ञासाओं का समाधान हो जाएगा। घटना उस समय की है जब कौशाम्बी¹ नगरी² में शतानीक राजा राज्य करता था। उसके राज्य में सेदुक नामक एक गरीब ब्राह्मण रहता था। गरीबी के साथ-साथ मूर्खता भी उसकी सहभागिनी थी, जिससे उसका जीवन दुःख के कांटों से घिरा हुआ था। अपने उन दुःखद क्षणों को वह जैसे-तैसे निर्वाह कर रहा था। इसी बीच उसकी पत्नी आपन्नसत्त्वा³ बनी। उसने अपने पति से कहा- स्वामिन्! अभी तक अपन- दो जीवों का कैसे भी निर्वाह हो जाता था, लेकिन अब तीसरे जीव का भी आगमन होने वाला है, उसका निर्वाह करना अशक्य है। अतः आप राजा के पास जाकर याचना करो। राजा तो परदुःख भंजक है। वह आपकी याचना सुनकर आप पर प्रसन्न होकर कुछ देगा। जिससे अपने जीवन की गाड़ी सुखपूर्वक चलेगी।

पत्नी का सुझाव सेदुक को पसन्द आया। वह अब प्रतिदिन पत्र-पुष्पादि नृपति³ के पास ले जाता और उसे भेंट देकर लौट आता। यह क्रम निरन्तर चलता रहा।

समय अपनी गति से निरन्तर गतिमान था। नगर में शांतिपूर्ण वातावरण था। सहसा चम्पा नरेश ने कौशाम्बी पर आक्रमण कर दिया। गुप्तचरों द्वारा जैसे ही यह समाचार महाराजा शतानीक को मिला, उन्होंने तुरन्त नगर के दरवाजे बन्द करवा दिये। चम्पा नरेश अपनी सेना सहित नगरी को घेरकर बैठे रहे। भीतर प्रवेश की योजना बनाने लगे। लेकिन कुछ समय के पश्चात् रोग का आक्रमण हुआ और सैन्य दल शिथिल पड़ने लगे। कईयों के रोग के कारण प्राण तक चले गये। यह सब देखकर कई सैनिक भाग खड़े हुए। चम्पा नरेश ने देखा, इस प्रकार एक-एक करके सैनिक कम होते जा रहे हैं, तो यहाँ घेरा डालने से मुँह की खानी⁴ पड़ेगी, इससे पहले ही यहाँ से चले जाना अच्छा है। यह सोचकर वे चुपचाप घेरा उठाकर जाने लगे। संयोग से यह दृश्य सेदुक ब्राह्मण देख रहा था।

वह इस दृश्य का अवलोकन कर अतीव हर्ष से राजा के समीप आया और बोला- महाराज! शत्रु सेना घेरा उठाकर जा रही है। यह समय आपके लिए शुभ है, यदि आप इस समय शत्रु पर आक्रमण करेंगे तो आपकी अवश्य विजय होगी।

शतानीक ने सेदुक के इस कथन से अत्यन्त राहत महसूस की और प्रबल - उत्साह से लौटती शत्रु सेना पर आक्रमण कर डाला। निरूत्साही चम्पा की सेना इस अचानक आक्रमण से छिन्न-भिन्न हो गयी। शतानीक विजयश्री का वरण कर हाथी-घोड़े, धन-माल को लेकर लौट आया। नगर में जीत के नगाड़े बजने लगे और जीत महोत्सव होने लगा। इसी समय शतानीक ने सेदुक ब्राह्मण को बुलाकर कहा- सेदुक! मैं तुम्हारे पर प्रसन्न हूँ, अतएव तुम अपना इच्छित वर मांगो, मैं

1. चडपन्न महापुरिस चरियं में बसन्तपुर नगर, अजात-शत्रु राजा और यज्ञदत्त ब्राह्मण का उल्लेख मिलता है। 2. आपन्नसत्त्वा- गर्भवती 3. नृपति- राजा 4. मुँह की खाना- हार मानना

उसकी पूर्ति के लिए तैयार हूँ। सेटुक ने कहा- स्वामिन्! मुझे समय दीजिए। मैं कल आपकी सेवा में हाजिर होऊँगा। राजा ने स्वीकृति प्रदान की।

सेटुक का मन प्रसन्नता से उछालें खा रहा था। उसके कदमों में जान आ गयी और वह अतिशीघ्रता से अपने घर की ओर चला ही जा रहा था। खुशी के पलों में उत्कंठित-सा बनकर वह जैसे ही घर पहुँचा, अपने आप को रोक नहीं पाया और पत्नी से बोला- प्रिये! बहुत लम्बे अर्से के पश्चात् अपनी मनोकामना पूर्ण होने जा रही है। आज राजा ने मुझे मन इच्छित वर मांगने को कहा है, अतएव तुम बतला दो क्या माँगना है ?

पत्नी ने जैसे ही यह सुना, वह कहने लगी- रुकिये प्रियतम, अपन कुछ सोचकर ही मांगेंगे, जो माँगना है। पति बोला- हाँ, हाँ। कल तक माँगना है। अपने पास समय है, इसलिए चिन्तन कर लेना आवश्यक है।

पत्नी अपने विचारों में डूब गयी। सोचने लगी कि क्या मांगे ? एक बहुत विशाल हवेली, प्रचुर धन-सम्पदा, दास-दासी! विपुल धन ये सब... नहीं... नहीं... यह तो सब अनर्थकारी हो जायेंगे। मदमाते यौवन के साथ प्रभुत्व... धन सम्पत्ति... तब अविवेक पैदा होने में क्या देर लगेगी ? तब क्या मांगू ? आभूषणों का ढेर... गहनों के विभिन्न प्रकार... नहीं... नहीं... शारीरिक शोभा वह सब... अस्थायी है। ज्यादा माँगना ज्यादा मुसीबत का कारण होगा ? जितनी अधिक वैभव सामग्री... उतनी ही विलासिता पैदा होगी... तब सेटुक का मन स्वर्ग को छूने लगेगा... मन अनियन्त्रित¹ बनेगा... यह विचलन ब्रह्मचर्य मर्यादा का विघातक... हाँ... हाँ... महान् अनर्थ... फिर सेटुक दूसरी पत्नी भी ला सकता है... नहीं.. नहीं... ऐसा नहीं... बस मात्र उदरपूर्ति का साधन चाहिए और कुछ नहीं। निश्चय... पक्का निश्चय...। इस प्रकार का निश्चय कर ब्राह्मणी ने अपने भर्ता से कहा- अपने को राजा से अधिक नहीं माँगना है बस प्रतिदिन का भोजन और दक्षिणा में एक स्वर्ण मुद्रा... इतना ही पर्याप्त होगा।

सेटुक ने कहा ठीक है। पत्नी के आगे एक कदम भी चलना उसके लिए दुष्कर था, इसलिए उसने वही स्वीकार कर लिया।²

दूसरे दिन सेटुक राजसभा में गया और राजा से बोला- सम्राट! मुझे आपकी कृपा चाहिए और केवल उदरपूर्ति² के लिए प्रतिदिन का भोजन और दक्षिणा में एक स्वर्ण मुद्रा, बस मेरे लिए इतना ही पर्याप्त है। राजा बहुत प्रसन्न हुआ। उसे प्रतिदिन का भोजन और दक्षिणा में एक स्वर्ण मुद्रा मिलने लगी।

महाराज की मेहरबानी से पूरी कौशाम्बी उसे सम्मान की दृष्टि से निहारने लगी। अनेक नागरिक यह भी चिन्तन करते थे कि सेटुक को यदि अपने यहाँ भी भोजन करवायेंगे तो कभी यह राजा द्वारा अपना कार्य भी करवा देगा। इस प्रकार स्वार्थवश न्यौता देकर सेटुक को अपने यहाँ भोजन करवाकर दक्षिणा देते थे।

1. अनियन्त्रित- नियन्त्रण रहित 2. उदरपूर्ति- पेट-पूर्ति

सेदुक इस प्रकार दक्षिणा मिलने के लोभवश भूख नहीं होने पर भी पूर्व में किये हुए भोजन का वमन कर देता और फिर भोजन करने चला जाता था। इस प्रकार वह लोभ के पाश में फंस गया।

शनैः-शनैः पुत्र-पौत्रादि परिवार की वृद्धि हुई और धन की भी वृद्धि हुई लेकिन वमन करके भोजन करने से उसके शरीर में रोगोत्पत्ति हुई और शनैः-शनैः उसे कुष्ठ रोग हो गया। उसके हाथ पैर गलने लगे और पीव झरने लगा। ऐसे रूग्ण शरीर से भी वह राज्य की भोजनशाला में जाकर भोजन करता था। एक बार मंत्री ने सेदुक की यह दशा देखकर राजा से निवेदन किया- राजन! सेदुक की शारीरिक स्थिति बड़ी विचित्र हो गई है, इसके शरीर से संस्पर्शित वायु से भी हमें बचना चाहिए। अतएव इसका यहाँ आकर भोजन करना उपर्युक्त नहीं है। इसके स्थान पर आप इसके पुत्र को भोजन करवा दीजिए। राजा ने कहा- ठीक है। इस प्रकार मंत्री की बात को स्वीकार करके राजा सेदुक का राजकीय भोजनशाला में प्रवेश निषेध कर देता है।

सेदुक के पुण्य का उदय क्षीण होने लगा। इधर पुत्रों ने भी पिता की यह दशा देखी तो उन्होंने भी अपने स्वास्थ्य की सुरक्षा के लिए पिता को घर से निकालकर झौंपड़ी में बिठा दिया। पुत्रवधुएँ भी उसे घृणाजनित नजरों से देखने लगी। यह सब देखकर सेदुक का हृदय रो पड़ा, ओह! जिस धन का संग्रह मैंने किया है, मेरे सारे पारिवारिकजन उसी धन का खुशी से उपयोग कर रहे हैं और मुझे इस प्रकार उपेक्षित कर मेरे साथ घृणाजनित व्यवहार कर रहे हैं। यह कितने अधम है। मुझे इनसे बदला लेना चाहिए। इस प्रकार द्वेष के कारण सेदुक से मन में वैर-भाव का जागरण हो गया और उसी को अमलीरूप देने के लिए सेदुक ने एक दिन अपने पुत्रों से कहा-

“मैं अब यह जीवन नहीं जीना चाहता हूँ। लेकिन मृत्यु से पूर्व कुल परम्परा के अनुसार एक अभिमंत्रित पशु परिवार के प्रसाद के लिए देना चाहता हूँ, जिससे कुलदेवता प्रसन्न रहें और परिवार सुखी रहे।” पुत्रों ने कहा- ठीक है। समय पर पुत्रों ने एक पशु पिताजी को दे दिया। सेदुक ने उस पशु को अपने पास रखा और उसके खाने के अन्न में कुष्ठ से झरते हुए पीव को मिलाकर उस पशु को खिला दिया। विकृत अन्न खाने से उस पशु के शरीर में कोढ़ उत्पन्न हो गया। तब सेदुक ने उस पशु को मारकर पुत्रों को दे दिया और कहा- तुम इसे खाओगे तो सुखी बन जाओगे। पुत्र अपने पिता के कपट के काटे को पकड़ नहीं पाये। उन्होंने पशु का मांस खाया, जिससे उनको भी कुष्ठ रोग पैदा हो गया।

सेदुक अब तीर्थयात्रा के बहाने जंगल में चला गया। वहाँ भटकते-भटकते उसे पानी की बहुत तेज प्यास लगी। वह पानी के लिए इधर-उधर भटकने लगा। भटकते-भटकते उसे वृक्षों से घिरा हुए एक द्रह² मिला। वह द्रह वृक्षों से घिरा होने के कारण वृक्षों के पत्र, पुष्प, फल उस द्रह में गिर जाते थे तथा सूर्य का उचित ताप भी वहाँ लगता था, जिससे उस द्रह का जल क्वाथ³ के समान

1. संस्पर्शिति- स्पर्श की हुई
2. द्रह- पानी का गहरा झरना/गम्भीर सरोवर (अर्ध मागधी)
3. क्वाथ- काढ़ा

औषध वाला हो गया। सेदुक ने वह जल पीया तो उसके शरीर के कृमि निकलने लगे। इससे सेदुक समझ गया कि यहाँ का जल, फल और पानी, मिट्टी मेरे स्वास्थ्य के लिए हितकर है। इसलिए कुछ दिन यहाँ रूक जाना चाहिए। सेदुक वहाँ कुछ दिन रूका और वहाँ जल-फलादि सेवन से उसका शरीर पूर्णतया निरोग बन गया। स्वस्थ होने के पश्चात् वह पुनः कौशाम्बी लौट आया।

सेदुक को स्वस्थ एवं सकुशल देखकर कौशाम्बी के नागरिक दांतों तले अंगुली दबाने लगे और उससे पूछने लगे कि तुम परिपूर्ण स्वस्थ कैसे बने? सेदुक ने सत्य को छिपाकर कहा- मैंने देव की आराधना की है, जिससे मुझे स्वास्थ्य लाभ मिला है। तब लोगों ने कहा - तुम्हारा सारा परिवार भी कोढ़ी बना है। तुम उन्हें भी स्वस्थ बना दो।

सेदुक बोला - नहीं... नहीं... उन्होंने मुझसे घृणा की... मेरा अपमान... घोर अपमान किया और घर से बाहर निकाल दिया तो मैंने ही इनको कोढ़ी पशु का मांस खिलाकर कोढ़ी बनाया है। उनको अपने पाप का फल भोगने दो।

इस प्रकार सेदुक द्वारा कहे जाने पर लोग क्रूर-निर्दयी कहकर उसकी निन्दा करने लगे। यहाँ तक कि उसके पुत्रादि भी उसे गालियाँ देने लगे, जिससे उबकर सेदुक कौशाम्बी छोड़कर राजगृह नगर में आ गया। वह राजगृह में आजीविका के लिए घूमने लगा। हे श्रेणिक! वह घूमते-घूमते तुम्हारे द्वारपाल के पास आया। तब द्वारपाल ने उसे आजीविका का आश्वासन दिया। भगवान महावीर राजा श्रेणिक को निरन्तर बतलाते हुए कह रहे हैं कि उसी समय ग्रामानुग्राम विहार करते हुए मैं राजगृह नगर में आया। तब द्वारपाल मेरा उपदेश सुनने के लिए आने को लालायित बना। उसने सेदुक को अपने स्थान पर नियुक्त किया और वह मेरा उपदेश सुनने आ पहुँचा। सेदुक ने दुर्गदिवी के सामने बलिदान रखा हुआ देखा तो भूख से व्याकुल सेदुक का मन ललचाया। वह भीतर गया और भरपेट खा लिया लेकिन वहाँ पानी नहीं था, वह पहरा छोड़कर जा भी नहीं सकता था। भयंकर ग्रीष्म का प्रकोप भी था, ऐसी स्थिति में प्यास से व्याकुल होकर वह पानी में आसक्ति लिए मृत्यु को प्राप्त हुआ और राजगृह नगर के बाहर वापिका¹ में मेंढक के रूप में उत्पन्न हुआ।

कालान्तर में विहार करके पुनः मेरा आगमन हुआ। तब उस मेंढक ने पणिहारियों² से मेरी चर्चा सुनी। यह नाम उसे पूर्व परिचित लगा। वह उसके बारे में चिन्तन करने लगा। तब मतिज्ञानावरण के क्षयोपशम के कारण उसे जाति-स्मरण³ ज्ञान उत्पन्न हो गया। तब वह अपना पूर्व भव जानने लगा और मुझे वन्दन करने के लिए बावड़ी से निकला और मेरी तरफ आने लगा। तब हे श्रेणिक! तुम भी अश्वारूढ़ होकर मुझे वन्दन करने आ रहे थे। उसी समय तुम्हारे अश्व द्वारा कुचला जाकर वह मेंढक घायल हो गया। उस समय उसके मन में भक्ति का निर्झर बह रहा था। इसी भक्ति भाव से वह मरण प्राप्त करके दर्दुरांक देव बन गया।

हे श्रेणिक! आज ही इन्द्र की सभा चला रही थी। उसी सभा में इन्द्र ने तुम्हारी श्रद्धा-निष्ठा

1. वापिका- बावड़ी 2. पणिहारियों- पानी भरने वाली स्त्रियाँ

की प्रशंसा देवों के सामने की और कहा कि श्रेणिक जैसा श्रद्धालु श्रावक और कोई नहीं है। तब दर्दुरांक देव को विश्वास नहीं हुआ। इसी कारण वह तुम्हारी परीक्षा करने के लिए यहाँ पर आया। भगवान महावीर के द्वारा इस प्रकार फरमाने पर श्रेणिक राजा ने भगवन् से पूछा- भंते! तो उसने आपके पाँव पर पीव क्यों लगाया ?

भगवान... उसने मेरे पाँव पर पीव नहीं लगाया। उसने तो गोशीर्षचन्दन लगाया था, लेकिन तुम्हारी दृष्टि मोहित करने से वह तुम्हें पीव लगा।

श्रेणिक- भगवन्! उसने आपको छींक आने पर अमांगलिक वचन क्यों कहे।

भगवान- उसने अमांगलिक वचन नहीं कहे, उसके वचनों के पीछे महत्वपूर्ण रहस्य है।

श्रेणिक- भगवन् क्या रहस्या है ?

भगवान- अरिहन्त अवस्था जीवन की अन्तिम भूमिका नहीं है। अध्यात्म जीवन की सर्वोत्तम अवस्था है - सिद्धावस्था, जहाँ समस्त बन्धन समाप्त हो जाते हैं और शाश्वत सुख सदा-सदा के लिए प्राप्त हो जाता है। यह निर्वाण¹ अवस्था भव्यों के लिए वरण-योग्य है। इसीलिए उस देव ने मुझे कहा कि तुम मरो अर्थात् निर्वाण के अव्याबाध² सुख को प्राप्त करो।

श्रेणिक- भगवन्! उसने मुझे जीवित रहने के लिए क्यों कहा ?

भगवान- तुम यहाँ पर भौतिक ऋद्धि का उपभोग कर रहे हो, यहाँ तुम्हें कष्टों का सामना नहीं करना पड़ रहा है। लेकिन यहाँ से मरने के पश्चात् तुम्हें नरक में पैदा होना है। जहाँ केवल दारुण³ वेदना ही वेदना है। वहाँ क्षणभर के लिए भी सुख मिलना असम्भव है। इसलिए तुम्हें जीवित रहने के लिए कहा।

यह श्रवण करते ही श्रेणिक स्तब्ध बन गया, उसका मन अत्यन्त व्यथित हो उठा लेकिन तीसरे प्रश्न का उत्तर जानने की जिज्ञासा होने से उसने भगवान से पूछा- भगवन्! उसने अभयकुमार को क्यों कहा कि अभय! तुम चाहे जीओ, चाहे मरो!

भगवान- अभयकुमार का जीवन पंक से निर्लित पंकज की भाँति है। जैसे कीचड़ में उगने वाला कमल उससे सदैव अलित रहता है, वैसे ही अभयकुमार राज्य का महामंत्री होने पर भी भोगों से अलित है, इसलिए यहाँ इसका जीवन सुखपूर्ण है तथा भविष्य में वह अनुत्तर⁴ विमानवासी देव बनेगा, वहाँ भी उसका जीवन सुखपूर्ण है। इसलिए उस देव ने अभयकुमार से कहा- तुम चाहे जीओ या मरो।

श्रेणिक- भगवन्! उस देव ने कालसौकरिक को यह क्यों कहा कि तुम न मरो न जीओ।

भगवान- श्रेणिक! कालसौकरिक तो हिंसा की भीषण ज्वाला से निरन्तर झुलस रहा है। वह पंचेन्द्रिय प्राणियों की हत्या निर्ममता⁵ से कर रहा है, इसलिए उसका यह जीवन भीषण दुःख से

1. निर्वाण- जहाँ कर्म रूपी अग्नि के बुझ जाने से जीव शीतल/शांत होते हैं, वह निर्वाण है।
2. अव्याबाध- शाश्वत सुख 3. दारुण- दुःखद 4. अनुत्तर- जिसका कोई उत्तर/विशिष्ट नहीं होता
5. निर्ममता- क्रूरता

व्याप्त है और भविष्य में भी वह मरकर नरक में पैदा होगा। वहाँ भी उसे अत्यन्त दुःख की प्राप्ति होगी, इसलिए न उसका मरना अच्छा है और न जीना।

राजा श्रेणिक, भगवान से इस रहस्य को जानकर श्रद्धा-निष्ठा से अभिभूत¹ बने भगवान के प्रति अहोभाव व्यक्त करते हैं। लेकिन उनके मन में एक प्रश्न निरन्तर उठ रहा था कि मैं नरक में क्यों जाऊँगा ? आखिरकार उन्होंने प्रभु से पूछा की- भगवन्! मैं आपकी उपासना करने में तत्पर रहता हूँ, फिर ऐसा क्या कारण है कि मुझे नरक में जाना पड़ेगा ?

भगवान- श्रेणिक तुम्हारा शिकार खेलने में बहुत ज्यादा मन था। तुम आसक्ति-वश शिकार किया करते थे। एक दिन तुम शिकार खेलने जा रहे थे और दूर से तुमने एक हिरणी देखी। अत्यन्त सुकोमल शरीर वाली इस हिरणी को देखकर तुम्हारे मन में उसका शिकार करने की भावना उत्पन्न हुई और तुमने ऐसा निशाना साधा कि एक ही तीर में वह हिरणी मरणावस्था को प्राप्त हो गयी। तुम्हें इस प्रकार हिरणी को मारने से बड़ा आनन्द आया और हिंसासक्त अवस्था में तुमने भव का आयुष्यबंध किया, इसी कारण तुम मरकर नरक में जाओगे।

लेकिन तुम जो मेरी उपासना कर रहे हो, इसका फल अत्यन्त शुभदायी है। तुम नरक से निकलकर आगामी चौबीसी में इसी भरत-क्षेत्र में प्रथम “पद्मनाभ” तीर्थकर बनोगे।

श्रद्धा की कसौटी :

राजा श्रेणिक जब लौट रहे थे, तब दर्दुरांक देव ने उसकी परीक्षा लेने के लिए अपने आप को एक साधु के रूप में उपस्थित किया। वह साधु जाल फैलाकर मछली पकड़ रहा था। राजा ने उस साधु को कहा- अरे! तुम सन्त की पोशाक पहनकर यह अनार्य कृत्य कर रहे हो ?

उसने कहा- राजन्! तुम भगवान महावीर के साधुओं को उत्तम आचारवान मानते हो, लेकिन वे मांसभक्षी हैं। कई साधु ऐसे राजकुलों से आये हैं, जिनमें मांसभक्षण होता था। साधु बनने के पश्चात् भी उनकी मांसभक्षण में रूचि है, इसलिए वे सभी छुप-छुपकर अपनी इच्छा पूरी कर रहे हैं। मैं भी उनमें से एक हूँ।

तब राजा श्रेणिक ने कहा- “तू कोई दुराचारी होगा। भगवान महावीर के साधु तो महान् त्यागी एवं तपस्वी है। यदि तुझसे साधुता नहीं पलती तो तू इस पवित्रतम वेष का परित्याग² कर। तुझे शर्म नहीं आती कि तू इस पवित्र वेष में ऐसा अनर्थकारी कृत्य³ कर रहा है। इस जाल को छोड़, जा भगवान के समीप अपनी आत्मा को शुद्ध बना अन्यथा मैं तुझे कठोर दण्ड दूंगा।”

राजा के इस प्रकार कहने पर उस साधु वेषधारी देव ने जाल फैंक दिया। राजा आगे चलने लगा कि उसने एक सगर्भा साध्वी को देखा, जिसका प्रसवकाल अत्यन्त समीप था। वह राजा के सम्मुख आ रही थी।

1. अभिभूत- युक्त 2. परित्याग- छोड़ना 3. कृत्य- कार्य

राजा ने पूछा- तुम... तुम... क्या साध्वी और इस जीवन में यह दुराचार ? धिक्कार है तुम्हें।

तब उस साध्वी ने राजा से कहा- राजन्! भगवान स्वयं फरमाते हैं कि काम दुरतिक्रम¹ है। इस वासना पर विजय प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है। तुम्हारा स्वयं का पुत्र नन्दीषेण भी काम से पराजित बन गया। तो हम कैसे बच सकती हैं ? हजारों साध्वियाँ छुपकर के व्यभिचार का सेवन करती हैं। मैं तुम्हारी दृष्टि में आ गयी, लेकिन अनेक साध्वियाँ छिप-छिपकर व्यभिचार सेवन करती हैं।

तब राजा श्रेणिक ने कहा- अरे! अधर्मिष्ठा! तू अपना पाप छिपाने के लिए दूसरों को भी अपने समान बतलाकर व्यर्थ पाप कर रही है। तू बहुत अधम है। छोड़ इस पवित्र वेष को और चल अन्तःपुर में। मैं तेरे प्रसव का प्रबन्ध करवा देता हूँ।

देव ने अनुभव किया कि वास्तव में राजा श्रेणिक की श्रद्धा अडोल-अडिग है। अतएव उसने अपना वास्तविक रूप प्रकट किया और राजा से कहा- आज ही इन्द्र ने सभा में आपकी श्रद्धा की प्रशंसा की। वास्तव में आप वैसे ही हैं। मैंने आपकी परीक्षा ली, और आप खरे उतरे हैं। मैं आप पर अतीव प्रसन्न हूँ। ऐसा कहकर देव ने एक रत्नमाला और दो गोले महाराजा को दिये और कहा- इस हार के टूटने पर जो इसको पुनः जोड़ेगा, वह जीवित नहीं रहेगा। यह कहकर वह अन्तर्धान हो गया।

प्रीत किये दुःख होय :

राजा श्रेणिक चलकर महलों में पहुँचा। उसने रत्नमाला महारानी चेलना को दी एवं दोनों गोले महारानी नन्दा को।

जैसे ही नन्दा को गोले दिये उसे रोष पैदा हुआ और उसने महाराज से कहा- राजन्! जो उत्तम रत्नमाला थी, वह तो आपने अपनी प्रियतमा चेलना को दे दी और ये गोले मुझे दे रहे हैं ? मैं क्या करूँगी इन गोलों का ? ऐसा कहते हुए उसने रोषवश वे दोनों गोले खंभे पर दे मारे। गोले फूटे। एक में से रत्नजड़ित कुण्डल निकले और एक में से उत्तम कोटि के रेशमी वस्त्र युगल, जिन्हें देखकर नन्दा महारानी का रोष पानी-पानी हो गया।²

नन्दा महारानी कुण्डलों के मिलने पर अतीव² प्रसन्न हुई और एक दिन उसने कानों में वे कुण्डल धारण कर लिये। उन कुण्डलों को धारण करने से नन्दा के सौन्दर्य में अभूतपूर्व परिवर्तन आया। उसका मुखमण्डल ऐसा दैदीप्यमान होने लगा मानो स्वर्गलोक से कोई अप्सारा आयी हो।

अचानक महारानी चेलना की दृष्टि जब नन्दा के कुण्डलों पर जा टिकी, तो उसके रोम-रोम में ज्वालामुखी फूट पड़ी और वह मन ही मन सुलगती रही कि कब महाराज मिले और कब मैं भी वैसे ही कुण्डल प्राप्त करूँ। इसी ईर्ष्या की आग में निरन्तर जलकर वह अपने सद्बिचारों को नष्ट किये जा रही थी।

1. दुरतिक्रम- कठिनाई से छोड़ने योग्य 2 . अतीव- अत्यधिक

जैसे ही महाराज श्रेणिक चेलना के पास आये, उसके भीतर की धधकती अग्नि फूट पड़ी और तीक्ष्ण वचन -बाणों से महाराजा का हृदय भेदन करती हुई बोली- राजन्! हार देने के बहाने आपने मुझे छल लिया। असली चीज तो आपने नन्दा को दे दी है।

तब श्रेणिक राजा ने कहा- असली... अरे मैंने तो तुम्हें हार दिया उसका तो दो गोले दिये थे। मुझे क्या मालूम कि गोलों में इतने सुन्दर कुण्डल हैं? यह तो भाग्य की बात है। अब मैं क्या कर सकता हूँ ?

चेलना बोली- मैं भाग्य, सौभाग्य कुछ भी नहीं जानती ? बस इतना जानती हूँ कि मुझे कुण्डल चाहिए और वे अभी ही मिलने चाहिए...

श्रेणिक- अब कुण्डल... कुण्डल कैसे मिलेंगे ?

चेलना- मगध के सम्राट का इतना भी शौर्य नहीं कि वह कुण्डल दिला सके ?

श्रेणिक- मैं तुम्हें उससे भी बेशकीमती कुण्डल दिला सकता हूँ।

चेलना- नहीं... मुझे वही कुण्डल चाहिए। आप नन्दा से...

श्रेणिक- नन्दा से... नन्दा से कुण्डल कैसे ले सकता हूँ ?

चेलना- तो कान खोलकर सुन लो फिर मैं अग्नि स्नान कर लूंगी।

श्रेणिक- चेलना! क्या तुम्हें ऐसे कहना उचित है ?

चेलना- अभी उचित-अनुचित का प्रसंग नहीं है। बस मैंने मन में ठान लिया कि मुझे कुण्डल मिलने चाहिए।

श्रेणिक- दूसरों का दिल दुःखाकर अकार्य करना क्या उचित है ?

चेलना- बस... मुझे कुछ नहीं सुनना। मुझे कुण्डल चाहिए... कुण्डल.. कुण्डल... यों कहकर वहाँ से उठकर कोप-भवन में चली जाती है।

मगध सम्राट श्रेणिक का मन टुकड़े-टुकड़े हुए जा रहा था कि संसार में किसे अपना प्रिय मानें ? जिसको प्रिय मानकर दिया आज वही दुःख का स्थान बन गया। वास्तव में अपने ही प्रिय व्यक्ति जब पराये बनकर मन को तड़पाते हैं तो लगता है कि वस्तुतः कोई अपना होता ही नहीं है। जगत् को जीतना आसान है, लेकिन अपनों को अपना बना लेना परम दुष्कर है। हम अपना सर्वस्व समर्पण करके भी अपनत्व को कायम रख सकें यह संदेहास्पद है। अब क्या करूँ ? ...राजा बहुत गहन विचारों में डूब गया और उन्होंने अभयकुमार को बुलाकर कहा - वत्स¹ अभय! स्त्रियों का हठ बड़ा विचित्र है। तुम्हारी विमाता के मन में मलिन विचार पैदा हो गये हैं। मैंने चेलना को हार दिया, लेकिन अब वह नन्दा को दिये गये कुण्डल को लेने का अनुचित हठ कर रही है। बहुत समझाने पर भी वह कोप-भवन में जा बैठी है और आत्मघात करने तक तैयार हो गयी है। अब समस्या कैसे सुलझायें ?

1. वत्स- पुत्र

अभयकुमार- तात! आप चिन्ता छोड़ दीजिए। मैं उसका हल खोज निकालूंगा।

श्रेणिक- तुम्हारे रहते हुए मुझे चिन्ता नहीं है।

राजा श्रेणिक निश्चिंत हो गया और अभयकुमार ने सोचा- एक बार चेलना के पास जाकर देखना चाहिए कि उसके सिर में कितना क्रोध का जहर है ? तब ही मैं उपाय कर पाऊँगा। ऐसा चिन्तन कर अभयकुमार महारानी के महल की ओर गया।

महल के बाहर जाकर दासी से कहा कि मातुश्री से निवेदन करो कि अभयकुमार मिलना चाहता है। कम्पकम्पाती हुई दासी महारानी के पास जाती है और निवेदन करती है- महारानी साहिबा! मंत्रीश्वर अभयकुमार आपके दर्शन करना चाहते हैं।

महारानी गुस्से में बोली- मंत्रीश्वर को मेरे दर्शन की क्या आवश्यकता है ? उन्हें जाकर बोल दो कि यदि वे कुण्डल लाये हैं तो दर्शन कर सकते हैं।

दासी घबराकर जाती है और अभयकुमार से निवेदन करती है कि महारानी का आदेश है कि यदि आप कुण्डल लाये हैं तो महारानी से मिल सकते हैं, अन्यथा नहीं।

अभयकुमार ने जान लिया कि गुस्सा सीमा पार कर गया है, अतः इसका वैसा ही इलाज करना चाहिए। ऐसा चिन्तन कर अभयकुमार अपने स्थान पर लौट गया।

प्रज्ञा से पराजित :

अभयकुमार अपनी पैनी प्रज्ञा से कुछ समय तक चिन्तन के आयामों पर यात्रा करते हैं और तदनन्तर एक सेवक को बुलाकर आज्ञा देते हैं कि तुम हस्तिशाला के नायक को शीघ्र बुलाओ।

अभयकुमार इस बात को जानता था कि हस्तिशाला की ओर चेलना महारानी के महल की खिड़कियाँ खुलती है, अतः हस्तिशाला में होने वाली प्रत्येक हलचल को चेलना देख सकती है और वहाँ होने वाले वार्तालाप को श्रवण भी कर सकती है। अतः हस्तिशाला ही उपयुक्त स्थान है। इसी कारण हस्तिशाला के मुखिया को याद किया। स्वल्प समय में ही हस्तिशाला का नायक मंत्रीश्वर अभयकुमार के चरणों में उपस्थित होकर निवेदन करता है- मंत्रीश्वर की जय हो! आपका क्या आदेश है ?

अभयकुमार ने अपनी सारी योजना उसे समझा दी और कहा- तुम इस ढंग से नाटक करना कि वह दिल के भावों को बदल डाले, विकारों को शुद्ध विचारों में परिवर्तित कर दे।

नायक ने कहा- मंत्रीश्वर। आप निश्चिंत रहिए। सबकुछ मनचाहा ही होगा।

नायक अपने घर लौट आया। उसने सबकुछ तैयारी कर ली और अर्धरात्रि में अपनी पत्नी को लेकर हस्तिशाला पहुँचा।

यामिनी¹ का अर्धभाग² व्यतीत हो चुका था। नगर में चारों ओर नीरवता छायी हुई थी। निद्रा के अंक³ में समाहित⁴ होकर सभी अपनी-अपनी थकान को अपगत⁵ कर रहे थे। वातावरण शांत-

1. यामिनी- रात्रि 2. अर्धभाग- आधा भाग 3. अंक- गोद 4. समाहित- लीन 5. अपगत- दूर करना

प्रशांत बना हुआ था, परन्तु महारानी चलना के मन का उफान अपने परिपूर्ण यौवन पर था। उसकी आँखों में नींद नहीं, कुण्डल झलक रहे थे। हाय! वे कुण्डल... एक इन्द्रिय के असंयम ने उसके जीवन में खलबली मचा डाली। ईर्ष्या की भीषण ज्वाला भीतर में सुलग रही थी कि कुण्डल कब मिलेंगे ? कैसे मिलेंगे ? बस उनको पाना ही मेरा परम ध्येय है। इन्हीं भावनाओं में डूबी करवटें बदल रही थी कि अचानक उसे किसी पुरुष के शब्द सुनायी दिये। वह चौंकी! अर्धरात्रि व्यतीत होने पर ये शब्द कहाँ से आ रहे हैं ? उसने खोजना प्रारम्भ किया और अपने महल का झरोखा खोला तो देखा हस्तिशाला में प्रकाश चमचमा रहा है और वहाँ एक पुरुष और एक नारी आपस में बातचीत कर रहे हैं।

महारानी अपने कानों को एकाग्र करके बातचीत सुनने लगी। देखा कि हस्तिशाला का मुखिया राज्य का हस्तिपालक और उसकी पत्नी महासेना का वार्तालाप चल रहा है।

महासेना अपने भर्ता से निवेदन कर रही है - देखो स्वामी! कल त्यौहार है। मेरी सर्व सखियाँ वस्त्राभूषणों से अलंकृत¹ होकर कल आयेगी, तो आप राजहस्ती के गले में सुशोभित मोतियों के हार को लेकर एक दिन के लिए मुझे दे दो, ताकि मैं भी उसे पहनकर जाऊँगी।

हस्तिपालक- मैं... मैं... ऐसा कभी नहीं कर सकता। ऐसा करना मर्यादा का गला घोटना है।

महासेना- अरे! यह क्या अमर्यादा है ? एक दिन हार दे भी दोगे तो राजा को क्या पता चलेगा ?

हस्तिपालक- राजा को पता चले या न चले लेकिन यह अकार्य मैं नहीं कर सकता।

महासेना- नहीं कर सकते ? ...नहीं कर सकते ? तो कोई बात नहीं। मैं कल अपने प्राण त्याग दूँगी।

हस्तिपालक- प्राण... प्राण... वह तो एक दिन त्यागना ही होगा, कल का इन्तजार क्यों ? लेकिन तुम्हारे हठ के कारण मैं अपने संस्कारों को विकृत नहीं करूँगा।

इतने में ही हस्तिपालक का मित्र महावत आ गया। उसने थोड़ा वार्तालाप सुन ही लिया था। वह समीप आकर बोला- अरे! यह क्या वार्तालाप चल रहा है ?

हस्तिपालक ने अपने मित्र महावत को सारी स्थिति बतलायी तो उसका मित्र बोला- अरे मित्र! तुम ऐसा अकार्य करना भी मत। स्त्रियों की बातें बेसिर-पैर हुआ करती है। उनकी ईर्ष्या से जली प्रज्ञा में मात्र अहं का धूम उठा करता है। उनकी जितनी बात मानते जाओ, वे उतनी ही जिद्द पकड़कर अकड़ती रहती है और हमें झुकाती रहती है। ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती भी यह गलती करते-करते सम्हल गया। इसलिए तुम यह भूल मत करना।

मित्र की बात सुनकर महासेना तो जल भुनकर राख हो गयी और गुस्से में बोलने ही जा रही थी कि हस्तिपालक ने उसे कहा- अरी चुप रह! अभी मुझे अपने मित्र की बात सुनने दे। यह कहकर उसे हाथ पकड़कर बिठा दिया और मित्र से कहा- सुनाओ ब्रह्मदत्त की कहानी। महारानी चलना

1. अलंकृत- सुशोभित

गवाक्ष में बैठी सब दृश्य देख रही थी और वह भी ब्रह्मदत्त की कथा ध्यान से सुनने को समुत्सुक¹ बन गयी।

महावत ने कहानी सुनाना प्रारम्भ किया- पांचाल देश का राजा था। ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती। कांपिल्यपुर उसकी राजधानी थी। जिसका गौरव स्वर्ग की शोभा का वरण कर रहा था। राजा की प्रज्ञा इतनी विलक्षण थी कि प्रत्येक नागरिक राजा की कार्यशैली से प्रभावित रहता था। प्रजा सुख-चैन की साँस ले रही थी। नगरी में सौहार्दपूर्ण वातावरण था।

एक दिन सुहावना मौसम था। सूर्य पयोधरों² में छिपकर वातावरण को मधुरिम बना रहा था। तब ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती अन्य राजाओं सहित वन-विहार को चल पड़े चक्रवती का अश्व पवन-वेग सम दौड़ने लगा और सभी राजाओं से उनका घोड़ा आगे निकल गया। भीषण जंगल और आगे का मार्ग दिखलायी नहीं पड़ रहा था। तृष्णा³ से कण्ठ सूखे जा रहे थे। दूर-दूर तक कहीं पानी दिखलाई नहीं पड़ रहा था। थकान से अंग-प्रत्यंग में दर्द होने लगा। पानी नहीं मिलने से बुरा हाल हो रहा था। वह पानी की तलाश में इधर-उधर घूम रहा था। इतने में ही वृक्षों के झुरमुटों के बीच एक स्वच्छ निर्मल नीर वाली झील दिखलाई दी। राजा उस झील के किनारे गया और वहाँ पानी पीने लगा। अमृतसम मधुर जल वाली झील से पानी पीकर उसने अपनी तृष्णा शमित की। वृक्षों के झुरमुटों में थोड़ी देर विश्राम किया और अश्व पर आरूढ़ होकर राजा राजधानी की ओर लौटने लगा सहसा उसकी दृष्टि एक अप्सरासम मृगनयनी⁴ नारी पर जा टिकी, जो वृक्षों के झुरमुटों से निकल रही थी।

ऐसी अद्वितीय सुन्दरी तरुणी को उसने प्रथम बार देखा था। वास्तव में तरुणी⁵ साधारण स्त्री नहीं थी, वह नाग-कन्या थी। राजा उसे देखे ही जा रहा था। इतने में एक नाग कहीं से निकलकर उस नव-यौवना के पास आ गया। नाग इस कन्या को डस न ले, इस आशय से उसने नाग को परलोक पहुँचाने की दृष्टि से तलवार निकाली कि वहाँ एक आश्चर्यचकित घटना घटित हुई। वह सुन्दरी नागिन बनकर नाग से रति-क्रीड़ा⁶ करने लगी। यह देख राजा आश्चर्यचकित हुआ कि यह सुन्दरी नागिन कैसे बन गयी ? लेकिन उसको इस बात का अत्यधिक क्रोध आया कि यह तरुणी स्त्री होकर एक नाग के साथ काम-क्रीड़ा कर रही है और अपने शील को भंग कर रही है। राजा शील की जीती-जागती मिशाल था - उसके राज्य में ऐसा अमर्यादित अब्रह्म सेवन कोई कर नहीं सकता था। अतः उसने क्रोध में आकर मर्यादा को सुरक्षित रखने के लिए नाग और नागिन को बहुत जोर से पीटा। चाबुक की मार खाते ही नाग-नागिन अदृश्य हो गये। राजा बहुत विचार में पड़ गया और उन्हीं विचारों में लीन बना हुआ वह राजधानी में लौट गया।

तब वह नागकन्या पाताल लोक में गयी और उसने अपने पति से कहा- तुम अभी पाँचाल देश के कांपिल्यपुर नगर में जाओ और राजा ब्रह्मदत्त को मारकर आओ।

1. समुत्सुक- उत्साह सहित 2. पयोधर- बादल 3. तृष्णा- व्यास 4. मृगनयनी- हिरणी के समान आंखों वाली 5. वरूणी- नव यौवना स्त्री 6. रति-क्रीड़ा- काम-क्रीड़ा

उसके पति ने पूछा क्यों ? वहाँ का राजा ब्रह्मदत्त तो बड़ा न्यायी, विद्वान और शीलधर्म की जीती-जागती मिशाल है।

नागकन्या ने कहा- नहीं... नहीं... नहीं... वह ऐसा नहीं है। मैं एक झील में स्नान करके बाहर निकल रही थी तो उसने मुझे देखा। मेरे रूप और लावण्य पर आसक्त बनकर वह लोभी भ्रमर मुझसे प्रेम की भिक्षा मांगने लगा। जब मैंने उसे ललकारा तो वह चाबुक से मुझे मारने लगा। यह कहते हुए उस नागकन्या ने अपनी पीठ पर पड़े हुए चाबुक के निशान अपने पति को दिखलाये।

पत्नी के निशान देखकर उस नागदेव को बहुत तेज क्रोध आया और वह राजा ब्रह्मदत्त को मारने के लिए पहुँच गया।

जैसे ही वह ब्रह्मदत्त के महल में पहुँचा राजा अपनी महारानी से बातचीत कर रहे थे। रानी पूछ रही थी कि आज आप वन-विहार को गये, कोई विचित्र घटना देखी हो तो बताओ ?

तो राजा ने नाग-कन्या की सम्पूर्ण घटना आद्योपान्त महारानी को सुना दी। वह नागदेव भी उस घटना को श्रवण कर रहा था। उसे श्रवण कर वह राजा की सत्यता से अत्यन्त प्रभावित हुआ और नृपति के पास आकर बोला- मैं आज अपनी पत्नी के कथन पर विश्वास करके आपको मारने आया था, किन्तु अब सही बात का मुझे ज्ञान हो गया है। अतः प्रसन्न होकर मैं आपको कुछ वरदान देना चाहता हूँ, आप मांगिए ?

महाराज ने कहा- नागदेव! मुझे वैसे किसी चीज को मांगने की आवश्यकता महसूस नहीं होती तथापि आप देना ही चाहते हैं तो यह वरदान दीजिए कि मेरी प्रजा सुखी और चारित्रवान रहे।

नागदेव ने कहा- ऐसा ही होगा महाराज! लेकिन आप अपने स्वयं के लिए कोई वरदान मांगिये ?

राजा- मैं पशु-पक्षियों की भाषा समझ सकूँ, बस यह वरदान दीजिए।

नागदेव- हाँ ऐसा होगा, लेकिन इसमें एक सावधानी आप रखना कि आप पशु-पक्षियों से सुनी हुई बात किसी अन्य को मत बताना। यदि आप किसी दूसरे को बता देंगे तो आपकी तत्काल मृत्यु हो जाएगी।

राजा ने कहा- ठीक है। नागदेव वरदान देकर अदृश्य हो गया। राजा ब्रह्मदत्त को अब पशु-पक्षियों की भाषा समझ आने लगी और राजा को वह सब सुन-सुनकर आनन्द आने लगा।

एक दिन राजा के लिए कस्तूर चन्दन का लेप तैयार किया गया। राजा की पालतू कोकिला ने उस लेप को देखा और उसे अपने अंगों पर लगाने की इच्छा जागृत हुई। तब उसने अपने प्रियतम पुंस्कोकिल से कहा- सुनिये! राजा के लिए जो लेप तैयार हुआ है, आप थोड़ा सा ले आईये, मैं अपने शरीर पर लगाऊँगी।

तब पुंस्कोकिल ने कहा- अरे! वह लेप मैं लेने जाऊँगा तो राजसेवक मेरा गला घोट देंगे।

1. पुंस्कोकिल- पुरुष-कोयल

लेकिन वह कोकिला बात नहीं मानती है और जिद्द करती ही रहती है। उन दोनों के वार्तालाप को श्रवण करके महाराज को हँसी आ जाती है।

पास में बैठी महारानी, राजा से पूछती है कि क्या हुआ, आप क्यों हँस रहे हो ?

राजा ने कहा- कुछ नहीं हुआ, यों ही हंसी आ रही है।

महारानी ने कहा- आपको बताना ही होगा। यदि आप नहीं बताएंगे तो... तो... मेरा जीवित रहना मुश्किल होगा।

राजा- तुम नहीं जानती कि मैं क्यों नहीं बता रहा हूँ ?

महारानी- अच्छा बताओ, आप क्यों नहीं बता रहे हैं ?

राजा- यदि मैं तुम्हें यह बात बताऊँगा तो मेरी मृत्यु निश्चित है।

महारानी- ऐं... मुझे विश्वास नहीं होता। खैर... आप मत बताईये, आप नहीं बताएंगे तो मेरी मृत्यु...।

राजा - चलो इतना ही तुम्हारा हठ है तो कल बताने की इच्छा रखता हूँ।

रानी को कुछ सन्तोष हुआ। इन्तजार के पलों में रात्रि व्यतीत होने लगी। वस्तुतः हठ कितना जबरदस्त दुर्गुण है, जो दूसरों को खाक में मिलाकर भी शिखा पर दमकता रहता है। उसके सामने व्यक्ति पूर्णतः किंकर्तव्यविमूढ़ बन जाता है और विवेकशून्य बनकर पतन के द्वार उद्घाटित¹ कर देता है।

महारानी को एक ही धुन थी कि मेरी जिद्द पूरी होनी चाहिए, उसके लिए चाहे मुझे वैधव्य² मिले वह भी स्वीकार है। पति की प्राणप्यारी पत्नी जिद्द के सहकार से पति की प्राण-प्यासी बन जाती है। वह पूरे परिवार को मौत के घाट उतारने के लिए भी करुणा को लीलकर क्रूरता से समझौता कर लेती है। महलों को खाक बनाकर जंगली जीवन जीना पसन्द कर लेती है। परिवार का नाश करके भी सन्तोष की साँस ले लिया करती है। जिद्द एक ऐसा भयंकर जहर है, जो स्त्री के दिमाग में चढ़कर सृष्टि का विनाश तक भी कर देता है।

यामा³ का अवसान⁴ हुआ और प्रातःकाल महाराज ने एक विशाल मैदान में चन्दन की चित्ता तैयार करवाई। महारानी को लेकर राजा उस चित्ता के पास पहुँचे और सारी प्रजा वहाँ पर उमड़ पड़ी। सबके मन में एक ही विचार उमड़ रहा था कि न जाने क्या होगा ? राजा ने चित्ता के पास जाकर महारानी से पूछा- बोलो ? हँसी का कारण बताऊँ ?

महारानी- हाँ... हाँ... कारण तो बताना ही पड़ेगा, चाहे कुछ भी हो।

राजा महारानी को कारण बताने के लिए तत्पर बने, इतने में मैदान में खाली जगह पर घास चरते हुए एक बकरा-बकरी आपस में बातें करने लगे। राजा का ध्यान उसी तरफ आकर्षित हुआ और वह वह एकाग्रचित्त होकर उनकी बात सुनने लगा।

1. उद्घाटित- खोलना 2. वैधव्य- विधवापन 3. यामा- रात्रि 4. अवसान- समाप्ति

उस समय बकरी ने बकरे से कहा- राजा के घोड़े बड़े भाग्यशाली हैं। कितने बढिया-बढिया दाने खाते हैं। मेरी भी इच्छा होती है कि मुझे भी वैसे बढिया-बढिया दाने खाने को मिले।

बकरा- जा... जा... कौन ऐसी आफत मोल लेगा। राजा के घोड़े के दाने लाना मतलब मौत को बुलाना है।

बकरी- अरे! कुछ नहीं होगा। आप एक बार लाकर तो दो।

बकरा- मैं नहीं लाता।

बकरी- लाना पड़ेगा।

बकरा- नहीं लाऊँगा।

बकरी- तो मैं प्राण त्याग दूँगी।

बकरा- अरे! कल मरती है तो आज मर जा। तेरी जैसी पच्चासों मिल जायेगी। मैं राजा ब्रह्मदत्त जैसा मूर्ख नहीं जो रानी के कहने से अपने विवेक को खोकर प्रजा को अनाथ बना रहा है। तेरे को मरना है, तो जा तू भी मर।

राजा ने जब यह बात सुनी तो उसके भीतर में ज्ञान का प्रकाश फैल गया। उसने अपने गले में पड़ी माला को बकरे के गले में डाला। रानी से कहा- मरना है तो तू मर। मैं व्यर्थ में अपनी जान क्यों गवाऊँ ? वह ऐसा कहकर लौट आया। महारानी ने भी स्वतः हठ छोड़ दिया। यह कहानी सुनाकर महावत वहाँ से चला गया।

तब हस्तिपालक ने अपनी पत्नी महासेना से कहा- सुना ? मैं तुझे माला देने वाला नहीं। चाहे कल मरती आज मर जा। तेरे जैसी बहुत मिलेगी।

महासेना बोली- जा... जा... मुझे भी तेरे जैसे बहुत मिलेंगे। यों बड़बड़ाती हुई वहाँ से चली जाती है।

यह सब दृश्य गवाक्ष¹ में बैठी चेलना देख रही थी। उसका मन भी व्यथा² से भर गया कि देखो मैंने मात्र कुण्डल के लिए महाराज को कितना कष्ट पहुँचाया है। मुझसे तो ये सामान्य नौकर-नौकरानी ही अच्छे हैं, जो कुछ नहीं मिलने पर भी सन्तोष रखते हैं। प्रातःकाल होने पर मुझे महाराजा से अवश्य क्षमायाचना करनी है। ऐसा निश्चय करके महारानी निद्रा की गोद में अलसाने³ लगी और प्रातःकाल उसने महाराज से क्षमायाचना करके अपने दुराग्रह का परित्याग कर दिया। चहुँओर शांति का निर्मल-निर्झर⁴ प्रवाहित होने लगा।

आसक्ति से आश्रव

राजा श्रेणिक ने जो हार महारानी चेलना को दिया था, उस हार को पाकर वह उस हार में समासक्त⁵ बन गयी और उसे अत्यन्त सावधानी से रखती थी। लेकिन पुद्गल तो आखिर पुद्गल होते

1. गवाक्ष- झरोखा 2. व्यथा- पीड़ा 3. अलसाने- सोने 4. निर्झर- झरना 5. समासक्त- लीन/ मुच्छिन्न

हैं। एक दिन आखिर वह हार टूट ही गया। अत्यन्त प्रिय होने से चेलना के मन में हार को पुनः जुड़वाने के भाव पैदा हुए। उसने राजा श्रेणिक से कहा- मेरा यह प्रिय हार टूट गया है, आप इसे पुनः जुड़वा दीजिए।

तब श्रेणिक बोला- प्रिये! यह देव प्रदत्त हार है। जो इस हार को जोड़ेगा उसकी मृत्यु हो जायेगी। इसलिए इस हार को जुड़वाने की बजाय, मैं तुम्हें दूसरा हार बनवा देता हूँ। ताकि तुम्हारी मनोकामना भी पूर्ण हो जायेगी और किसी व्यक्ति को प्राणों से हाथ भी नहीं धोना पड़ेगा।

चेलना- राजन्! मुझे यही हार अत्यन्त प्रिय है, मैं इसी को पहनना चाहती हूँ।

श्रेणिक- लेकिन ऐसा करने पर, जोड़ने वाले के प्राण...

चेलना- राजन्! मेरा मन इसी हार में अटक गया है। इसलिए किसी वृद्ध व्यक्ति से यह कार्य सम्पन्न करवा दीजिए।

महाराज ने महारानी चेलना को बहुत समझाया, लेकिन रानी टस से मस न हुई। तब स्त्री हठ से पराजित राजा श्रेणिक ने अपने राज्य में घोषणा करवा दी कि “महारानी चेलना का हार टूट गया है, जो व्यक्ति उस हार को पुनः जोड़ देगा उसे एक लाख स्वर्ण मुद्राएँ दी जायेगी किन्तु हार ठीक करने वाले व्यक्ति की तत्काल मृत्यु हो जायेगी।”

घोषणा सुनने के बाद कोई भी व्यक्ति हार ठीक करने नहीं आया, क्योंकि जब मृत्यु ही हो जायेगी तो फिर स्वर्ण-मुद्राएँ क्या काम आयेगी ? लेकिन कभी-कभी परिस्थिति मृत्यु भय को पराजित कर देती है। उस समय राजगृह नगर में एक वृद्ध स्वर्णकार¹ रहता था। उसके पत्नी, चार पुत्र और चार पुत्रवधुएँ थी। भरा-पूरा परिवार था, लेकिन लक्ष्मी सदैव विमुख बनी रहती थी। इस घोषणा को सुनकर वृद्ध स्वर्णकार ने चिन्तन किया कि मेरा शरीर अब वृद्धावस्था² के कारण जर्जरित³ हो चुका है, किसी भी क्षण मृत्यु आ सकती है। क्यों नहीं लाख स्वर्ण मुद्राएँ लेकर मैं अपने परिवार की निर्धनता सदा-सदा के लिए समाप्त कर दूँ। इस प्रकार विचार करके उस स्वर्णकार ने अपने पारिवारिकजनों को यह विचार बताया, लेकिन उसके परिवार वालों ने मना कर दिया कि हमें ऐसा धन नहीं चाहिए। वह वृद्ध बारम्बार अपने अभिप्राय को दोहराता रहा और आखिरकार अपने पारिवारिकजनों को इस कार्य हेतु मनाने में सफल हुआ। वह राजा के पास गया और उसने निवेदन किया कि मैं महारानीजी का हार ठीक कर सकता हूँ।

तब उसे राज्यकोष से पचास हजार स्वर्ण मुद्राएँ पहले दी और पचास हजार बाद में देने के लिए कहा गया। उसने अपने अद्भुत कौशल से हार को ठीक कर दिया। हार ठीक करते ही स्वर्णकार का मस्तक फट गया और वह काल के गाल में समा गया।

इधर स्वर्णकार के पुत्रों ने राजपुरुषों से अवशिष्ट पचास हजार स्वर्ण मुद्राएँ मांगी, लेकिन राजपुरुषों के नैतिकता के पतन के कारण स्वर्ण मुद्राएँ उन्हें नहीं मिली और उन्होंने ताड़ना-तर्जना

1 . जर्जरित- क्षीण वाला कर्म

के द्वारा स्वर्णकार के पुत्रों को भगा दिया। स्वर्णकार-पुत्र जो कुछ मिला उसी में सन्तोष करके रह गये।

उस वृद्ध स्वर्णकार ने मृत्यु के पश्चात् राजगृह नगर के समीप किसी उद्यान में वानर के रूप में जन्म-ग्रहण किया। वह बन्दर शनैः-शनैः बड़ा होने लगा और एक दिन उछल-कूद मचाता हुआ जिधर अपने पुत्रों का घर था, उधर आया। अपने घर को देखते ही वह बारम्बार विचार करने लगा कि यह घर मैंने पहले कहीं देखा है। ऐसा विचार करते-करते मति-ज्ञानावरणीय¹ का क्षयोपशम हुआ और उसे जाति-स्मरण ज्ञान हो गया। जाति-स्मरण ज्ञान होने पर उसे विचार आया कि शेष पचास हजार स्वर्ण मुद्राएँ मेरे पुत्रों को मिली या नहीं मिली। इस बात पर चिन्तन करते-करते वह पुत्रों की दुकान पर गया और भूमि पर लिखकर अपने पुत्रों से पूछा कि तुम्हें अवशिष्ट² बची पचास हजार स्वर्ण मुद्राएँ मिली या नहीं। पुत्रों ने कहा- नहीं। यह उत्तर श्रवण करके उसे बहुत दुःख हुआ। वह पुत्रों को आश्वस्त करता है कि मैं तुम्हें पचास हजार स्वर्ण मुद्राएँ दिलवाकर रहूँगा। ऐसा कहकर उद्यान की ओर चला जाता है।

परिग्रह का पाश

अब उस वानर के मन में इसी प्रकार के अध्यवसाय चलने लगे कि मुझे महारानी का हार चुरा लेना है। इसके लिए वह प्रतिदिन राजमहल और महारानी के प्रिय उद्यान के पास निरन्तर घूमता रहता है।

महारानी खेलना का अशोक वाटिका नामक प्रिय उद्यान था। उसकी छटा अपने आप में अत्यन्त रमणीय और मनमोहक थी। उसमें रहे हुए फलों से सम्पन्न वृक्षों एवं नवोदित परिमल³ से सम्पन्न सुमनों की छटा मन को समाकृष्ट करने वाली थी। छोटे-छोटे जलाशयों और पंकजों⁴ से सुशोभिज सरोवरों का शीतल जल मन्द-मन्द पवन के झोंकों से अठखेलियों करता था। ऐसी मनमोह वाटिका में महारानी खेलना प्रायः स्नान करने के लिए या घूमने के लिए आया करती थी।

एक दिन महारानी उस वाटिका में विहार करने हेतु गयीं। घूमते-घूमते उसका मन जल-क्रीड़ा के लिए आतुर हो गया। उसने अपनी सहचारिणी दासियों से कहा- चलो अब सरोवर के पास चलते हैं, क्योंकि मेरा मन सरोवर में जलक्रीड़ा के लिए आतुर है। दासियों ने महारानी के आदेश को सहर्ष स्वीकार किया और सभी सरोवर के समीप आ गयीं।

महारानी खेलना ने अपने वस्त्राभूषणों को उतारकर दासियों को सौंपा और स्वयं महारानी जलक्रीड़ा हेतु सरोवर में उतर गयीं। दासियों ने उन वस्त्राभूषणों को एक थाली में ग्रहण कर लिया। उन वस्त्राभूषणों के साथ वह बेशकीमती देव प्रदत्त हार भी था। वे पारिचारिकाएँ⁵ उस हार को लेकर जम्बू-वृक्ष के नीचे बैठ गयीं और परस्पर हँसी-मजाक में मशगूल⁶ हो गयीं।

1. मतिज्ञानावरणीय- मति ज्ञान को आवृत्त करने . अवशिष्ट- शेष 2. परिमल- सुगन्ध 3. पंकज- फूल (कमल के) 4. पारिचारिकाएँ- दासियाँ 5. मशगूल- लीन

इधर वह बन्दर उस हार को अपहरण की ताक में था ही। वह वृक्ष पर बैठा-बैठा उस थाली को देखता है और उछल-कूद करता हुआ नीचे आकर हार उठाकर ले जाता है। दासियों को भनक तक न पड़ी कि हार किसी ने चुराया है। थोड़ी देर बाद महारानी की जलक्रीड़ा समाप्त हुई उसने वस्त्र धारण किये और आभूषणों को अलंकृत करने लगी तो उसे वह हार दिखायी नहीं दिया। उसने दासियों से पूछा- अरे! मेरा वह प्रिय हार... हार कहाँ गया ?

दासियाँ तो सुनकर थर-थर काँपने लगी और महारानी से निवेदन करने लगी- मालकिन... हमें तो पता ही नहीं हार... हार कहाँ गया! हमने तो यहाँ किसी को आते हुए भी नहीं देखा। चलना इस बात को जानती थी कि दासियाँ ऐसा नहीं कर सकती, इसलिए वह दासियों को कुछ भी नहीं कहकर तुरन्त महाराज श्रेणिक के पास चली गयी और आद्योपान्त सारी घटना महाराज को कह सुनायी और उसने राजा से अविलम्ब हार की खोज करवाने की बात कही।

इधर उस बन्दर ने हार को ग्रहण किया और ले जाकर अपने पुत्रों को दे दिया। पुत्रों ने वह हार छिपाकर अपने पास रख लिया। महाराज श्रेणिक हार की खोज करवाने लगे। उनके सैनिकों ने अशोक वाटिका का चप्पा-चप्पा छान मारा, लेकिन हार हाथ में नहीं आया।

महाराज रेणिक ने आखिरकार अभयकुमार को बुलाया और कहा- अभय! तुम्हारी छोटी माता का हार खो गया है। वह अन्न-पानी त्यागकर बैठी है, इसलिए तुम शीघ्र ही हार की खोज करवाओ। अभयकुमार ने महाराज को आश्चस्त करते हुए कहा- पिताश्री आप निश्चित रहिए मैं अपनी माँ को भी समझा दूंगा और सात दिन में हार की खोज भी करवा लूंगा।

अभयकुमार के कहते ही महाराज अत्यन्त निश्चिन्त हो गये। अभयकुमार ने उसी समय पूरे राजगृह नगर में उद्घोषणा करवा दी कि “जिसके पास भी महारानी चलना का हार हो वह लाकर मुझे सौंप दे। मैं उसे कोई दण्ड नहीं दूंगा, यह अभयकुमार का वचन है। किन्तु यदि किसी के पास हार होने पर भी वह हार मुझे नहीं सौंपेगा तो उसे मृत्युदण्ड दिया जायेगा, क्योंकि हार का पता तो लगेगा ही ?”

अभयकुमार की घोषणा स्वर्णकार के पुत्रों ने सुनी तो उनका शरीर स्वेद बिन्दुओं¹ से व्याप्त हो गया। वे थर-थर काँपने लगे, क्योंकि जानते थे कि अभयकुमार तो पाताल में भी कोई हार ले जाये तो वहाँ से भी निकालने में सक्षम है फिर हमारे पास से तो ले जाने में पूर्णतया सक्षम है। अतः अब क्या करना चाहिए ? यदि अभयकुमार को ले जाकर सौंपे तो इतना साहस हमारे पास नहीं है, लेकिन अब इस हार को पास में रखना खतरे से खाली नहीं है। इसलिए अब क्या करना है ? वे ऐसा चिन्तन कर ही रहे थे कि इतने में वह बन्दर उछल-कूद करता हुआ वहाँ आ गया। स्वर्णकार के पुत्रों ने वह हार उसे देकर चैन की साँस ली।

बन्दर उस हार को लेकर एक वाटिका में चला गया। उसको मन में भय लग रहा था कि

1. स्वेद बिन्दुओं- पसीने की बूंदों

हार कोई देख न ले। यदि कोई देख लेगा तो उसे मृत्यु के मुख में जाना पड़ेगा। इसी भय से वह हार लेकर एक वृक्ष के कोटर में छिप गया। वह चिन्तन करने लगा कि मुझे अब हार का क्या करना है ?

बन्दर चिन्तन कर रहा था तथा जिस वाटिका में बन्दर था, उसी वाटिका में एक यक्षायतन¹ था। उस यक्षायतन में आचार्य सुहस्ती पाँच साधुओं सहित विराजमान थे। पक्खी का दिन था, सभी ने प्रतिक्रमण किया। तत्पश्चात् आचार्यश्री ने अपने शिष्यों से कहा कि आज मैं सम्पूर्ण अहोरात्रि² कायोत्सर्ग करूँगा। शिष्यों ने अपना परमसौभाग्य माना और आचार्यश्री एक वृक्ष के नीचे कायोत्सर्ग³ करने लगे।

जिस वृक्ष की छाँव में आचार्यश्री कायोत्सर्ग कर रहे थे, उसी वृक्ष के कोटर में वह बन्दर हार लेकर बैठा था। उस बन्दर ने जैसे ही आचार्यश्री को निश्चल शांत-प्रशांत मुद्रा में कायोत्सर्ग⁴ में स्थित देखा तो उसने श्रेष्ठ अवसर जानकर वह हार आचार्यश्री के गले में डाल दिया और स्वयं वहाँ से भाग खड़ा हुआ।

पाक्षिक दिवस होने से अभयकुमार भी उस दिन पौषध लेकर वहीं धर्म जागरणा कर रहा था। रात्रि के प्रथम प्रहर में शिवमुनि, आचार्य सुहस्ती की सेवा में गये। तब उनकी दृष्टि आचार्य भगवन् के गले में पड़े हार पर गयी। वे इसे देखकर भयभीत हुए कि कहीं जिनशासन की हीलना न हो जाये। सतत रूप से शिवमुनि आचार्य भगवन् की देखभाल में रहे और अन्तिम प्रहर के अन्त में लौटकर यक्षायतन में प्रवेश करने लगे तो उनके मुँह से निस्सही के स्थान पर भय-भय शब्द निकला। ये शब्द जब अभयकुमार ने सुने तो उसने पूछा- भंते! मुनि को क्या भय है ? आप उचित समझें तो फरमाने की कृपा करावें। तब शिवमुनि ने प्रकारान्तर से बतलाया, जिससे अभयकुमार ने जान लिया कि आचार्यश्री को उपसर्ग आया है। वह वहाँ गया और आचार्य भगवन् के गले से हार निकाल लिया और ले जाकर महाराज श्रेणिक को सौंप दिया।⁵

नरक-विमुक्ति

भगवान के श्रीमुख से यह श्रवण कर श्रेणिक का रोम-रोम पुलकित⁴ हो गया। लेकिन मन में एक ही कांटा बारबार चुभन पैदा कर रहा था, कि मुझे नरक में जाना पड़ेगा।⁵ इसलिए श्रेणिक राजा पुनः प्रभु से पूछते हैं- भगवन्! क्या ऐसा कोई उपाय है, जिससे मेरा नरक टल सकता है? मैं नरक जाने से रुक सकता हूँ?

भगवान् यद्यपि जानते थे कि यह असम्भव है, क्योंकि श्रेणिक महाराजा ने नरक योग्य निकाचित कर्मों का बन्ध किया है, तथापि उसके मन में सान्त्वना आ जाये इसलिए भगवान फरमाते

1. क्षायतन- यक्ष-मंदिर 2. अहोरात्रि- दिन-रात 3. कायोत्सर्ग- शारीरिक क्रिया का त्याग करना
टिप्पणी - नरक विमुक्ति के उपायों का वर्णन आगमों में कहीं दृष्टिगोचर नहीं होता है। त्रिषष्टि शलाका पुरुष में वो उपायों का उल्लेख प्राप्त होता है। अत्यंतरोचक होने से त्रिषष्टि शलाका पुरुष एवं अन्य ग्रंथों के आधार से यहाँ उसका वर्णन किया जा रहा है।

हैं- श्रेणिक या तो कपिला ब्राह्मणी दान देवे या कालसौकरिक कसाई जीव-वध का त्याग कर दे तो तुम्हारी नरक टल सकती है।^१

श्रेणिक राजा ने चिन्तन किया कि इतना सा कार्य तो मैं कर ही सकता हूँ। इसी उत्साह से वह अपने सपनों को संजोये प्रभु को वन्दन नमस्कार करके राजमहल की ओर लौटने लगे।

हिंसा का शस्त्र

महल पहुँचकर उन्होंने उस समय अपनी कपिला दासी को बुलाया और कहा- तुम्हें साधुओं को दान देना है। मैं तुम्हें इतना धन दूंगा कि तुम निहाल हो जाओगी कपिला दासी ने कहा- आप चाहे मुझे पूरी स्वर्ण-मंडित करो या मार डालो लेकिन मैं मुण्डितों को दान देने का अकृत्य नहीं करूँगी। जब राजा ने कपिला के साथ जबरदस्ती की तो वह दान देते हुए ऐसा बोली- मैं दान नहीं दे रही हूँ राजा का चाटू! दान दे रहा है। यह कार्य निष्फल होने पर राजा श्रेणिक ने कालसौकरिक कसाई को बुलाया और कहा- कालसौकरिक! तुम कसाई बनकर निर्ममता से पशुवध कर रहे हो, यदि उस अकार्य का परित्याग कर दो तो मैं तुम्हें बहुत द्रव्य दूंगा। तब कालसौकरिक ने कहा- इस कसाई के कार्य में क्या दोष है ? मेरे इस धन्धे से अनेक मनुष्य जीवित रहते हैं। मैं इस धन्धे को कभी नहीं छोड़ सकता हूँ। तब राजा श्रेणिक ने कहा- चलो इसे अभी अन्धकूप में डाल दो, फिर देखता हूँ कि यह कसाई का व्यापार कैसे करेगा। राजा के आदेश से कालसौकरिक को अन्धकूप में डाल दिया गया। एक दिन और एक रात उसे अन्धकूप में रहने का आदेश दिया। तत्पश्चात् राजा श्रेणिक भगवान के पास गया और भगवान से जाकर बोला- भगवन्! मैंने एक दिन और एक रात कालसौकरिक को कसाई का धन्धा छुड़वा दिया। तब भगवान ने फरमाया- राजन्! तुमने जिस अन्धकूप में कालसौकरिक को डाला उसी अन्धकूप^२ की मिट्टी के उसने पाँच सौ पाड़े बनाये और अपने हाथ से मार दिये। भगवान के श्रीमुख से यह श्रवण कर श्रेणिक राजा तत्काल वहाँ गया तो उसने देखा- अहो! वास्तव में इसने मिट्टी के पाड़े बनाकर मार दिये हैं।^३

जब महाराज श्रेणिक ने देखा कि कालसौकरिक अन्धकूप में भी महिष-वध^४ से उपरत^५ नहीं बना तब उन्होंने उसे अन्धकूप से बाहर निकाल दिया। बाहर निकलने के पश्चात् वह नित्यप्रति महिष-वध करता ही रहा। उसके एक पुत्र था सुलस। वह सुलस कभी भी पंचेन्द्रिय-वध नहीं करता था। कालसौकरिक चाहता था कि मेरे मरने के पश्चात् मेरा पुत्र सुलस भी यही कार्य करे ताकि मेरी कुल परम्परा का निर्वाह हो सके। अभयकुमार सुलस की अहिंसक प्रवृत्ति को जानता था। इसलिए अभयकुमार ने सोचा कि सुलस को हिंसा से दूर बनाये रखना चाहिए। इसके लिए मुझे प्रयास करना चाहिए। तब इसी तथ्य को ध्यान में रखकर अभयकुमार ने सुलस से अपनी मैत्री स्थापित कर ली और समय-समय पर अभयकुमार स्वयं सुलस को भगवान महावीर के पास ले जाते। भगवान के

1. चाटू- लकड़ी का चम्मच 2. अन्धकूप- अंधेरा कुँआ 3 . महिषवध- भैंसे को मारना 4. उपरत-रहित

श्रीमुख से अहिंसा की महिमा और हिंसा से होने वाले भीषण कष्टों की बात श्रवण कर सुलस की अन्तर्आत्मा जागृत बनती चली गयी और एक दिन उसने निश्चय कर लिया कि उसे अपने सम्पूर्ण जीवनकाल में पंचेन्द्रिय-वध रूप हिंसा नहीं करनी है। संकल्पजा-हिंसा¹ का उसने अपने मन में त्याग कर लिया। अभयकुमार अपने प्रयास में सर्वथा सफल बना।

समय अपनी गति से गतिमान था। सुलस के सम्पूर्ण जीवन में अभयकुमार की संगत का रंग चढ़ चुका था। तभी एक बार कालसौकरिक का शरीर व्याधि-ग्रस्त² हो गया। अनेक कुशल वैद्यों से उसका ईलाज करवाया गया, लेकिन वे वैद्य उसको निरोग नहीं कर पाये। अन्ततः वैद्यों ने घोषणा कर दी कि इसका अन्तिम समय नजदीक है। कालसौकरिक कसाई पीड़ा से तड़फने लगा उसके शरीर में दाह-ज्वर पैदा हो गया। सुलस अन्तरमन से अपने पिता की सेवा-शुश्रूषा करने लगा। पिता की पीड़ा शांति के लिए वह हर सम्भव उपाय करने लगा।

उसने अपने पिता को सुकोमल शय्या पर सुलाया, उनके शरीर पर चन्दन का लेप किया। सारे कमरे को सुगन्धित पदार्थों से सुवासित³ किया। वह अपने पिता को शीतल मधुर जल पिलाता, उनको मधुर संगीत सुनाता। लेकिन इन सबसे कालसौकरिक की पीड़ा घटने के बजाय बढ़ने लगी और वह पीड़ा से कराहने⁴ लगा। अपने पिता की पीड़ा को देखकर सुलस का मन द्रवित होने लगा और इस पीड़ा को मिटाने के लिए वह अभयकुमार के पास गया और बोला- महामात्य⁵! मेरे पिता को दाहज्वर हो गया है। उसको शांत करने के लिए मैं जो भी उपाय करता हूँ, उनकी वेदना बढ़ती ही जाती है। तुम कोई ऐसा उपाय बतलाओ ताकि उनको शांति मिल सके।

अभयकुमार ने कहा- सुलस! तुम्हारे पिता जीवनभर हिंसा करते रहे इसके परिणामस्वरूप उनका नरक जाना निश्चित है। फिर भी तुम जो उपाय कर रहे हो उससे विपरीत उपाय करो ताकि उनको क्षणिक शांति मिल जायेगी। तुम उनके शरीर पर चन्दन के बजाय दुर्गन्धित पदार्थों का लेप करो, कांटों की शय्या पर सुलाओ और उष्ण जल पिलाओ ताकि उनको शांति मिल सकेगी।

सुलस घर गया उसने अपने पिता के शरीर पर दुर्गन्धित पदार्थों का लेप किया, अपने पिता को अस्थिपंजर दिखलाये, गधे और ऊँट के कर्कश स्वर सुनाये ओर कांटों की शय्या पर सुलाया तो कालसौकरिक को शांति मिली। उसका चीखना, चिल्लाना बंद हो गया। कुछ समय के पश्चात् कालसौकरिक अपना शरीर त्याग कर अप्रतिष्ठान नामक सातवीं नरक में नैरयिक के रूप में उत्पन्न हुआ।

अहिंसा की यात्रा

इधर सुलस ने अपने पिता का अन्तिम संस्कार किया। कुछ दिन शोक रखने के पश्चात् शोक समाप्ति पर सारी बस्ती के कसाई एकत्रित हुए और सुलस को समझाने लगे- सुलस अब

1. संकल्पजा- हिंसा - जीव मारने के संकल्प से की जाने वाली हिंसा
2. व्याधिग्रस्त- रोग-युक्त
3. सुवासित- सुगन्धित
4. कराहने- चीखने
5. महामात्य- महामंत्री

तुम्हारे पिता नहीं रहे हैं। तुम्हें अपनी पितृ-परम्परा का निर्वाह करना है। इसलिए तुम अब भैंसा मारना प्रारम्भ करो। आज ही एक भैंसा मारकर इस कार्य का शुभारम्भ कर डालो।

सुलस कसाईयों के मध्य रहे हुए एक वृद्ध कसाई को सम्बोधन करके बोलता है-

दादाजी! मैं अपने स्वार्थ के लिए किसी भी जीव की हत्या नहीं करूँगा।

तब वृद्ध बोला- तुम्हें अपने कुल परम्परा का कार्य करना ही होगा।

सुलस- ऐसी कुल परम्परा क्या काम ही जिससे हम दूसरों का सम्पूर्ण सुख छीनकर, जीवन ही नष्ट कर डालें।

सारे कसाई सुलस के सामने बंधे भैंसे को उद्देश्य करके कहते हैं- सुलस आज तुम्हें हमारा कहना मानना ही पड़ेगा, इस भैंसे का वध करना ही होगा।

सुलस- मैं इस भैंसे का वध क्यों करूँगा ? इसने मेरा क्या बिगाड़ा है? यह निरीह-मूक प्राणी मात्र घास खाकर अपना जीवन निर्वाह कर रहा है। मैं इसके सुख को क्यों छीनूँगा ?

कसाईगण- अरे! क्या ज्यादा ही बोलना आ गया है ? जैसा तुम्हारे बाप-दादाओं ने किया है, वैसे तुम्हें करना ही पड़ेगा, क्योंकि कुल परम्परा को छोड़ना बहुत बड़ा अधर्म है।

सुलस- जो कुल परम्परा क्रूरता से भरी हो, जिससे दूसरों को दुःख पहुँचता हो ऐसी कुल परम्परा का निर्वाह करने की बजाय उसका त्याग कर देना उचित है। इसी हिंसा के कारण मेरे पिता ने मरण के समय कितना दुःख भोगा और वे मरकर नरक में गये। ऐसा जघन्य! कृत्य मैं क्यों करूँगा, जिससे मेरा सम्पूर्ण भविष्य दुःखमय बन जाये ?

वृद्ध कसाई- अरे! इन सब बातों से कुछ होना-जाना नहीं, ले यह खड्ग और मार भैंसे को... देर मत कर।

सुलस- चाहे कुछ भी हो, मैं ऐसा पाप नहीं करूँगा।

सुलस ऐसा बोल रहा था, उसी समय अभयकुमार भी वहाँ आ गया। वह मूकदर्शक की तरह सब देखने लगा।

तभी वृद्ध कसाई बोला- बेटा! तू बहुत अच्छा है। तू पाप के बारे में चिन्तन मत कर। हम तेरे पाप से होने वाली पीड़ा में भागीदार बन जायेंगे। तू बस आज इस भैंसे को मार दे।

तब सुलस ने खड्ग उठाया¹ और सब कसाई खुशी से झूम उठे, लेकिन दूसरे क्षण सब अवाक् रह गये जब सुलस ने तलवार भैंसे पर चलाने की बजाय अपनी जंघा पर चला दी। उसकी जंघा से रक्त बहने लगा और वह पीड़ा से कराहने लगा और बोला-

अरे! आप सभी देख क्या रहे हो ? मेरी पीड़ा को बांट क्यों नहीं लेते ?

तब कसाईयों ने कहा- अरे! जानबूझकर तूने अपने पर तलवार चलायी तो हम क्या कर सकते हैं ?

1. जघन्य- खराब/नीच/अधम 2. खड्ग- तलवार

सुलस- अरे! अभी तुम्हीं ने कहा था कि हम तुम्हारी पीड़ा को बांट लेंगे अब क्या हुआ ?
अब सब मौन थे, तब सुलस ने कहा- अरे! कोई किसी की पीड़ा बांट नहीं सकता। अपने-
अपने कर्मों का परिणाम सबको भोगना पड़ता है। इसलिए मैं तुम्हारे कहने से हिंसा नहीं करूँगा...
नहीं करूँगा।

अवसर देखकर अभयकुमार सामने आया- उसने स्वयं अपने हाथों से सुलस के घाव पर
पट्टी बांधी और कहा - मित्र! वास्तव में तुम धन्य हो आज। तुमने अपने कुल के गौरव में दुगुनी
वृद्धि की है। अब तुम्हें अधिक-बस्ती में नहीं रहना है और चलो मेरे साथ।

सब कसाई अब मौन थे, क्योंकि अभयकुमार के सामने कौन बोल सकता था ?

सुलस- अभयकुमार के साथ चला गया और उसने भगवान महावीर से बारह व्रत ग्रहण कर
लिये। वह धर्म-ध्यान करते हुए अपने जीवन को त्याग-मार्ग पर बढ़ाने लगा।^६

खरीद तू सामाजिक

उत्तरवर्ती ग्रन्थों में ऐसा उल्लेख भी मिलता है कि भगवान ने श्रेणिक राजा को नरक-गति
नहीं जाने के दो उपाय और बतलाये। भगवान ने श्रेणिक से इस प्रकार कहा- “श्रेणिक! यदि तुम्हारी
दादी मुनियों के दर्शन करे या तुम... पूर्णिया श्रावक की सामायिक खरीद लो तो तुम नरक में जाने
से बच सकते हो। श्रेणिक राजा को ये उपाय सरल लगे। वे अपने दादी के पास गये और बोले-
दादी! चलो मैं तुम्हें भगवान के पास पालकी में ले जाता हूँ। तब दादी ने कहा- “मैं कभी भी
भगवान महावीर व उनके साधुओं के दर्शन नहीं करूँगी। राजा श्रेणिक ने उनकी इच्छा उपरान्त
पालकी में बिठाया और पालकी-धारकों से कहा कि चलो इनको भगवान महावीर के समवसरण में
ले चलो। कौटुम्बिकजन पालकी उठाकर चलने लगे तो दादी ने रास्ते में ही शलाकाएँ डालकर
अपनी आँखें फोड़ डाली। इस प्रकार श्रेणिक राजा की यह योजना भी निरस्त हो गयी और उनकी
मनोकामना पूर्ण न हो पायी।

राजा श्रेणिक के मन में अनेक प्रकार का ऊहापोह मचा हुआ था। वह अपनी नरक को
टालने के लिए सर्वस्व न्यौछावर करने को तैयार था। अब वह पूर्णिया श्रावक की सामायिक खरीदने
को तत्पर बना। मन में चिन्तन किया कि चाहे जितना मूल्य लगे, मुझे पूर्णिया की सामायिक
खरीदनी ही है। इन्हीं विचारों में निमग्न बने राजा श्रेणिक पूर्णिया श्रावक के घर पहुँचे।

पूर्णिया ने जैसे ही श्रेणिक को घर आया देखा, हर्षविभोर होकर स्वागत किया। यथोचित्
स्थान और आसन देकर नृपति का सत्कार-सम्मान किया। तत्पश्चात् राजा श्रेणिक ने पूर्णिया से
कहा- आज... आज... मैं तुमसे कुछ मांगने आया हूँ।

पूर्णिया- राजन्! आप... मुझसे मांगने ? मेरे पास ऐसा क्या है जिसे मैं आपको देकर
कृतार्थ बनूँ ?

श्रेणिक- पूर्णिया! मैं कोई भौतिक पदार्थ मांगने नहीं आया हूँ।

पूर्णिया- तब क्या देकर मैं अनुगृहीत बन सकता हूँ।

श्रेणिक- हे श्रावक-शिरोमणि! मुझे मात्र तुम्हारी एक सामायिक खरीदनी है ?

पूर्णिया- राजन्! आपको सामायिक... खरीदनी है ? यह बात प्रथम बार श्रवण कर रहा हूँ कि सामायिक खरीदी जा सकती है।

श्रेणिक- हाँ पूर्णिया मुझे तुम्हारी सामायिक खरीदनी है क्योंकि भगवान महावीर ने फरमाया है कि तुम्हारी एक सामायिक खरीदने से मेरी नरक यात्रा परिसमाप्त हो जायेगी। मैं नारकीय यातना से मुक्त बन जाऊँगा।

पूर्णिया- राजन्! मैं मूल्य नहीं जानता ?

श्रेणिक- फिर कौन बतायेगा कि तुम्हारी सामायिक का मूल्य क्या है ?

पूर्णिया- महाराज! जिन्होंने आपको सामायिक खरीदने को कहा है, वे ही सर्वज्ञ भगवान महावीर सामायिक का मूल्य बता सकते हैं।

श्रेणिक- तब क्या भगवान के पास जाऊँ ?

पूर्णिया- नरेश! मूल्य बताने में तो वे ही सक्षम हैं।

तब राजा श्रेणिक वहाँ से भगवान महावीर के पास जाते हैं और वन्दन नमस्कार करके पृच्छा करते हैं- भन्ते! मैं पूर्णिया के यहाँ सामायिक खरीदने गया था। वह सामायिक का मूल्य नहीं जानता, इसलिए भगवन्! आपसे पूछना चाहता हूँ कि पूर्णिया की एक सामायिक का मूल्य क्या है ?

भगवान- तुम्हारे पास कितना धन है देने को ?

श्रेणिक- भगवन्! सोने, चांदी, हीरे, पत्थर, माणक, मौक्तिक आदि के बावन बड़े-बड़े पहाड़ खड़े हो जायें, इतना धन मेरे पास है। (ऐसा श्रुति परम्परा से कहा जाता है।)

तब भगवान ने फरमाया- राजन्! तुम सामायिक की तुलना भौतिक ऋद्धि और सम्पत्ति से करना चाहते हो ? यदि तुम सुमेरू पर्वत जैसे सोने, चांदी, हीरे, पत्थर आदि के विशालकाय पर्वत खड़े कर दो तो भी सामायिक की दलाली ही नहीं हो सकती ? तब सामायिक खरीदने की तो बात ही कहाँ हो सकती है ?

राजा श्रेणिक- तब क्या सामायिक खरीदना असम्भव है, भगवन् ?

भगवान- सामायिक तो अध्यात्म भाव की साधना है। वह समता की श्रेष्ठ भूमिका है, जहाँ राग-द्वेष आदि विषमताएँ दूर होकर वीतराग भावों का जागरण होता है। भौतिक मूल्य से उसका अंकन असम्भव है।

इस प्रकार नरक टालने का चतुर्थ उपाय भी सम्भव न हुआ। किन्हीं-किन्हीं ग्रन्थों में ऐसा उल्लेख भी मिलता है कि भगवान ने राजा श्रेणिक को यह भी उपाय बतलाया था कि तुम यदि एक

1. बधिक बस्ती- कसाई बस्ती

नकरवासी तप अपने जीवन में कर लो तो भी तुम्हारा नरक गमन टल सकता है। भगवान के फरमाने पर श्रेणिक ने खूब प्रयास किया, लेकिन वह सफल नहीं हो पाया।*

यद्यपि भगवान महावीर यह जान रहे थे कि निकाचित कर्मों के योग से राजा श्रेणिक को अवश्यमेव नरक में जाना पड़ेगा तथापि उसे प्रतिबोध देने के लिए भगवान ने ये उपाय बतलाये थे। जब श्रेणिक इन उपायों को करने में सफल नहीं हुआ तब वह हताश होने लगा। उस समय भगवान ने उसे कहा- राजन्! तुम खिन्न मत बनो। तुम नरक से निकलकर तीर्थकर¹ बनोगे, इसलिए तुम आर्त्तध्यान न करते हुए धर्मध्यान में अपना जीवन व्यतीत करो। प्रभु द्वारा प्रतिबोध देने पर राजा श्रेणिक आश्वस्त हुआ धर्म-ध्यान से अपना समय व्यतीत करने लगा।

ऊध्वारोहण

भगवान महावीर राजगृह से विहार कर ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए पोतानपुर पधारे। वहाँ मनोरम नामक उद्यान था, उसी उद्यान में भगवान विराजकर ज्ञान-दर्शन-चारित्र्य से अपनी आत्मा को भावित करने लगे। पोतानपुर का राजा प्रसन्नचन्द्र था। जब उसने सुना कि स्वयं भगवान महावीर पोतानपुर पधार गये हैं, वह अत्यन्त हर्षित हुआ और परम आह्लाद भाव से भगवान की धर्मदेशना श्रवण करने गया।

भगवान ने फरमाया कि अशाश्वत जीवन का कोई भरोसा नहीं है। जैसे महासागर में उठने वाली चंचल लहरें पलक झपकते ही समाप्त हो जाती हैं, वैसे ही जवन कब समाप्त हो जायेगा इसका कोई ठिकाना नहीं है। मृत्यु के आगमन पर अपने समस्त प्रियजनों का परित्याग कर आत्मा अकेला ही चला जाता है और वहाँ अपने पूर्वोपार्जित कर्म अकेले ही भोगता है। जीवन में कब, किस क्षण क्या घटित हो जाये, यह सब जान पाना कठिन है। इसलिए मृत्यु के आगमन के पूर्व ही अपनी आत्म-शक्तियों को जागृत कर लेना चाहिए, जैसे सांसारिक लोग अंधेरा होने से पूर्व दीपक जला लेते हैं वैसे ही मृत्यु का अन्धकार आने से पूर्व ज्ञान का दीपक प्रज्वलित कर लेना चाहिए। सांसारिक बन्धनों की असारता जानकर उनका परित्याग कर देना चाहिए। भगवान की इस मोहनाशक देशना को श्रवण करके प्रसन्नचन्द्र राजर्षि के मन में वैराग्य का अंकुर लहलहा उठा। वह अपनी वैराग्य भावना को रोक नहीं सका, फलतः नन्हें से राजकुमार पर राज्य का भार डालकर भगवान महावीर के चरणों में दीक्षित हो गया।

तत्पश्चात् भगवान अनुक्रम से विहार करते हुए प्रसन्नचन्द्र राजर्षि एवं अनेक श्रमणवृन्द¹ से परिवृत्त² होकर राजगृह नगर पधारे। राजा श्रेणिक भगवान के आगमन के समाचारों को जानकर हर्षविभोर हो उठा और चतुरंगिणी सेना सजाकर भगवान के दर्शन हेतु राजगृह के मध्य होकर निकला। उसकी सेना में सबसे आगे सुमुख और दुर्मुख नामक दो सैनिक चल रहे थे। दोनों यथानाम तथागुण सम्पन्न थे। सुमुख की सोच सकारात्मक और गुणग्राही थी। जबकि दुर्मुख नकारात्मक

1. श्रवण-वृन्द- साधुओं का समूह 2. परिवृत्त- घिरे हुए

विचारों के प्रदूषण से वातावरण में जहर घोला करता था। दोनों मित्र थे, पर अपने-अपने विचारों में तटस्थ थे। मार्ग में दोनों वार्तालाप करते हुए चल रहे थे। मार्ग में चलते-चलते उन्होंने प्रसन्नचन्द्र मुनि को देखा जो कि एक पैर पर खड़े रहकर ऊर्ध्व बाहें¹ करके आतापना ले रहे थे। आत्मसाधना में तल्लीन बने अपनी भीतरी पतों का अवलोकन कर रहे थे। उन पर उनकी नजरें ऐसे ठहर गयीं मानो जैसे समीर² के अभाव में पानी सरोवर में स्थिर हो जाता है। उनकी शांत, प्रशांत, भव्य मुखमुद्रा को देखकर सुमुख ने कहा- ये मुनि कितने समभाव से शान्तचित्त बनकर आत्मसाधना में लीन बने हैं। ऐसे महान् आत्मत्यागी मुनि के लिए स्वर्ग या अपवर्ग³ जरा भी दुर्लभ नहीं है। तब दुर्मुख ने तुरन्त प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए कहा- अरे... यह... तो जाना-पहिचाना लग रहा है। (गौर से देखकर) अरे... तुम नहीं जानते यह तो पोतानपुर के महाराज प्रसन्नचन्द्र है। अरे... इसने तो बहुत बड़ा अकृत्य किया है ?

सुमुख- अकृत्य ? कौनसा अकृत्य ? कैसा अकृत्य ?

दुर्मुख- अरे! जैसे कोई निर्दयी-क्रूर गाड़ीवान बोझ से लदी गाड़ी में अल्पवयस्क⁴ बछड़े को जोतकर उसके जीवन को खतरे में डाल देता है, वैसे ही इसने अपने नन्हें-से राजकुमार पर सारे राज्य का भार डालकर संन्यास ले लिया है। क्या यही धर्म है ?

सुमुख- कुमार योग्य होगा ?

दुर्मुख- योग्य ? क्या बताऊँ ? इसके मंत्री चम्पा के राजा दधिवाहन के साथ गुप्तगु करके वहाँ सम्मिलित हो गये हैं। वे राजकुमार को राज्य से हटा देंगे। इसने राज्य पर अधर्म किया है। ऐसे अधर्मिष्ठ का मुँह देखना भी अधर्म है। इसकी स्वयं की पत्नियाँ भी कहीं चली गयी है। हाँ! हाँ! इसने कैसा अनर्थ कर दिया।

प्रसन्नचन्द्र राजर्षि भी इस वार्ता को सुन रहे थे। इससे उनका ध्यान भंग हो गया और चिन्तन करने लगे-आह! मेरे मंत्री... मेरे मंत्री कितने अकृतज्ञ हैं। मैंने... उनका आज तक कितना सत्कार किया... कितना सम्मान किया, पर उन्होंने यह क्या अनर्थ किया। उन्होंने मेरे पुत्र के साथ यह घृणित-व्यवहार, यह दगा..., यह धोखा... हाँ! हाँ! क्या कर डाला ? यदि मैं वहाँ होता तो... इसी वक्त उनको कठोर शिक्षा देता। मैं उन्हें दण्डित करता...। इसी प्रकार के संकल्प-विकल्पों के जाल में उलझकर प्रसन्नचन्द्र राजर्षि अपने गृहीत महाव्रतों को विस्मृत कर गये। वे स्वयं को राजा मानते हुए मंत्रियों एवं शत्रुओं के साथ युद्ध करने लगे।

इधर सेना आगे बढ़ रही थी और स्वयं राजा श्रेणिक राजा भी। उन्होंने भी ध्यानस्थ मुनि प्रसन्नचन्द्र को देखा और देखते ही उनकी सौम्य मुखमुद्रा श्रेणिक के हृदय को झकझोरने लगी। वे चिन्तन के पलों में खो गये कि अहा! ये कितने महान् त्यागी-तपस्वी आत्मार्थी सन्त-भगवान हैं, जो आत्मानन्द में लीन बनकर अपनी भीतरी ज्योति को प्राप्त करने में निमग्न⁶ है। अहा! ये

1. ऊर्ध्व बाहें- ऊँची भुजाएँ 2. समीर- हवा 3. अपवर्ग- मोक्ष 4. अल्पवयस्क- छोटी उम्र वाला 5. गृहीत- ग्रहण किये हुए 6. निमग्न- तल्लीन

कर्मरिपुविदारक मुनि भगवन्त! शीघ्र ही अरिहन्त अवस्था को प्राप्त करने वाले हैं, अभी जाकर इनका भविष्य भगवान से पूछता हूँ।

इन्हीं विचारों को अपने मन में संकल्पित करते हुए राजा श्रेणिक भगवान के समीप पहुँचे और प्रभु को वन्दन नमस्कार करके पृच्छा करने लगे - भगवन्! अभी जब मैं आपके दर्शन करने के लिए आ रहा था तब मुझे मार्ग में मुझे एक महान उग्र तपस्वी मुनि भगवन्त के दर्शन हुए। वे सूर्य की ओर अपनी भुजाओं को ऊँची करके फैलाये हुए थे। वे सुमेरू की तरह निष्कम्प¹ बनकर ध्यान में तल्लीन बने थे। उनके मुखमण्डल में समता व शान्ति की आभा अठखेलियाँ कर रही थी। भगवन्! वे महान् तपस्वी किस गति में जायेंगे ?

भगवान्- राजन्! तुमने, जिस महान् तपस्वी के दर्शन किये, यदि वे इस समय काल करेंगे तो सप्तम नरक-पृथ्वी में जायेंगे।

श्रेणिक- भगवन्! इतने महान् तपस्वी जो समता और सहिष्णुता की बेजोड़ मशाल हैं जिनके चेहरे पर तप-तेज की अद्भुत कान्ति झलक रही है। वे मुनि सप्तम नरक में ?

भगवान्- राजन्! वे यदि इस समय कालधर्म को प्राप्त करेंगे तो छठी नरक भूमि में जायेंगे।

श्रेणिक- भगवान आपने अभी पहले सातवीं नरक में जाने की बात कही थी, अभी छठी नरक में। यह क्या ?

भगवान्- राजन्! अभी वे काल करेंगे तो पाँचवीं नरक भूमि में जायेंगे।

श्रेणिक- भगवन्! मैं कुछ समझ ही नहीं पा रहा हूँ कि इसका रहस्य क्या है ?

भगवान्- श्रेणिक! अभी उनके चौथी नरक में जाने योग्य अध्यवसाय चल रहे हैं।

इस प्रकार श्रेणिक पृच्छा करता रहा और भगवान फरमाते रहे यथा - तीसरी, दूसरी, पहली नरक-भूमि में जायेंगे।

श्रेणिक ने कुछ समय विश्रान्ति ली फिर पूछा- भंते! अब वे मुनि इस समय काल करें तो मरकर कहाँ जायेंगे ?

भगवान्- श्रेणिक उनकी इस समय मृत्यु हो तो वे प्रथम देवलोक में ऋद्धिशाली देव बनेंगे। अब वे भाव-विशुद्धि की दृष्टि से निरन्तर आगे बढ़ रहे हैं।

श्रेणिक ने स्वल्प विलम्ब से फिर पूछा - भंते अब कहाँ जायेंगे ?

भगवान्- वह नवग्रैवेयक में देव बनेंगे। थोड़ी देर बाद पुनः श्रेणिक- भगवन्! वह अब कहाँ जायेंगे ?

भगवान्- सवार्थ सिद्ध विमान में।

इतने में देव-दुन्दुभि बजी। देव-देवियाँ प्रसन्नचन्द्र मुनि की जय-जयकार करते हुए पुष्पवृष्टि कर रहे थे। तब श्रेणिक राजा दांतों तले अंगुली दबाने लगे और बोले- भगवन्! यह क्या ?

भगवान्- श्रेणिक! उन मुनि को केवलज्ञान प्राप्त हो गया है। देव-देवियाँ उनका केवलज्ञान महोत्सव मना रहे हैं।

1. निष्कम्प- अडोल/निश्चल

श्रेणिक- भगवन्! इस अबूझ पहेली को मैं समझ नहीं पाया। कुछ समय पूर्व जो सप्तम नरक भूमि में जाने योग्य कर्म कर रहा था, उसको कुछ क्षणों पश्चात् केवलज्ञान हो गया। यह सब जानने के लिए मैं और सम्पूर्ण धर्मसभा में उपस्थित श्रोतागण समुत्सुक बने हैं।

भगवान् फरमाते हैं - श्रेणिक! तुम जिस समय मेरे यहाँ पर आ रहे थे, उस समय प्रसन्नचन्द्र मुनि ध्यानावस्था में लीन थे। परन्तु तुम्हारी सेना में आगे चलने वाले सैनिक सुमुख और दुर्मुख दोनों वार्तालाप करते हुए जा रहे थे। तब सुमुख ने मुनि की प्रशंसा की एवं दुर्मुख ने कहा कि इस मुनि ने अपने जिस नन्हें राजकुमार को राज्य सिंहासन पर बिठाया था, उसको अब राज्य पद से हटाकर राजा दधिवाहन उस पर कब्जा करने वाला है क्योंकि इसके स्वयं के मंत्री दधिवाहन से मिल गये हैं। अतः अब युद्ध होगा तो उस युद्ध में या तो इसका पुत्र मारा जायेगा या मैदान छोड़कर भाग जायेगा। तुम्हारे सैनिक के शब्दों को श्रवण कर मुनि का मन विचलित हो गया। उनके मन में भयंकर संघर्ष छिड़ गया। वे अपने मुनि जीवन को भूल गये और वे उस समय शत्रुओं से भयंकर युद्ध करने लगे। उसके परिणाम क्रूरतम बन गये।^{॥॥॥} इसलिए जिस समय तुमने पूछा, उस समय उनके नरसंहार योग्य निकृष्ट परिणाम होने से मैंने कहा कि यदि वे इस समय काल करेंगे तो सप्तम नरक भूमि में जायेंगे।

वे कल्पित शस्त्रों से संग्राम करता रहे, लेकिन जब शस्त्र समाप्त हो गये तो सिर पर रखे मुकुट से प्रहार करने का विचार किया लेकिन ज्योंही हाथ सिर पर गया तो विचार आया अरे मुकुट कहाँ गया...? मैं तो मुनि हूँ। मैं भटक गया। अरे! मेरा कोई शत्रु नहीं है। मेरे कषाय ही मेरे शत्रु है मुझे वीतराग-भावों में रमण करना है। इस प्रकार भाव-विशुद्धि से वे स्वर्ग योग्य परिणामों में चलने लगे और शनैः-शनैः परिणाम विशुद्धि से केवली अवस्था को प्राप्त कर गये।^{॥॥}

राजा श्रेणिक भगवान् महावीर से यह श्रवण कर चिन्तन करने लगा कि मन के निकृष्ट परिणाम अधोगति में ले जाते हैं, जबकि श्रेष्ठ परिणाम से केवलज्ञान हो जाता है। राजा श्रद्धा से नत-मस्तक हो गया और वन्दन-नमस्कार करके राजमहलों की ओर चला गया।

राजकुमार संयम के राजपथ पर

भगवान् महावीर का विराजना अभी भी राजगृह में था। अनेक भव्यात्माएँ भगवान् के सान्निध्य का लाभ ले रही थी।

राजमहल में चले जाने पर भी राजा श्रेणिक का मन भगवान् महावीर के चरणों में लगा रहता था। वह तो राज्य से लगभग अनासक्त-सा बना हुआ धर्म-ध्यान से ही अपना जीवनयापन करना चाहता था। उसने यह जान लिया था कि मात्र संयम ही सुख का द्वार है। उसी को धारण कर आत्मा परमात्मा बन सकती है। संयम के बिना शाश्वत सुख की उपलब्धि नहीं होती, इसलिए एक दिन उसने राज्यसभा में अपने राज-परिवार, सामन्तों और मंत्रियों के मध्य इस प्रकार की उद्घोषणा की कि जो कोई भी भव्यात्मा भगवान् महावीर के पास दीक्षा ग्रहण करेगा मैं उसे रोकूँगा नहीं। वह सहर्ष

भगवान महावीर के चरणों में संयम ग्रहण करे। उसके परिवार में किसी के पालन-पोषण की व्यवस्था राजा श्रेणिक करेगा।

राजा श्रेणिक की इस उद्घोषणा से राजगृह नगर में राजा की यशकीर्ति रूपी ध्वजा फहराने लगी। अनेक भव्यात्माएँ इस सुपथ को अपनाकर आत्मकल्याण का मार्ग प्रशस्त करने लगीं।

राजगृह नगर में प्रव्रज्या का मानो मेला-सा लग गया और झुण्ड के झुण्ड नागरिक संयम पथ को स्वीकार करने लगे। राजा श्रेणिक की उद्घोषणा से अनेक लोगों के मनोगत अरमान सफलीभूत होने लगे।

इसी समय राजप्रासादों में रहने वाले राजकुमारों के मन में भी राग से विराग की ओर जाने के अध्यवसाय हिलोरें लेने लगे। राजा श्रेणिक की महारानी धारिणी जो मेघकुमार की माता थी। उन्होंने कुछ समय पूर्व स्वप्न में सिंह देखा था, जिसके परिणामस्वरूप एक राजकुमार को जन्म दिया और जिसका नाम जालीकुमार रखा। यौवन की दहलीज पर कदम रखने पर आठ राजकन्याओं के साथ मेघकुमार की तरह ही उसका विवाह सम्पन्न हुआ। माता-पिता ने आठ करोड़ रजत आठ करोड़ सुवर्ण यावत् आठ प्रेक्षणकारिणी तथा विपुल कनक, रत्न, मणि, मोती, शंख मूंगा, रक्तरत्न आदि उत्तम सारभूत द्रव्य दिये, जो सात पीढ़ियों तक दान देने के लिए भोगोपभोग करने के लिए, और बंटवारा करने के लिए पर्याप्त थे।

वह जालीकुमार अपने उत्तम श्रेष्ठ प्रासादों में मृदंगों के मुख से मुखरित मधुर स्वर लहरियों से आनन्दित, उत्तम स्त्रियों द्वारा कृत बत्तिस प्रकार के नाटकों को देखता हुआ गायन हुआ, क्रीड़ा करता हुआ इत्यादि प्रकार से मनोज्ञ शब्दादि विपुल कामभोगों को भोग रहा था।

जब उसने यह श्रवण किया कि राजगृह नगर में धर्म का मेला लगा है, तब वह भी अत्यन्त हर्षित होकर कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाता है और कहता है- हे देवानुप्रियों! तुम शीघ्र ही चार-घंटाओं वाले अश्व-रथ को उपस्थित करो।

कौटुम्बिक-पुरुष अश्व-रथ को जोतकर लाते हैं, तब जालीकुमार स्नानादि करके सर्व-अलंकारों से विभूषित होकर चार घंटों वाले अश्व-रथ पर आरूढ़ हुआ। कोरंट पुष्पों की माला वाले छत्र को धारण किया और सुभटों से घिरा हुआ राजगृह के बीचों बीच निकलकर गुणशील चैत्य में आया। वहाँ उसने श्रमण भगवान महावीर स्वामी के छत्र पर छत्र और पताकाओं पर पताका आदि अतिशयों को देखा एवं विद्याधरों², चारण-मुनियों और जंभुक³ देवों को नीचे उतरते एवं चढ़ते हुए देखा। वह यह देखकर चार घंटा वाले अश्व रथ से नीचे उतरा और पाँच अभिगम धारण करके श्रमण भगवान महावीर के सन्मुख गया।

वहाँ जाकर उसने भगवान महावीर को वन्दन-नमस्कार किया और विनयपूर्वक हाथ जोड़कर भगवान की धर्मदेशना श्रवण करने हेतु न अति निकट, न अति दूर बैठ गया।

1. प्रेक्षणकारिणी- नाटक करने वाली
2. विद्याधर- जो अनेक विधाओं को धारण करते हैं
3. जंभुक- तिरछा लोक वासी देवों की एक जाति

भगवान ने जालीकुमार को एवं विशाल परिषद को धर्मदेशना दी¹⁰⁰⁰ उस वैराग्य-पूर्ण धर्मदेशना को श्रवण कर वह श्रद्धा से अभिभूत होकर भगवान को वन्दन नमस्कार करके इस प्रकार निवेदन करता है - भंते! मैंने निर्ग्रन्थ प्रवचन श्रवण किया। उसे श्रवण करके मैं माता-पिता से पूछकर आपके श्रीचरणों में संयम² अंगीकार करना चाहता हूँ। भगवान ने कहा - तुम्हें जैसा सुख हो, वैसा करो, परन्तु धर्मकार्य में विलम्ब न करो।

जालीकुमार इन्हीं विरक्त-विचारों से संकल्पित होकर अपने घर को गया और मेघकुमार की तरह ही माता-पिता से अनुमति लेकर प्रब्रज्या³ स्वीकार कर ली।

टिप्पणी

प्रब्रज्या के पश्चात् जालीकुमार मुनि ने स्थविर भगवन्तों की सेवा में रहकर ग्यारह अंगों का अधङ्गन किया और स्कन्दक मुनि की तरह गुण-रत्न संवत्सर तपः कर्म स्वीकार किया। शेष वर्णन भी स्कन्दक अणगार की तरह ही है, पर विशेषता इतनी है कि जालीकुमार मुनि संथारा करने के लिए स्थविरों के साथ विपुल-गिरी पर्वत पर गये। इन्होंने सोलह वर्ष पर्यन्त श्रमण पर्याय का पालन किया और आयुष्य के अंत में मरण को प्राप्त करके चन्द्र, सौधर्म, ईशान, यावत् ब्रह्मलोक, लान्तक, महाशुक्र, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण और अच्युत कल्पों को एवं नव ग्रैवेयक को लांघकर विजय नामक अनुत्तर विमान में देव रूप में उत्पन्न हुए।

उस समय स्थविर-भगवन्तों ने जाली अणगार को दिवंगत जानकर उनका परिनिर्वाणनिमित्तक कायोत्सर्ग किया। तत्पश्चात् वे स्थविर-भगवन्त जाली अणगार के पात्र एवं चीवरों को लेकर विपुलगिरी पर्वत से नीचे उतरे और जहाँ भगवान महावीर थे वहाँ पर आये। भगवान को वन्दन-नमस्कार करके इस प्रकार कहा- भगवन्! आपके शिष्य जाली अणगार जो कि भद्र, विनयी, शांत, अल्प क्रोध-मान-माया-लोभवाले, कोमलता और नम्रता के गुणों से युक्त, इन्द्रियजयी थे, वे आपसे आज्ञा लेकर साधु-साध्वियों को खमाकर हमारे साथ विपुलगिरि पर गये थे, संथारा लेकर कालधर्म को प्राप्त हो गये हैं। ये उनके वस्त्र पात्र हैं। इस प्रकार कहकर स्थविरों ने भगवान को उनके वस्त्र-पात्र समर्पित किये।

तब उस समय गौतम स्वामी ने भगवान से पूछा- भंते! आपका अन्तेवासी जाली अणगार कहाँ गया, कहाँ उत्पन्न हुआ है ?

भगवान ने फरमाया- विजय नामक अनुत्तर विमान में देवरूप में उत्पन्न हुआ है।

गौतम स्वामी- भंते! जाली देव की आयु वहाँ कितनी है ?

भगवान- उसकी आयु 32 सागरोपम की है।

गौतम स्वामी- भगवन् उस देवलोक से आयु क्षय, भव-क्षय और स्थिति-क्षय होने पर वह जाली देव कहाँ जायेगा ? कहाँ उत्पन्न होगा ?

भगवान- गौतम! वह वहाँ से च्यवन कर महाविदेह क्षेत्र में सिद्धि प्राप्त करेगा।

जालीकुमार की तरह मयालि कुमार, उपजालि कुमार, पुरुषसेन कुमार, वारिषेण कुमार, दीर्घदन्त कुमार, लष्टदन्त कुमार, वेहल्ल कुमार, वेहायस कुमार ने भी श्रमण भगवान महावीर के चरणों में प्रब्रज्या ग्रहण की। जालीकुमार से लेकर लष्टदन्त तक सारे राजा श्रेणिक और धारिणी के पुत्र हैं। वेहल्ल और वेहायस ये दोनों चेलना के पुत्र हैं। इस प्रकार नौ राजकुमारों ने संयम जीवन को स्वीकार कर लिया।^{११११}

मगधेश श्रेणिक की राजधानी में राजकुमारों की दीक्षा की धूम मच गयी। राज्य में चहुँओर संयम-संयम ही सुनाई पड़ता था। स्वयं मगध का महामंत्री अभयकुमार भी इसी पथ का अनुसरण के लिए तरस रहा था। उसने अपने कार्यभार को शनैः-शनैः अन्य मंत्रियों में बाँटना चालू कर दिया था और स्वयं भार से हल्का होने लगा। अब वह अत्यन्त आवश्यकता होने पर ही सलाह दिया करता था।^{११११} यद्यपि अभयकुमार की दीक्षा भी उन नौ राजकुमारों के साथ हुई तथापि उनके जीवन का कुछ वर्णन देना उपयोगी है, अतः पहले उनकी प्रतिभा जान लेना आवश्यक है।

टिप्पणी

जाली, मयालि, उपजालि, पुरुषसेन, वारिषेण का श्रमण-पर्याय सोलह-सोलह वर्ष का है। दीर्घदन्त, लष्टदन्त और वेहल्लकुमार का श्रमण पर्याय बारह-बारह वर्ष का है। वेहायसकुमार का श्रमण पर्याय पाँच वर्ष है। आदि के पाँच अणुगारों का जन्म अनुक्रम से विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित और सर्वार्थ द्वि विमान में हुआ। दीर्घदन्त-सर्वार्थ सिद्ध विमान में लष्टदन्त-अपराजित विमान में, वेहल्ल-जयन्त विमान में, वेहायस-वैजयन्त विमान में उत्पन्न हुआ।

कर्म बलवान

अभयकुमार ने अपने मंत्री-काल में कई ऐसे महत्वपूर्ण कार्य किये हैं जिनका उल्लेख इतिहास में मिलता है, लेकिन यह उल्लेख नहीं मिलता कि उसने किस संवत् में क्या कार्य किया ? फिर भी इतना स्पष्ट है कि उसने अपने शासनकाल में अनेक महत्वपूर्ण कार्य किये। चाण्डालपुत्र मेलार्थ के साथ मगधदेश श्रेणिक की राजकन्या का विवाह करवाने में अभयकुमार की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। अतएव अभयकुमार की दीक्षा से पूर्व उस घटना का उल्लेख कर देना अप्रासंगिक नहीं होगा। मेलार्थमुनि का जीवन उनके पूर्वभव से बहुत सम्बन्धित है। इसलिए पहले उनके पूर्वभव की चर्चा करना उपयुक्त ही है। वह इस प्रकार है :-

दो वैमानिक देव घनिष्ठ मित्र थे। उनकी यह मित्रता पूर्वभव से चली आ रही थी। पूर्वभव में दोनों मनुष्य थे। एक राजा का पुत्र था और दूसरा पुरोहित का पुत्र था। दोनों ने एक साथ संयम ग्रहण किया था। संयम ग्रहण करने के पश्चात् राजपुत्र ने बहुत ही निष्ठा और आस्था के साथ संयम का पालन किया, लेकिन पुरोहित पुत्र ने संयम को बोझ रूप मानकर अमनस्कता पूर्वक चारित्र का पालन किया था। तदापि दोनों आयुष्यपूर्ण कर वैमानिक देव बने।

एक बार नन्दीश्वर द्वीप में महोत्सव था। इस अवसर पर वे दोनों देव भूमि पर आये। उन्होंने तीर्थकर भगवान से धर्मदेशना श्रवण की और भगवान से पूछा- भगवन्! हम दोनों सुलझबोधि होंगे या दुर्लभबोधि ? तब भगवान ने फरमाया कि राजपुत्र वाला जीव सुलभबोधि होगा और पुरोहित पुत्र वाला जीव दुर्लभबोधि होगा। इस दुर्लभबोधि जीव ने अहंकार के कारण नीच गोत्र का बंध किया है। इसको पूर्वभव में अपने पुरोहित होने का अहंकार था। इस कारण यह जीवनपर्यंत साधुओं से और उनके वेश से घृणा करता रहा। इसका मन साधुचर्या में रमा नहीं। अतएव इसने नीच-गोत्र का बंध कर लिया है।

भगवान की यह भविष्यवाणी श्रवण करके पुरोहित पुत्र वाले देव ने अपने मित्र देव से कहा- मित्र! जब मैं नीच गोत्र वाले कुल में जन्मधारण करूँ, तो तू मुझे प्रतिबोधित करना अन्यथा मैं धर्म से दूर चला जाऊँगा।

मित्र देव ने कहा- मैं तुम्हें प्रतिबोधित करने के लिए हरसंभव प्रयास करता रहूँगा। इस प्रकार दोनों देवों ने अपनी-अपनी बात कर दी। समय बीतता चला गया। दोनों देव पूर्वभव में मित्र होते हुए भी एक ने श्रेष्ठ संयम पालन किया और दूसरे ने नहीं किया। इसके पीछे क्या कारण है ? इसको जानने के लिए दोनों देव अपना पूर्वभव अवधिज्ञान से देखने लगे कि पूर्वभव में क्या कुछ घटनाएँ घटीं। वे अपने पूर्वभवों को इस प्रकार जान-देख रहे हैं-

भरत क्षेत्र में साकेतपुर नामक नगर था। वहाँ चन्द्रावतंसक नामक राजा राज्य करता था। उस राजा के दो महारानियाँ थी - सुदर्शना और प्रियदर्शना। दोनों ही सौंदर्यवती और पतिव्रत-धर्म परायण थीं। सुदर्शना से भी प्रियदर्शना का रूप-लावण्य मन को आकृष्ट करने वाला था। समय आने पर दोनों महारानियों ने दो-दो पुत्ररत्नों को जन्म दिया। ज्येष्ठ¹ महारानी सुदर्शना के दो पुत्रों का नाम था - सागरचन्द्र और मुनिचन्द्र। कनिष्ठ² महारानी के दो पुत्र थे - गुणचन्द्र और बालचन्द्र। इन चारों ही भ्राताओं में सागरचन्द्र बड़ा था। वह राज्योचित क्षत्रिय गुणों से युक्त था। इसलिए महाराज चन्द्रावतंसक ने समय आने पर सागरचन्द्र को युवराज बना दिया। चन्द्रावतंसक का विशाल साम्राज्य होने से उसने मुनिचन्द्र को उज्जयिनी का राज्य दे दिया।

राजा चन्द्रावतंसक निस्पृह नृपति थे, इसलिए वे दोनों भाईयों को राज्य सौंपकर आत्मसाधना में अपना अधिकांश समय व्यतीत करते थे। एक बार महाराजा चन्द्रावतंसक ने पौषधव्रत ग्रहण कर लिया। वे पौषध में एकाकी ही अपने कक्ष में साधना कर रहे थे। उनके कक्ष में एक टिमटिमाता दीपक जल रहा था। उस दीपक को देखकर उनके मन में शुभसंकल्प जागृत हुआ कि जब तक यह दीपक जलेगा, मैं कायोत्सर्ग करूँगा। बस संकल्पबद्ध होकर वे कायोत्सर्ग में लीन हो गये।

दीपक जलता रहा और सम्राट कायोत्सर्ग में लीन रहे। इधर प्रतिदिन के नियमानुसार दासी वहाँ पर आयी। उसने देखा कि दीप बुझने वाला है तो उसने दीपक में तेल भर दिया। दीपक वृद्धावय

1. ज्येष्ठ- बड़ी 2. कनिष्क- छोटी

से यौवन आ गया और नृपति का कायोत्सर्ग भी आगे चलता रहा। थोड़ी-थोड़ी देर में आकर दासी तेल भर दिया करती थी। दीप जलता रहा और महाराज का कायोत्सर्ग भी रात्रिभर चलता रहा। सम्पूर्ण रात्रि में अडोल खड़े रहने से राजा का शरीर अकड़ गया और प्रातः होने पर राजा ने कायोत्सर्ग पाला, चलने लगे कि धड़ाम से धरती पर गिर पड़े और प्राणपंखेरू उड़ गये।

पूरे नगर में कोहराम¹ मच गया। अब सारा कार्यभार सागरचन्द्र पर आ पड़ा। अपने पिता की इस प्रकार मृत्यु देखकर उसके मन में विरक्ति आ गयी और पितृ-दाह संस्कार के पश्चात् उसने अपनी माता और विमाता से दीक्षा की अनुमति मांगी विमाता प्रियदर्शना ने सागरचन्द्र से कहा कि - वत्स! तुम्हें संयम लेने से हम नहीं रोकते लेकिन वर्तमान की परिस्थिति कुछ विचारणीय है। तुम्हारा लघुभ्राता मुनिचन्द्र उज्जयिनी पर राज्य कर रहा है और गुणचन्द्र और बालचन्द्र अभी छोटे हैं। जब ये दोनों भाई राज्य करने में समर्थ हो जायें तो तुम संयम ग्रहण कर लेना।

सागरचन्द्र ने अपनी छोटी माता की बात को शिरोधार्य कर लिया और वह साकेतपुर में न्याय-नीति से राज्य करने लगा। सागरचन्द्र स्वभाव से व्यवहार कुशल एवं कुशल अनुशास्ता था। इस कारण दूर-दूर तक उसकी यश-कीर्ति प्रसरित होने लगी। यह यश-कीर्ति विमाता प्रियदर्शना की ईर्ष्या का कारण बनने लगी। जिसके फलस्वरूप एक दिन उसके मन में इस प्रकार के परिणाम आये कि मुझे सागरचन्द्र को विष देकर यमलोक पहुँचा देना चाहिए। वह नित्य-प्रति उसी अवसर को तलाशने लगी।

संयोगवश उसने एक दिन ऐसा अवसर खोज ही लिया। उसे यह अवसर इस प्रकार मिला कि सागरचन्द्र प्रतिदिन अपने दोनों विमाता पुत्रों-गुणचन्द्र और बालचन्द्र के साथ उद्यान में घूमने जाता था। उद्यान में जाने के पश्चात् महारानी सुदर्शना मातृ-वात्सल्य से अनुप्राणित होकर सागरचन्द्र के लिए मिष्ठान भेज दिया करती थी। तब तक दोनों छोटे भाई तो वहाँ नहीं रहते, वे घूमकर निकल जाते और सागरचन्द्र उस माँ के द्वारा भिजवाये गये ममतामय प्रसाद को ग्रहण कर लेता। एक दिन इसी तरह दासी थाल में एक बड़ा-सा मोदक सागरचन्द्र के लिए लेकर जा रही थी। दासी को जाते हुए प्रियदर्शना रानी ने देख लिया। उसने इशारे से दासी को अपने पास बुलाया। दासी जब महल में पहुँची। तब तक उसने अपने हाथों में विष लगा लिया था। दासी के पहुँचने पर उसने दासी से पूछा- तुम कहाँ जा रही हो ?

दासी- उद्यान में।

प्रियदर्शना- थाल में क्या है ?

दासी- मोदक।

प्रियदर्शना - किस के लिए ?

दासी- सागरचन्द्र के लिए।

1. कुहराम- कोलाहल

प्रियदर्शन- किसने भेजा ?

दासी- बड़ी महारानी ने।

प्रियदर्शना- अच्छा दिखाओ, तो यह मोदक कैसा है ?

दासी- लीजिये, यों कहकर मोदक वाला थाल महारानी के सामने किया।

महारानी ने मोदक अपने हाथ में उठाया। इधर-उधर उलट-पलट किया और थाल में मोदक रख दिया। दासी मोदक को लेकर उद्यान में चली गयी। उसे पता ही नहीं चला कि महारानी ने अपने हाथ पर लगा विष मोदक पर लगा दिया है।

दासी मोदक लेकर उद्यान में पहुँची और मोदक राजा सागरचन्द्र को दे दिया। संयोग से वहाँ सागरचन्द्र के पास दोनों भाई गुणचन्द्र और बालचन्द्र भी थे। सागरचन्द्र ने अत्यन्त प्रेम से इस लड्डू के दो भाग किये और आधा-आधा दोनों भाईयों को बाँट दिया। दोनों भाईयों ने लड्डू खाया और स्वल्प समय में ही विष का प्रभाव हुआ और दोनों की आँखे बाहर निकल आयीं। सागरचन्द्र चिन्ता में पड़ गया यह क्या ? लड्डू में विष कहाँ से आया ? उसने दासी को बुलाया और पूछताछ की तो सब पता चल गया कि विमाता ने द्वेष से उसको मारने के लिए विष मिलाया। उसने तुरन्त अपने पास रही दिव्य-मणि को निकाला और अपने दोनों भाईयों को विषमुक्त कर दिया।

जब दोनों भाई विषमुक्त बने, तब वह अपने दोनों भाईयों के साथ राजभवन आया और विमाता प्रियदर्शना से कहने लगा- आज तुम्हारी द्वेष भावना से तुम्हारे ही औरस पुत्रों की घात हो जाती। तुम मुझे क्यों मारना चाहती हो। मैं तो पहले ही संयम लेने वाला था। तुम्हारे आदेश से रूका। अब ये सम्हालो राज्य, मैं संयम लेने जा रहा हूँ। यो कहकर सागरचन्द्र ने तत्क्षण राज्य का त्याग कर दिया और संयम ग्रहण कर गाँव-गाँव नगर-नगर घूमने लगे।

कुमार्ग से सुमार्ग

सागरचन्द्र मुनि विहार करते-करते एक बार उज्जयिनी पधारे। उज्जयिनी में उनके लघुभ्राता मुनिचन्द्र राज्य करते थे। वहाँ जाने पर उन्हें यह जानकारी मिली कि मुनिचन्द्र के पुत्र और राजपुरोहित-पुत्र में गहन मित्रता है, वे दोनों अत्यन्त दुष्ट स्वभाव वाले हैं तथा साधु सन्तों को बहुत सताते हैं। मुनि सागरचन्द्र ने चिन्तन किया कि इन कुमार्गगामी आत्माओं को सुमार्गगामी बनाना चाहिए। ऐसा चिन्तन कर वे उज्जयिनी में राजभवन के पास गोचरी गये। दोनों मित्र राजपुत्र और पुरोहित पुत्र घूम रहे थे। मुनि को देखते ही वे मदविह्वल हस्ती की तरह मुनि के पास आये और मुनि को एकान्त में ले जाकर बोले -

रोज इधर-उधर घूमते ही रहते हो। चलो आज तुम अपना नाच दिखाओ।

मुनि- तुम बाजा-बजाओ, तो मैं नाचूंगा।

दोनों- ओह! बाजा बजाना हमें नहीं आता।

मुनि- तो मुझे नाचना नहीं आता।

राजपुत्र- तो मल्ल युद्ध करो।

मुनि- ठीक है।

आखिर मल्लयुद्ध प्रारम्भ हुआ और मुनि सागरचन्द्र ने दोनों को ऐसा पछाड़ा कि हड्डियाँ टूट गयी। दोनों वहीं धराशायी हो गये और मुनि वहाँ से चले गये।

थोड़ी देर बाद राजा मुनिचन्द्र इस घटना से अवगत हुए। राजा मुनिचन्द्र, सागरचन्द्र मुनि के पास पहुँचा और पूछा- भंते! आपने यह क्या किया ? राजपुत्र! तो आपका भतीजा था। आप तो जन-जन पर करूणा करते हैं, फिर आपने ऐसा क्यों किया ?

मुनि- राजन्! क्या आप दोनों के स्वभाव को नहीं जानते थे। कि इनके रहते कोई मुनि नगर में नहीं आ सकता था ? मैंने उनको उनकी उद्वण्डता का दण्ड दिया है।

राजा मुनिचन्द्र- भगवन्! वास्तव में मुझे यह सब ज्ञान नहीं था। लेकिन अब आगे भविष्य में ये ऐसा नहीं करेंगे। इसलिए आप इनकी हड्डियों को यथास्थान बैठा दीजिए।

मुनि- उन्हें यहाँ लेकर आओ।

राजा, राजपुत्र एवं पुरोहित पुत्र दोनों को लेकर आता है। तब मुनि सागरचन्द्र ने कहा- तुम दोनों यदि संयम लेओगे तो मैं तुम्हें ठीक करूँगा।

आखिर उस स्थिति में दोनों क्या करते ? उन्होंने मुनि सागरचन्द्र के पास संयम ग्रहण कर लिया। दोनों ठीक हो गये। उनके संयम लेने के पश्चात् मुनि सागरचन्द्र ने वहाँ से विहार कर दिया। प्रारम्भ में तो उनको जबरन लिया हुआ संयम भार-भूत लगा, लेकिन कुछ समय पश्चात् राजा पुत्र का मन संयम में रम गया। वह विशुद्ध भाव से संयम पालने लगा। परन्तु पुरोहित पुत्र का मन संयम में नहीं रमा। वह भारवत् संयम ढोने लगा। समय आने पर दोनों ही काल करके वैमानिक देव बने। राजपुत्र आराधक होने से सुलभबोधि और पुरोहित पुत्र विराधक होने से दुर्लभबोधि बना। परन्तु सुलभबोधि वाले मित्र देव ने दुर्लभबोधि मित्र देव को प्रतिबोधित करने का वचन दे दिया। समय अपनी गति से गतिमान था। पुरोहित पुत्र वाले देव ने पूर्वकाल में नीच गोत्र का बन्धन किया था, जिसके कारण उसने वैमानिक का आयुष्य पूर्ण करके राजगृह में एक चाण्डाल के यहाँ जन्म लिया। राजपुत्र वाला देव स्वर्ग में रहते हुए जान गया कि उसका मित्र चाण्डाल के यहाँ जन्म ले चुका है। उसने अपने मित्र के घटनावृत्त को अवधिज्ञान से इस प्रकार देखा।^{४७}

प्रतिबोध

राजगृह नगर में राजा श्रेणिक एकछत्र साम्राज्य कर रहे थे। उसी समय वहाँ एक मेहर नामक चाण्डाल रहता था। उसकी भार्या का नाम था मेती। मेती सेठ-साहूकारों-घरों में सेवा के लिए जाया करती थी। वह एक सेठानी के घर भी जाती रहती थी, जो कि मृतवत्सा^{४८} थी। जन्म के तुरन्त पश्चात् उसकी सन्तानें मर जाती थी, इससे सेठानी सदैव खिन्न बनी रहती थी। एक बार सेठानी ने अपने

1. मृत्वत्सा- बच्चे जन्मते ही मर जाते हैं, जिस स्त्री के वह

इस मनोगत दुःख को चाण्डालिनी मेती को कह सुनाया। तब मेती ने सेठानी से कहा- आप चिन्ता मत कीजिए। इस बार मेरे जो सन्तान होगी वह मैं आपको दे दूंगी। समय आने पर दोनों ने एक साथ गर्भ धारण किया। गर्भकाल पूर्ण होने पर मेती ने एक पुत्र को जन्म दिया और सेठानी ने एक कन्या को। जन्म के पश्चात् रात्रि के समय दोनों ने सन्तानों का फेरबदल कर डाला। पुत्र सेठानी के यहाँ पहुँच गया और कन्या चाण्डालिनी के यहाँ। यह गुप्त रहस्य मात्र दोनों माताएँ जानती थीं। सेठ को भी इस बात की खबर नहीं थी। अतएव सेठ ने उस लड़के को अपना पुत्र समझकर धूमधाम से उसका जन्मोत्सव मनाया और लड़के का नाम रखा मेलार्थ। मेलार्थ का बहुत ही लाड़-प्यार से सेठ के यहाँ लालन-पालन होने लगा। वह शनैः-शनैः बड़ा होने लगा और सोलह साल पूर्ण कर लिये।

अब सुलभबोधि मित्रदेव ने चिन्तन किया कि मुझे मेलार्थ को प्रतिबोध देना चाहिए। उसने मेलार्थ को स्वप्न में आकर कहा- मित्र! अब गृह-परित्याग¹ कर संयम ग्रहण करो, लेकिन मेलार्थ ने इस स्वप्न पर कोई ध्यान नहीं दिया। समय आने पर सेठ ने अपने पुत्र मेलार्थ का विवाह आठ श्रेष्ठ कन्याओं के साथ पक्का कर दिया। अब मित्रदेव ने सोचा कि यदि मेलार्थ का विवाह हो जायेगा तो प्रतिबोधित करना दुःशक्य होगा, अतएव विवाह पूर्व ही प्रतिबोधित कर देना चाहिए।

ऐसा चिन्तन कर देव ने मेती चाण्डालिनी के शरीर में प्रवेश किया। देव के वश में हुई मेती राजगृह में घूम-घूम कर प्रचार करने लगी कि मेलार्थ मेरा लड़का है। उसका विवाह चाण्डाल कुल में करेंगे, सेठ की कन्याओं से नहीं। जब घर-घर यह सन्देश पहुँचा तो सेठ की कन्याओं से उसकी सगाई टूट गयी और मेती उसे अपने घर पर ले गयी। इस घटनाक्रम से मेलार्थ को बहुत दुःख हुआ। वह चाण्डाल होते हुए भी अपने आपको चाण्डाल कहने में अपमान महसूस करने लगा।

मेलार्थ का मन विखण्डित हो गया और वह एकान्त में बैठा आँसू बहाने लगा। इतने में उसका मित्र देव आया और उसने कहा- पहचानो मुझे - मैं कौन हूँ ? तब मेलार्थ उसे नहीं पहचान पाया, देव ने पूर्वभव का सारा परिचय दिया और प्रतिबोध देने की बात भी याद दिलायी। तब मेलार्थ को सबकुछ याद आ गया और वह बोला- मित्र! मुझे प्रतिबोध ही देना था तो तुम किसी अन्य प्रकार से दे देते, लेकिन मुझे चाण्डाल-पुत्र तो नहीं बनाते। अब तुम मेरी ऐसी प्रतिष्ठा कायम करो कि मैं मगध सम्राट का राज-जमाता² बनूँ। उसी के बाद मैं संयम ग्रहण करूँगा।

देव बोला- ठीक है, मैं तुम्हारी वैसी ही प्रतिष्ठा बनाये देता हूँ।

मेलार्थ प्रसन्न हुआ और देव योजना बनाने लगा। अपनी योजना के अनुसार उस देव ने एक बकरा बनाया और उसे मेहर चाण्डाल के यहाँ बाँध दिया। वह प्रतिदिन स्वर्ण की मिंगणी करता। तब एक दिन मेलार्थ ने अपने पिता मेहर चाण्डाल से कहा कि पिताजी! आप इन मिंगणियों को राजा श्रेणिक को भेंट करो। यदि राजा श्रेणिक प्रसन्न हो जाये तो तुम मेरे लिए उसकी राजकन्या माँग लेना।

1. परित्याग- छोड़ना 2. राज-जमाता- राजा का जंवाई

मेतार्य के पिता ने कहा- ठीक है। दूसरे दिन वह मेहर चाण्डाल सोने की मिंगणियां थाल में भरकर राजा श्रेणिक के पास ले गया और उसने राजा को वे मिंगणियां भेंट कर दी। इस प्रकार वह दूसरे और तीसरे दिन भी स्वर्ण मिंगणियां भेंट करने गया। तीसरे दिन महामंत्री अभयकुमार ने पूछा कि तुम इन मिंगणियों को कहाँ से लाते हो ?

मेहर चाण्डाल बोला- महामंत्री! मेरे यहाँ एक ऐसा बकरा है जो प्रतिदिन सोने की मिंगणियां करता है।

तब अभयकुमार ने कहा- तुम इन मिंगणियों को राजा को क्यों देते हो ?

चाण्डाल- मैं अपने पुत्र का विवाह राजकन्या से करना चाहता हूँ।

श्रेणिक- ये कैसे हो सकता है ?

अभयकुमार- अच्छा! पहले तुम उस बकरे को लाओ। फिर विचार करेंगे।

मेहर चाण्डाल अपने घर गया और उसने बकरा लाकर अभयकुमार को सौंप दिया।

अभयकुमार ने बकरा अपनी देखरेख में रखा। वह बकरा वहाँ पर दुर्गन्धपूर्ण मिंगणियां करने लगा। तब अभयकुमार ने विचार किया कि यह बकरा देवकृत लग रहा है। देव चाहता है कि मेरी बहन का विवाह मेतार्य के साथ होना है, तो उसकी परीक्षा करनी चाहिए।

ऐसा विचार कर अभयकुमार ने दूसरे दिन चाण्डाल को बुलाया और उसे बकरा सौंपते हुए कहा- यदि तुम हमारी शर्त पूरी कर सको तो हम राजकन्या का विवाह मेतार्य से कर देंगे।

चाण्डाल ने पूछा - आपकी क्या शर्तें हैं ?

अभयकुमार- एक रात्रि में राजगृह के चारों ओर सोने की प्राचीर¹ खड़ी करो। वैभारगिरि से राजगृह तक एक सेतु का निर्माण करो। उस सेतु के नीचे गंगा, यमुना और सरस्वती और क्षीरसागर का मिश्रित जल प्रवाहित करो। उसमें तुम्हारे पुत्र मेतार्य को स्नान करवाकर उसका शूद्रत्व दूर करो ताकि वह राजजमाता बन सके। तत्पश्चात् मेतार्य सिंहासन पर बैठकर छत्र-चँवर धारण करे, तब उसे राजजमाता बनायेंगे।

मेहर चाण्डाल ने कहा- ठीक है। ऐसा कहकर वह अपने घर गया और सारी शर्तें मेतार्य को कह सुनायीं। मेतार्य ने तब अपने मित्रदेव का स्मरण किया। वह मित्रदेव उपस्थित हुआ। मेतार्य ने उसे शर्तें पूरी करने की बात कही। मित्रदेव ने एक ही रात्रि में सारी शर्तें पूर्ण कर दीं। चारों प्रकार के जल से मेतार्य को स्नान करवाया गया और छत्र-चँवर धारण करके सिंहासन पर आसीन कर दिया गया। राजगृह की जनता स्वर्ण प्राचीर और सेतु को दृष्टिगत कर दांतों तले अंगुली दबाने लगी।

सभी शर्तें पूर्ण होने पर महाराज श्रेणिक ने अपनी राजकन्या का विवाह मेतार्य के संग धूमधाम से कर दिया। मेतार्य देव-दुर्लभ सामग्री का उपभोग करता हुआ अपने भव्यप्रासादों में इन्द्रिय सुख का वरण करने लगा।

1. प्राचीर- दीवार

समय व्यतीत होता चला गया। कुछ समय पश्चात् मित्रदेव आया और मेतार्य से कहने लगा- मेतार्य तुम्हारी सारी इच्छा मैंने पूर्ण कर दी है, अतः अब संयम ग्रहण करो।

तब मेतार्य ने कहा- अभी तो विवाह को कुछ ही समय व्यतीत हुआ है। कम से कम बारह वर्ष तो व्यतीत होने दो, उसके पश्चात् संयम ग्रहण करूंगा। देव मेतार्य की बात मानकर चला गया।

सुख से संपृक्त बारह वर्ष तो मानो बारह मिनट जैसे व्यतीत हो गये। मित्र देव आया और उसने मेतार्य को उसकी प्रतिज्ञा याद दिलायी तब मेतार्य की पत्नी ने कहा- अब बारह वर्ष का समय मेरे कहने से दीजिए। मित्रदेव ने इस बात को भी स्वीकार कर लिया। इस प्रकार चौबीस वर्ष व्यतीत हुए। तब मेतार्य की स्वयं की अन्तरआत्मा जागृत हो गयी और उसने भगवान महावीर के पास संयम ग्रहण कर लिया।

मौन से मुक्ति

विशुद्ध भावों से चरित्र-पर्याय का पालन करते हुए- नौ पूर्वों का अङ्गन किया और एकल-विहार प्रतिमा अंगीकार कर ली। वे ग्रामानुग्राम विचरण करने लगे। विचरण करते-करते एक बार राजगृह नगर में पधारे। उनके मास-खमण की तपश्चर्या चल रही थी। पारणे के दिन मेतार्य मुनि एक स्वर्णकार के यहाँ भिक्षा लेने पधारे। वह स्वर्णकार अपने कार्य में अत्यधिक लीन बना हुआ था, क्योंकि वह मगध सम्राट श्रेणिक के आदेश से स्वर्णमय जौ बना रहा था। लेकिन जैसे ही मुनि को घर पर आया देखा तो उस स्वर्णकार ने अपना कार्य छोड़ दिया और मुनि को भिक्षा देने के लिए रसोई घर में आया।

इधर उस स्वर्णकार के घर में एक पीपल का पेड़ था। उस पर क्रौंच पक्षी बैठा था। सुनार की अनुपस्थिति में वह क्रौंच-पक्षी स्वर्ण जौ को चुगने लगा और चुगने के पश्चात् वृक्ष पर जा बैठा। इधर सुनार भिक्षा बहराने के लिए लाया तो वह अवाक् रह गया कि स्वर्ण जौ वहाँ से गायब थे। वह मुनि को भिक्षा देना तो भूल गया और सोचने लगा कि अभी तो यहाँ मुनि के अतिरिक्त कोई नहीं आया। इसी ने मेरे जौ चुराये हैं। वह मुनि से पूछने लगा- मेरे स्वर्णमय जौ थे, वे कहाँ गये ? तो मुनि ने सोचा कि यदि पक्षी का नाम बताऊँगा तो स्वर्णकार उसे मार देगा अतः मुझे मौन रहना श्रेयस्कर है। ऐसा चिन्तन कर मुनि मौन रहे। सुनार बार-बार पूछता रहा लेकिन मुनि तो मौन भाव में समालीन रहे। तब सुनार का सन्देह पुष्ट हो गया। उसको मुनि पर अत्यन्त क्रोध आया। उसी क्रोधावेश में वह मुनि को भीतर ले गया और उनके मस्तक पर गीले चमड़े की पट्टी बाँध दी। तत्पश्चात् उन्हें धूप में खड़ा कर दिया। पट्टी सूखती रही और मुनि की पीड़ा बढ़ती रही, लेकिन वे परिपूर्ण क्षमा भाव धारण किये समभावपूर्वक उसे सहन करते रहे। इन्हीं शुद्ध भावों से उन्होंने केवलज्ञान प्राप्त कर लिया। धूप में खड़े रहने से उनकी आँखें वेदना से बाहर निकल आयी और वहीं उसी मरणांतक वेदना को सहन करते हुए सिद्ध-गति का वरण किया।

सुनार को मुनि की मृत्यु को देखकर करुणा नहीं आयी, अपितु शांति का अनुभव हुआ कि यह मुनि वास्तव में इसी योग्य था।

इधर एक लक्कड़हारा लकड़ियों का गट्टर लेकर सुनार के घर आया। उसने थकान के कारण जोर से गट्टर पटका कि उस ध्वनि से क्रींच पक्षी घबराया। उसने वहाँ बीट की, जिसमें सोने के जौ निकले। उन्हें देखते ही सुनार को सारी वस्तुस्थिति समझ में आ गयी। वह आकुल-व्याकुल होकर पश्चात्ताप करने लगा- ओह! मैंने यह क्या कर डाला ? सम्राट के जमाता-मुनि की हत्या। हा!हा! इस लोक में भयंकर दण्ड और परलोक में नरक! हा! हा! मेरा क्या होगा ? अब तो मुझे शीघ्र ही भगवान के चरणों में जाकर प्रब्रज्या स्वीकार कर लेनी चाहिए।

ऐसा सद्चिन्तन कर सुनार भगवान महावीर के पास पहुँचा और दीक्षित होकर सद्गति को प्राप्त कर गया।

बहुमूल्य उपहार

अभयकुमार ने अपने महामंत्री काल में अनेक भव्यात्माओं को संयम मार्ग पर लगाया था। यहाँ तक कि अनार्य देश में रहने वाले आर्द्रकुमार को भी संयम की प्रेरणा अभयकुमार से मिली। आर्द्रकुमार को कैसे प्रेरणा दी उसका वृत्तान्त इस प्रकार है :

समुद्र के हृदय-स्थल पर आर्द्रक नामक देश बसा हुआ था। वहाँ आर्द्रक नामक राजा राज्य करता था। उस आर्द्रक राजा के आर्द्रका नामक महारानी थी। समय आने पर महारानी ने एक राजकुमार का प्रसव किया, जिसका नाम आर्द्रकुमार रखा गया। आर्द्रकुमार का लालन-पालन राजघराने में हुआ। शनैः-शनैः वह युवावस्था को प्राप्त हुआ। आर्द्रकुमार अत्यन्त करुणामय वृत्तिवाला था। उसका मन करुणा के भावों से लबालब भरा रहता था। वह अपने यौवन को सार्थक करना चाहता था।

इधर मगध सम्राट श्रेणिक का आर्द्रक नरेश से पूर्व परम्परा से मैत्री सम्बन्ध चला आ रहा था। अतएव इसी सम्बन्ध को कायम रखते हुए मगध सम्राट श्रेणिक ने बहुमूल्य उपहार देकर अपने मंत्री को आर्द्रक देश प्रेषित किया। मंत्री आर्द्रक देश पहुँचा और उसने नरेश का सम्मान करते हुए अपने स्वामी मगध सम्राट श्रेणिक का सुखद संदेश सुनाया तथा उनके द्वारा प्रदत्त बहुमूल्य उपहार भेंट किये। आर्द्रक नरेश ने प्रसन्नतापूर्वक उपहार को ग्रहण किया और मगध नरेश की कुशलक्षेम की पृच्छा की। उस समय राजदरबार में आर्द्रकुमार भी उपस्थित था। उसने अपने पिता से पूछा कि हमारा मगध नरेश से सम्बन्ध कब से चला आ रहा है ? तब आर्द्रक नरेश ने कहा- हमारा महाराज श्रेणिक से सम्बन्ध कुल-परम्परा से चला आ रहा है। तब आर्द्रकुमार ने चिन्तन किया कि यदि मगध सम्राट का कोई राजकुमार हो तो मैं भी उनसे मैत्री सम्बन्ध स्थापित करूँ। उसने उसी समय मगध से आये हुए मंत्री से पूछा- क्या मगध सम्राट के कोई ऐसा पुत्र है, जो मेरा मित्र बन सके ?

मंत्री ने कहा- हाँ, हाँ। महामंत्री अभयकुमार आपका मित्र बनने योग्य है। वह औत्पातिकी!

1. औप्रातिकी- बिना देखे, बिना सुने जो बुद्धि उत्पन्न होती है

बुद्धि का निधान है और हम जैसे पाँच सौ मंत्रियों का अधीक्षक है। वह करुणा सागर समस्त कलाओं में अतिदक्ष है।

तब आर्द्रक नरेश ने अपने पुत्र आर्द्रकुमार से कहा- वत्स! तुम्हें अभी से अभयकुमार के साथ मैत्री सम्बन्ध जोड़ लेना चाहिए। तब आर्द्रकुमार ने कहा- ठीक है। जब मगध का मंत्री पुनः राजगृह लौटने लगा तब राजा ने बहुमूल्य उपहार भेंट किये साथ ही आर्द्रकुमार ने भी अभयकुमार के लिए बहुमूल्य मणि-मुक्ताएँ भेंट करते हुए मैत्री का सुखद सन्देश प्रेषित किया। मंत्री ने राजगृह पहुँचकर मगध सम्राट श्रेणिक एवं अभयकुमार को बहुमूल्य भेंट समर्पित करते हुए आर्द्रक नरपति एवं राजकुमार आर्द्र का सुखद सन्देश कह सुनाया।

आर्द्रकुमार के सन्देश को श्रवण करके अभयकुमार ने अपनी विशुद्ध-प्रज्ञा से चिन्तन किया कि आर्द्रकुमार मुझसे सम्बन्ध जोड़ना चाहता है, लगता है वह भव्य जीव है। अब मेरा यह परम कर्तव्य बनता है कि मैं उसे धर्म मार्ग पर लगाऊँ। इसके लिए मुझे कुछ ऐसी भेंट आर्द्रकुमार को भेजनी चाहिए, जिसको देखकर उसके पूर्व संस्कार जागृत बने, उसे जाति-स्मरण ज्ञान पैदा हो और वह संयम ग्रहण करे। ऐसा सद्चिन्तन कर अभयकुमार ने रजोहरण- मुखवस्त्रिकादि उपकरण और अन्य बहुमूल्य आभूषण एक मंजूषा में रखे, उस पर ताला लगाया और वह मंजूषा आर्द्रकुमार के रक्षकों को दे दी जो कि मगध मंत्री के साथ आये थे। मंजूषा देते हुए अभयकुमार ने रक्षकों को यह भी ध्यान दिलाया कि आर्द्रकुमार से कहना कि यह पेटी एकान्त स्थान में ही खोले तथा महाराज श्रेणिक ने आर्द्रक नरेश के लिए बहुमूल्य भेंट देकर उन अंगरक्षकों को विदाई दी।

अंगरक्षक आर्द्र देश पहुँचे। उन्होंने नरेश का उपहार नरेश को तथा अभय द्वारा प्रदत्त उपहार आर्द्रकुमार को दिया और उनका सन्देशा कह सुनाया। आर्द्रकुमार श्रवण कर अतीव प्रसन्न हुआ। निशीथिनी¹ के समय दीप के टिमटिमाते प्रकाश में एकान्त में मंजूषा को खोलकर देखने लगा। उसने धर्मोपकरण देखे, जिसे देखकर वह स्तम्भित रह गया। ये क्या है ? इनका क्या उपयोग है ? इनको कैसे धारण किया जाता है ? ऐसी भी सामग्री कहीं होती है क्या ? क्या कभी मैंने देखी है ? वह मुखवस्त्रिका को बार-बार पलट-पलट कर देखता रहा। सहसा उसे स्मृति आई-अरे! मैंने इसका प्रयोग पूर्व में किया है। इस प्रकार सोचते-सोचते वह गहन चिन्तन पारावर² में निमज्जित³ हो गया और शुभ अध्यवसायों से जातिस्मरण ज्ञान पैदा हो गया और वह अपना पूर्व का तृतीय भव जानने लगा कि ओह! मैं पूर्व के तृतीय भव में आर्य देश के बसन्तपुर में जन्मा सामयिक नामक गृहपति था। युवावय में मेरा दाम्पत्य सम्बन्ध बन्धुमती कन्या के साथ हुआ। हम दोनों सुखपूर्वक अपना जीवन यापन किया करते थे। धन वैभव की घर में किसी प्रकार की न्यूनता न थी। हमारी धार्मिक रूचि भी श्रेष्ठ थी^{xxxxviii}, इसलिए हमने श्रावक योग्य व्रतों को ग्रहण कर लिया था।

एक बार सुस्थित आचार्य बसन्तपुर नगर में पधारे। तब मैं उनका धर्मोपदेश श्रवण करने

1. निशीथिनी- अर्धरात्रि 2. पारावार- समुद्र 3. निमज्जित- डूबा

लगा। उनके मार्मिक उपदेश को श्रवण करके मुझे और मेरी पत्नी को वैराग्य भाव उत्पन्न हुए और हम दोनों ने संयम ग्रहण कर लिया। मैं आचार्य भगवान के साथ ग्रामानुग्राम विहार करने लगा और बन्धुमती प्रवर्तिनीजी के साथ विहार करने लगी। एक बार ऐसा संयोग बना कि विहार करते हुए मैं और बन्धुमती एक ही नगर में पहुँच गए। बन्धुमती को देखकर पूर्व भोगों की संस्मृति¹ से मेरा मन विह्वल हो उठा और उस मोहग्रस्त अवस्था को मैं रोक नहीं पाया। तब मैंने अपने मन की बात अन्य साधुओं के समक्ष रखी। उन साधुओं ने प्रवर्तिनी को यह सब बताया और प्रवर्तिनी ने बन्धुमती साध्वी को बतलाया। तब बन्धुमती को अत्यन्त खेद हुआ कि देखो, अत्यन्त बहुमूल्य शील रत्न को मेरे कारण दूषित कर रहे हैं। बन्धुमती ने तब प्रवर्तिनीजी से कहा- हे स्वामिनी! यदि गीतार्थ साधु भी मर्यादा का उल्लंघन करेंगे तो मेरी क्या गति होगी ? मर्यादा से ही संसार चलता है और संयम-जीवन तो मर्यादा की जीती-जागती मशाल है।² नवबाड़² ब्रह्मचर्य की होने पर भी इस प्रकार की मनोभावना आना, यह साधुता के लिए कलंक-सूचक है। यदि मैं देशान्तर भी चली जाऊँगी तो भी इनका राग-भाव विनष्ट नहीं होगा, इसलिए मुझे अपने प्राणों का त्याग कर देना उचित है, ताकि मेरा और उनका शील खण्डित नहीं होगा। इस प्रकार कहकर बन्धुमती ने अनशन³ करके अपने प्राणों का थूक की तरह परित्याग कर दिया और देवलोक में देवरूप में उत्पन्न हो गयी। जब मुझे बन्धुमती के स्वर्गगमन की वार्ता ज्ञात हुई तो मैंने भी अनशन करके प्राण त्याग दिये और देवलोक में देव बना। वहाँ से च्यवकर में धर्मरहित इस अनार्य देश में पैदा हुआ। अब मेरा कितना सौभाग्य है कि अभयकुमार जैसा महामंत्री मुझे प्रतिबोधित कर रहा है। अब तो शीघ्र ही मुझे अभयकुमार से मिलना चाहिए।

बोधि से प्रत्येक बुद्ध

राजकुमार आर्द्र अतिशीघ्र अभयकुमार से मिलना चाहता था, अतः वह अपने पिता के पास गया और निवेदन किया- पिताश्री! मैं अपने प्रिय मित्र अभयकुमार से मिलना चाहता हूँ। आप मुझे अभयकुमार से मिलने की अनुमति प्रदान कीजिए, क्योंकि अभय को देखे बिना मेरा मन आकुल-व्याकुल हो रहा है।

तब आर्द्रक नरेश ने कहा- नहीं कुमार! मैं तुम्हें राजगृह जाने की अनुमति नहीं दे सकता। हमारा सम्बन्ध मात्र अपने-अपने स्थान पर रहते हुए हैं। हम वहाँ जाते नहीं। तू तो पुत्र! मेरा इकलौता बेटा है। मैं तुझे इतनी दूर कैसे भेज सकता हूँ।

आर्द्रकुमार- पिताश्री जैसा आपका आदेश। यों कहकर आर्द्रकुमार अपना मन मसोस कर रह गया, लेकिन उसने मन में यह ठान लिया था कि मैं कभी न कभी राजगृह जाकर ही रहूँगा। वह इसी मनोगत³ भाव को परिपुष्ट⁴ करने के लिए अतिव्याकुल होकर लोगों से पूछने लगा- मगध कैसा

1. संस्मृति- संस्मरण 2. नवबाड़- साधुओं के ब्रह्मचर्य की नौ बाड़ 3. मनोगत- मन में रहे हुए
4. परिपुष्ट- पूर्ण करने/पुष्ट करने

है ? राजगृह कैसा है ? वहाँ का महामंत्री अभयकुमार कैसा है ? जब राजा ने यह सब श्रवण किया तो उनका मन आशंकित हो गया कि यह कहीं गुप्त रूप से राज्य छोड़कर चला न जाये। एतदर्थ राजा ने आर्द्रकुमार की निगरानी के लिए 500 सामन्तों को लगा दिया।

सामन्तों से रक्षित आर्द्रकुमार ने वहाँ से भाग निकलने की योजना अपने मन में कल्पित कर ली। वह प्रतिदिन अश्वक्रीड़ा के लिए जाता, लेकिन थोड़ी दूर जाकर पुनः लौटकर आ जाता। प्रतिदिन ऐसा करने से सामन्तों को विश्वास जम गया कि यह कहीं जाने वाला नहीं है। अवसर देखकर एक दिन वह पूर्व नियोजित¹ सामुद्रिक जहाज पर चढ़कर भारत पहुँच गया। जैन कथा में ऐसा उल्लेख मिलता है कि वह भारत देश के लक्ष्मीपुर नगर में पहुँच गया। वहाँ वह जातिस्मरण ज्ञान के आधार से संयम ग्रहण करने लगा तभी आकाशवाणी हुई कि आर्द्रकुमार! अभी तक तुम्हारे निकाचित् भोगावली कर्मों का उदय आना बाकी है, अतः तुम अभी संयम स्वीकार मत करो। लेकिन उसने इस आकाशवाणी पर कोई ध्यान नहीं दिया। वह पंचमुष्टि लोच कर प्रत्येक बुद्ध बनकर मुनि जीवन स्वीकार कर लेता है।

बन्धन

अब आर्द्रमुनि अपनी संयम यात्रा का निर्वाह करने के लिए ग्रामानुग्राम विचरण करते हैं। विचरण करते-करते एक बार वे बसन्तपुर नगर के समीप पहुँचे। नगर के बाहर एक देवालय था, वहाँ आर्द्रकुमनि पहुँचे और देवालय में ध्यानस्थ होकर कायोत्सर्ग करने लगे।

उसी नगर में अत्यन्त कुलीन देवदत्त नामक एक धनाढ्य सेठ रहता था। उसकी धनवती नामक भार्या² थी। बन्धुमती साध्वी का जीव देवलोक से च्यवकर धनवती की कुक्षी से पुत्रीरूप में जन्म लेता है। उसका नाम श्रीमती रखा गया। वह श्रीमती रूप और लावण्य में अप्सरा के समान और सुकुमारता में मालती पुष्प के समान रमणीय थी। शनैः-शनैः वह बड़ी होने लगी और एक बार अपनी सखियों के साथ खेल खेलने लगी। वह श्रीमती खेल खेलती हुई सखियों के साथ उसी देवालय में आ गयी जहाँ आर्द्रमुनि ध्यानस्थ बने साधना कर रहे थे। सभी बालिकाएँ खेल-खेल में आँख बंद करके खम्भे को पकड़ती और खम्भा हाथ आने पर बोलती- यह मेरा पति है। इस प्रकार खेल चालू था। श्रीमती भी आँख बंद करके खम्भे को पकड़ने के लिए जाती है, लेकिन उसने खम्भे के बजाय मुनि को पकड़ लिया और कहा कि यह मेरा पति है।

उसी समय आकाशवाणी हुई कि धन्य है- धन्य है, तूने बहुत अच्छा किया। ऐसा कहकर गर्जना करके रत्नों की वृष्टि³ की। उस गर्जना से भयभीत होकर श्रीमती ने मुनि के चरणों को छोड़ दिया। मुनि ने चिन्तन किया कि कुछ देर रहने से मुझे यहाँ अनुकूल उपसर्ग आया है तो अधिक देर रहना योग्य नहीं। ऐसा विचार करके मुनि वहाँ से चले गये। तत्पश्चात् इस नगर के राजा ने रत्नों को लेने राजपुरुषों को भेजा तो वहाँ पर अनेक सर्प घूमते हुए दिखायी दिये। उसी समय आकाश

1. नियोजित- योजना बनाये हुए 2. भार्या- पत्नी 3. वृष्टि- वर्षा

से देववाणी हुई कि यह धन तो श्रीमती के वर के निमित्त दिया गया है। तब राजपुरुष चले गये और श्रीमती के पिता ने वह धन ग्रहण किया और उसे अलग ही रख दिया।

शाम के समय सभी बालिकाएँ भी अपने-अपने घरों को लौट गयीं। जैसे पक्षी नीड़ को लौट जाते हैं।

चरणों की स्मृति

समय निरन्तर व्यतीत होता हुआ चला गया। श्रीमती के जीवन में यौवन का पदार्पण¹ हो गया था। अनेक वर उसका वरण करने को तत्पर थे श्रीमती के पिता ने एक दिन श्रीमती से कहा- पुत्री! अनेक श्रेष्ठी पुत्र तेरा वरण करने को तत्पर हैं। इसलिए तुझे जो अच्छा लगे उसका तू वरण कर सकती है। तब श्रीमती ने कहा- पिताजी! मैंने तो उस समय मुनि का वरण कर लिया था। उसके लिए देवताओं ने द्रव्य² भी दे दिया था। मैंने स्वेच्छा से उस मुनि का वरण किया था और देव-प्रदत्त रत्नराशि को आपने स्वीकार भी कर लिया था। इसलिए मैं अब अन्य किसी पुरुष का वरण नहीं करूँगी।

तब पिता ने पूछा- पुत्री! तुझे मुनि कैसे मिलेंगे? क्योंकि साधु तो भ्रमर की तरह विचरण करते रहते हैं। वो यहाँ पुनः आयेंगे या नहीं आयेंगे? आयेंगे तो भी तू उनको कैसे पहचान पायेगी। उनका नाम क्या है?

तब श्रीमती ने कहा- पिताश्री जब मैं देव गर्जना से घबराकर मुनि का चरण छोड़ने लगी तब मैंने मुनि के चरण में एक चिन्ह देखा था। अतएव मैं उनके चरण देखकर पहचान जाऊँगी। आप ऐसा कीजिए कि मेरे लिए एक दानशाला खुलवा दीजिए। उसमें जो भी भिक्षुक आयेंगे मैं उन्हें दान दूँगी। ऐसा करते-करते मुझे मेरे स्वामी भी मिल जायेंगे।

पिता ने ऐसा ही किया। वह श्रीमती अब प्रतिदिन दानशाला से साधुओं को दान देने लगी और प्रत्येक भिक्षु के चरण देखने लगी। ऐसा करते-करते बारह वर्ष व्यतीत हो गये, लेकिन वह अपने प्रण से तनिक भी विचलित नहीं हुई। धैर्य धारण किये इन्तजार करती रही। आखिर बारह वर्षों के पश्चात् आर्द्रकमुनि विचरण करते हुए उसकी दानशाला में दान लेने हेतु आये। उसने चरण देखकर मुनि को पहचान लिया। तब श्रीमती ने मुनि से कहा- नाथ! देवालय में मैंने आपका वरण किया था, आप ही मेरे पति हो। उस समय मेरी अपरिपक्व अवस्था थी। इसलिए आप स्वेद³ बिनदुवत् मेरा परित्याग करके चल दिये। लेकिन अब बहुत दीर्घकाल के इन्तजार के बाद आप मुझे मिले हो इसलिए अब आप प्रसन्न रहकर मुझे स्वीकार करो। अब यदि आप ग्रहण नहीं करोगे तो मैं अपने प्राणों का त्याग कर दूँगी। जब यह चर्चा नगर में फैली तब स्वयमेव नृपति पधारे और श्रेष्ठी भी मुनि को समझाने लगे। उस समय मुनि को देववाणी की स्मृति आ गयी कि अभी मेरे भोगवली कर्म अवशिष्ट है, अतः उन्होंने मुनिवेष का परित्याग कर श्रीमती का वरण कर लिया। भवितव्यता कभी

1. पदार्पण- आगमन 2. द्रव्य- धन 3. स्वेद- पसीना

अन्यथा नहीं होती है। जैसा लेख लिखा है वैसा होकर ही रहता है। अनार्य देश का राजकुमार आर्द्रकुमार श्रीमती के साथ भोगों का उपभोग कर रहा था। समय आने पर श्रीमती ने एक पुत्र को जन्म दिया। वह पुत्र शनैः-शनैः वृद्धिगत होने लगा और लघुवय¹ में ही चपलतापूर्वक बोलने लगा। तब आर्द्रकुमार ने श्रीमती से कहा- प्रिये! अब ये पुत्र तेरी सहायता करेगा, इसलिए मैं संयम ग्रहण करना चाहता हूँ।

तब श्रीमती ने यह बात अपने पुत्र को बतलाने के लिए पूनी लेकर चरखे से सूत कातने लगी। अपनी माँ को सूत कातते देखकर पुत्र ने पूछा- माँ! ये साधारण सूत कातने का कार्य तू क्यों कर रही है ? यह तो छोटे लोग करते हैं।

तब माँ ने कहा- वत्स! तुम्हारे पिताजी दीक्षा लेने जा रहे हैं। तब मैं असहाय रहकर क्या करूँगी ?

पुत्र ने अपने बालपन से कहा- माँ ? तू चिन्ता मत कर। मैं अपने पिता को बांधकर रखूँगा। तब पिताजी जा नहीं पायेंगे।

ऐसा कहकर पुत्र ने कते हुए सूत की पूनी उठायी और पिता के पैरों को सूत से बान्धने लगा और बारह आटे सूत के लगाने के पश्चात् माँ के पास आकर बोला- माँ! माँ! अब तुम भयभीत मत बनना। मैंने पिताजी को बाँध दिया है। अब वे बन्धे हुए हाथी की तरह कैसे बाहर जा सकते हैं ?

बालक की मधुर तुतलाती वाणी श्रवण कर आर्द्रकुमार का मन मोह के पारावर² में डूब गया और पत्नी से बोला- ओह! इस तुम्हारे लाडले ने मेरे मन को मुग्ध कर दिया है। इसने जितने आटे लगाये हैं, उतने वर्ष तक मैं गृहस्थ जीवन में रहूँगा। आर्द्रकुमार ने धागे के आटे को गिना कि बारह आटे लगे हैं अतएव मैं बारह वर्ष तक गृहस्थ जीवन में रहूँगा।

यह श्रवण कर श्रीमती अत्यन्त हर्षित हुई। आर्द्रकुमार बारह वर्ष तक गृहस्थ में रहे। तत्पश्चात् एक दिन अर्धरात्रि के समय धर्म जागरणा करते हुए उनके मन में विचार आया कि पूर्वजन्म में मैंने साधु जीवन की मन से विराधना की तो मुझे अनार्य देश में जन्म मिला तो इस भव में तो मैंने सम्पूर्ण साधु जीवन का त्याग कर गृहस्थ जीवन स्वीकार कर लिया, अब मेरी क्या गति होगी ? मुझे अपनी आत्मा को पवित्र बनाना है। ऐसा चिन्तन कर प्रातःकाल होने पर श्रीमती से आज्ञा लेकर उन्होंने साधु जीवन स्वीकार कर लिया और ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए उन्होंने राजगृह की ओर विहार कर दिया।

असंयम से संयम की यात्रा

मुनि आर्द्रक राजगृह की ओर निरंतर बढ़ रहे थे। वे अपने पूर्व के मित्र अभयकुमार से संपर्क साधने हेतु समुत्सुक³ थे और अपने अंतःकरण में विराजित भगवान महावीर के दर्शन हेतु अतीव तत्पर थे। उनके संयमी कदम अपने प्रभु से समागम हेतु निरंतर बढ़ रहे थे।

1. लघुवय- छोटी उम्र 2. पारावार- समुद्र 3. समुत्सुक- उत्सुक (सम्यक्तया)

यद्यपि मुनि आर्द्रक को इस भव में भगवान महावीर के दर्शन का सौभाग्य नहीं मिल पाया और न ही भगवान की वाणी श्रवण करने का सुअवसर हस्तगत हुआ तथापि वे पूर्वजन्म की संस्मृति के कारण निर्ग्रन्थ¹ संयमचर्या का यथाविधि शुद्ध रीति से परिपालन कर रहे थे और ईर्या समितिपूर्वक गमन कर रहे थे। उसी समय भीषण जंगलों को पार करते हुए उन्हें मार्ग में पाँच सौ दस्युओं² का गिरोह मिला। उस गिरोह को सन्मुख आता हुआ देख मुनि तनिक भी भयाक्रान्त³ नहीं हुए। मुनि की इस शांत-प्रशांत संयमचर्या को दृष्टिगत कर वे दस्यु अत्यन्त प्रभावित हुए। उन्होंने मुनि से पूछा- तुम कौन ?

आर्द्रकमुनि- मैं श्रमण...

दस्यु- आपका नाम ?

आर्द्रकमुनि- आर्द्रक...

दस्यु- आर्द्रक!!... आर्द्रक!!... राजकुमार आर्द्रक...।

मुनि- हाँ।

दस्यु- अरे! आपके पिताश्री ने हमें आपकी देखरेख के लिए भेजा था। हमने बहुत खोज की लेकिन... लेकिन आप मिले नहीं। तब हमने चिंतन किया कि हम अब पुनः राजा के पास कैसे जाएं ? महाराज हमें क्या बोलेंगे ? इससे अच्छा है, हमें जंगल में ही रूक जाना चाहिए। हम 500 ही रक्षक जंगल में रूक गये और जीवन निर्वाह के लिए हमें यह दुष्कृत्य अपनाना पड़ा। अब आप बतलाईये कि हमें क्या करना है ?

मुनि- मात्र अपने जीवन निर्वाह के लिए अन्यों को परिताप⁴ पहुँचाना अत्यन्त दुख का कारण है। इससे तुम्हारी आत्मा चतुर्गति रूप संसार में परिभ्रमण करती रहेगी। दुःखों की यात्रा का अंत नहीं हो पायेगा।

दस्यु- भगवन्! दुःखों का अंत कैसे हो सकता है ?

मुनि- पंच-महाव्रतयुक्त संयम ग्रहण करने से...

दस्यु- संयम...!

मुनि- हाँ संयम! वही सुख का द्वार है। वही मुक्ति का उपहार है। वही जीवन का सार है।

दस्यु- भंते! हमें शीघ्र ही संयम-पथ पर आरूढ़ करवा दीजिए।

मुनि- जैसा तुम्हें सुख हो वैसा करो, किंतु इस शुभ कार्य में विलम्ब मत करो।

दस्यु- भंते! हमें अतिशीघ्र जैन भागवती दीक्षा का प्रत्याख्यान करवा दीजिए।²

आर्द्रकमुनि ने 500 दस्युओं को तत्क्षण मुनि दीक्षा अंगीकार करवा दी।

गुरुद्रोही

सभी मुनि राजगृह की ओर विहार कर रहे थे। मार्ग में गमन करते हुए उन्हें आजीवक

1. प्रत्याख्यान- पञ्चव्रत

संप्रदाय के आचार्य गोशालक मिल गये। गोशालक के अंतर्मन में निर्ग्रन्थ धर्म के प्रति अतीव द्वेष था। भगवान महावीर का तो नाम श्रवण करते ही उसका खून खौलने¹ लगता था। जैसे ही उसने 501 मुनियों के समूह को देखा तो उनको पराजित करने हेतु उसके मन में कुत्सित परिणाम आने लगे और वह उन मुनियों से प्रश्न करने लगा- अरे आर्द्रक! तू कहाँ जा रहा है ?

मुनिआर्द्रक- मैं... मैं अपने परमात्मा भगवान महावीर के दर्शन करने...।

गोशालक- महावीर के दर्शन... महावीर... अरे तू नहीं जानता वे महावीर कैसे हैं ? अब मैं बतलाता हूँ, महावीर कैसे हैं ? वे पहले तो निर्जन प्रदेशों में एकाकी विचरण किया करते थे, तपस्वी थे, लेकिन अब उन्होंने अनेक भिक्षुओं को इकट्ठा कर लिया है। वे बहुत विशाल समुदाय के साथ रहते हैं। उनके स्वयं के आचरण का कोई ठिकाना नहीं है। उस अस्थिर चित्त वाले महावीर ने अपनी आजीविका चलाने के लिए बहुत से लोगों के मध्य जाकर धर्मोपदेश देना भी प्रारंभ कर दिया है। इस प्रकार वह महावीर कभी एकांत में, कभी समूह में रहता है। तो वह तुम्हारा क्या कल्याण कर सकता है ?

आर्द्रकमुनि ने अनुद्विग्न² चित्त से गोशालक के द्वेषयुक्त आक्षेपों को श्रवण किया और जब गोशालक आक्षेप कथन करने के पश्चात् रूक गया तब अत्यंत शांत भाव से आर्द्रकमुनि ने कहा- भगवान महावीर की चर्या को तुम नहीं समझ पा रहे हो, इसलिए तुम ऐसा कथन कर रहे हो। भगवान महावीर अपने केवलालोक³ से समग्र लोक का परिज्ञान करके समस्त जीवों के एकांत हित के लिए समवसरण में विराजकर जनसमुदाय के मध्य धर्मोपदेश कर रहे हैं। धर्मोपदेश करते हुए भी वे राग-द्वेष से रहित होने के कारण एकांत आत्मसाधना में रत रहते हैं क्योंकि उनकी चित्तवृत्ति सदैव एक रूप में बनी रहती है। श्रुत⁴ एवं चारित्र धर्म का आख्यान⁵ करने वाले भगवान महावीर को किसी प्रकार का दोष नहीं लगता क्योंकि क्षमासागर, परिषहजयी, मनोविजेता, जितेन्द्रिय भगवान महावीर निर्दोष वाणी के उद्गाता है।⁶ घाती कर्म से सर्वथा रहित श्रमण भगवान महावीर श्रमणों के लिए पंच महाव्रत, श्रावकों के लिए पांच अणुव्रत एवं सर्वसामान्य के लिए पंचाश्रव⁷ निवृत्ति एवं पंच संवर⁸ आराधन का उपदेश फरमाते हैं। वे नवतत्त्वों का उपदेश देकर भव्यात्माओं को मोक्ष पथ का पथिक बनाते हैं। इसलिए सदैव आत्मसाधना में लीन भगवान महावीर की चर्या सदैव हितसाधक है, उसमें किसी प्रकार का परस्पर विरोध नहीं है।

आर्द्रकमुनि के उत्तर को श्रवण करके गोशालक ने आर्द्रकमुनि को अपने आजीवक संप्रदाय का आचार बतलाने के लिए कहा- “आर्द्रक! मैं तो ऐसा मानता हूँ कि कोई साधु सचित्त (कच्चा) जल, बीज, आधा कर्म आहार⁹ तथा स्त्रियों का सेवन भले ही करता हो, लेकिन एकांत निर्जन प्रदेश

-
1. खून खौलना - द्वेष जागृत होना
 2. अनुद्विग्न - शान्त केवलालोक- केवल ज्ञान
 3. श्रुत- ज्ञान
 4. आख्यान- कथन
 5. उद्गाता- प्रवक्ता
 6. पंचाश्रव- मिथ्यात्व, 31व्रत, प्रमाद, कषाय, अशुभ योग
 7. पंच संवर- समकित, व्रत प्रत्याख्यान करना, अप्रमाद, अकषाय, योग अप्रवर्तन
 8. आधाकर्म- मुनि के लिए बना आहार
-

में विचरण करने वाले तपस्वी साधु को कुछ भी पाप नहीं लगता।

आर्द्रकमुनि- गोशालक! यदि बीजकाय, सचित्त जल एवं स्त्रियों का सेवन करने वाले व्यक्ति को भी श्रमण मान लेंगे तो फिर गृहस्थ भी श्रमण हो जायेगा, क्योंकि वह भी बीजकायादि का सेवन करता हुआ परदेश आदि में अकेला भी रहता है तथा यथासंभव तप भी करता है।

जो श्रमण होकर भी बीजकाय, सचित्त जल एवं आधा कर्मादि दोष से युक्त आहारादि का उपभोग करते हैं, वे मात्र जीवन निर्वाह के लिए भिक्षा वृत्ति करते हैं। वे अपने संबंधीजनों का परित्याग करके भी अपनी काया का पोषण करने वाले हैं। ऐसा करने से वे जन्म-मरण रूपी संसार का अंत नहीं कर सकते।

गोशालक- अरे आर्द्रक! तुम्हारा चिंतन सम्यक् नहीं है। अनेक दार्शनिक अपनी-अपनी दृष्टि से सचित्त जलादि का सेवन करते हुए धर्म, पुण्य और मोक्ष बतलाते हैं, लेकिन तुम उनकी निंदा करके अपना अहंकार प्रदर्शित कर रहे हो। अतएव तुम्हारा कथन युक्तियुक्त नहीं है।

आर्द्रकमुनि- साधु किसी वेषादि, पंथादि की निंदा नहीं करता लेकिन सत्य स्वरूप का कथन करना उसका परम लक्ष्य है। मध्यस्थ भाव से तथ्य प्रतिपादन करना निंदा नहीं है।

गोशालक- अरे आर्द्रक! तुम नहीं जानते तुम्हारे भगवान महावीर और उनके साधु बहुत ही डरपोक होते हैं। वे बड़े-बड़े उद्यान-गृहों में (धर्मशालाओं में) इसलिए नहीं ठहरते कि वहाँ मेधावी, दिग्गज, विद्वान् ठहरते हैं। वे यदि शास्त्रार्थ करेंगे तो तुम्हारे साधु पराजित हो जायेंगे। इस भय से वे सार्वजनिक स्थानों में नहीं ठहरते।

आर्द्रकमुनि- भगवान महावीर तो निर्भय हैं, उनको किसी से किसी प्रकार का कोई भय नहीं है। लेकिन वे सर्वज्ञ होने से जहाँ भव्यों का उपकार होता है वहाँ ठहरते हैं, उपदेश देते हैं, अन्यथा मौन रहते हैं।

गोशालक- अरे! रे! तुम्हारे महावीर तो लाभार्थी वणिक के समान है क्योंकि वे जहाँ अपनी पूजा, प्रतिष्ठा, यथःकीर्ति होती है वहीं उपदेश देते हैं, अन्यत्र नहीं।

आर्द्रकमुनि- गोशालक! भगवान महावीर जहाँ आत्मा का उपकार होता है वहाँ उपदेश देते हैं। इस दृष्टि से वे मोक्ष के लाभार्थी हैं, परन्तु लाभार्थी वणिक के साथ उनकी उपमा संगत नहीं है। क्योंकि लाभार्थी वणिक अल्पज्ञ होने से सावद्य¹ कार्य करते हुए नवीन कर्मों का बंध करता है, जबकि भगवान महावीर सर्वज्ञ होने से सावद्य कार्यों से रहित हैं, अतएव वे पूर्वबद्ध² कर्मों की निर्जरा³ करते हैं।

वणिक, व्यापार, गृहकार्य आदि में आरम्भ⁴-समारम्भ⁵ करके अनेक प्राणियों की हिंसा करता है। वह धन, स्वजन संबंधी आदि के साथ ममत्व भाव रखने से परिग्रही है, आसक्तिवान है,

1. सावद्य- पाप 2. पूर्वबद्ध- पहले बंधे हुए 3. निर्जरा- एक अंश से कर्मों का क्षय करना 4. आरम्भ- किसी प्राणी को मासिक संक्लिष्ट परिणामों द्वारा मारना 5. समारम्भ- किसी प्राणी को मानसिक संक्लिष्ट परिणामों द्वारा पीड़ा पहुँचाना

जबकि भगवान महावीर परिपूर्ण अहिंसक, निष्परिग्रही एवं अप्रतिबद्ध विहारी हैं। वे मात्र भव्य जीवों के हितार्थ उपदेश देते हैं।

वणिक धनाभिलाषी, कामासक्त¹ एवं भोग प्राप्ति हेतु लालायित रहते हैं, जबकि भगवान महावीर इन सबके सर्वथा त्यागी हैं।

वणिक सावद्य आरम्भ और परिग्रह का सर्वथा त्याग नहीं कर सकते, इस कारण उनकी आत्मा कर्मबंधन से दंडित होती रहती है और चतुर्गति रूप संसार में परिभ्रमण करती रहती है, जबकि भगवान महावीर इन सबसे सर्वथा दूर होने से एकान्तिक रूप से आत्मिक लाभ संप्राप्त करते रहते हैं।

वणिक जो धनादि से लाभ प्राप्त करता है, वह एकान्तिक² एवं आत्यन्तिक³ सुख रूप नहीं होता क्योंकि उसके पीछे दुःख छिपा रहता है, जबकि भगवान महावीर को होने वाला कर्म-निर्जरा रूप लाभ अत्यंत सुखद है। उनका केवलज्ञान रूप लाभ अनंत, शाश्वत एवं यथार्थ है।

अतएव हे गोशालक! परिपूर्ण अहिंसक, अत्यंत करुणाशील, धर्मनिष्ठ, कर्मक्षय में प्रवृत्त भगवान महावीर की तुलना हिंसा में अनुरक्त, निरानुकम्पी⁴, धर्म से दूर, कर्मबंधन में प्रवृत्त वणिक से करना युक्ति विरुद्ध एवं अज्ञानता का संसूचक⁵ है।

इस प्रकार अपनी प्रखर मेघा से आर्द्रकमुनि गोशालक को निरुत्तर कर विहार-चर्या में सन्नद्ध⁶ हुए।

असत् से सत्

विहार करते हुए उन्हें पीत वस्त्रधारी एक बौद्ध भिक्षु मिल गया। उसने आर्द्रकमुनि से इस प्रकार कहा- आपका क्या नाम है ?

आर्द्रकमुनि ने कहा- आर्द्रक!

बौद्ध भिक्षु- मैं आपसे कुछ कहना चाहता हूँ।

आर्द्रकमुनि- कहिए।

बौद्ध भिक्षु- हमारे मतानुसार कोई व्यक्ति खली के पिण्ड को पुरुष एवं तुम्बे को कुमार मानकर उसे शूल से बींधकर पकाए तो वह प्राणिवध के पाप से संलित नहीं होता।⁷

कोई व्यक्ति पुरुष को खली-पिंड एवं कुमार को तुम्बा समझकर उसे पकाये तो प्राणिवध के पाप से लित नहीं होता।

कोई पुरुष मनुष्य या बालक को खली पिण्ड समझकर आग में पकाये तो वह भोजन पवित्र है एवं बौद्ध भिक्षुओं के लिए खाने योग्य है।

इस प्रकार मांस का भोजन तैयार करके जो प्रतिदिन दो हजार बौद्ध भिक्षुओं को खिलाता है, वह महान् पुण्य पुंज का उपार्जन करके महापराक्रमी आरोप्य नामक देव होता है।

1. कामासक्त- काम भावना में लीन
2. एकान्तिक- एकान्त रूप
3. आत्यन्तिक- अत्यन्तरूप से
4. निरनुकम्पी- दया रहित
5. संसूचक- सूचना करने वाला
6. सन्नद्ध- युक्त

बौद्ध भिक्षु की इस प्रकार की भ्रांत मान्यता को श्रवण कर आर्द्रकमुनि ने उसको इस प्रकार प्रत्युत्तर देते हुए कहा- हे शाक्य¹ भिक्षु! आपके शाक्य-मत का यह सिद्धांत संयमियों के लिए अयोग्य है। जान-बूझकर प्राणियों का घात करने पर भी पाप नहीं होता, जो ऐसा कहते, सुनते या मानते हैं तो यह दोनों के लिए अबोधिलाभ का कारण है।

हे भिक्षु! खली के पिण्ड में पुरुष बुद्धि तो मूर्ख को भी नहीं होती अतएव जो पुरुष खली के पिण्ड में पुरुष-बुद्धि अथवा पुरुष में खली के पिण्ड की बुद्धि रखता है, वह अनार्य है। उसकी वाणी सत्य से कोसों दूर है।

जिस वचन के प्रयोग से जीव पापकर्म का उपार्जन करें, ऐसा वचन विवेकी पुरुष को कदापि नहीं बोलना चाहिए। प्रव्रजितों के लिए यह वचन गुणों का स्थान नहीं है अतएव दीक्षित मुनि को ऐसे निसार वचन कदापि नहीं बोलना चाहिए, क्योंकि ऐसे वचन कर्मबंधन के हेतु हैं।

जो व्यक्ति दो हजार भिक्षुओं को पूर्वोक्त मांसपिण्ड का भोजन करवाता है, वह रक्त से रंगे हाथ वाला असंयमी व्यक्ति इसी लोक में निन्दा का पात्र होता है।

आपके मत में बुद्धानुयायी लोग एक बड़े भेड़ को मारकर उसमें तेल मसाले डालकर बौद्ध भिक्षुओं के लिए पकाते हैं और पकने के बाद वही आहार बौद्ध भिक्षु ग्रहण करते हैं। ऐसा मांसाहार करने के बाद भी अनार्य कर्म करने वाले अज्ञानी बौद्ध भिक्षु ऐसा बोलते हैं कि हम ऐसा आहार करते हुए पाप कर्म से लिस नहीं होते।

वास्तव में इस प्रकार मांसाहार करने वाले पुण्य-पाप से अनभिज्ञ अनार्य प्रकृति, अनार्य-कर्म, रसलोलुप एवं स्वपर वंचक हैं। मांस हिंसाजनित, रौद्र-ध्यान का हेतु, अपवित्र, निन्द्य, अनार्यजन सेवित एवं नरक गति का कारण है। मांसभोजी आत्मद्रोही एवं आत्मकल्याण द्वेषी है। वह मोक्षमार्ग का आराधक नहीं है।

निर्ग्रन्थ² भिक्षु समस्त प्राणियों पर दयालु होने से हिंसाजनित आहार के सर्वथा त्यागी होते हैं। वे मांस भोजन जैसा अभक्ष्य आहार लेना तो दूर रहा, सात्विक आहार भी यदि 42 दोषयुक्त हो तो उसे भी ग्रहण नहीं करते। ऐसे साधक मूल³ एवं उत्तर गुणों⁴ से सम्पन्न उभयलोक⁵ में प्रशंसनीय होते हैं। जैन मुनियों का यही अनुधर्म⁶ है।

आर्द्रकमुनि के सांगोपांग समाधान को श्रवण करके बौद्ध भिक्षु परास्त होकर सत्य को धारण कर लेता है* और आर्द्रकमुनि जिनशासन की प्रभावना करते हुए आगे बढ़ रहे थे। जब वे मार्ग में विहार कर रहे थे, तो उस मार्ग में उन्हें ब्राह्मणों का समुदाय मिला। उन ब्राह्मणों ने आर्द्रकमुनि के समक्ष अपनी जिज्ञासा इस प्रकार रखते हुए कहा- हे मुने! जो पुरुष प्रतिदिन दो हजार ब्राह्मणों को

1. शाक्य- बौद्ध भिक्षु 2. निर्ग्रन्थ- जो सब प्रकार के कपट से रहित हो 3. मूल- पंच महाव्रतादि 4. उत्तरगुण- नवकारसी आदि 5. उभयलोक- दोनों लोक 6. अनुधर्म- पहले तीर्थंकर भगवान ने इस धर्म का आचरण किया तदन्तर उनके शिष्य इसका आचरण करते हैं। अतएव यह अनुधर्म है अथवा अणुधर्म-सूक्ष्म धर्म है शिरीष पुष्प सम कोमल है, जरा सा अतिचार लगने पर नष्ट होने लगता है।

भोजन करवाता है, वह पुण्यशाली देव बनता है। ऐसा वेद का कथन है।

तब आर्द्रकमुनि ने उनका प्रतिवाद करते हुए कहा- अरे! आप पशुवध की प्रेरणा देते हो और स्वयं भी प्रायः मांसभक्षण करते हो। इसी मांस-भोजन की प्राप्ति के लिए आप लोग क्षत्रिय घरों में घूमा करते हो। अतएव जो यजमान ऐसे मांसलुब्ध ब्राह्मणों को भोजन करवाता है वह अप्रतिष्ठान नामक नरक में जाता है। एक भी कुशील व्यक्ति को भोजन करवाने वाला, हिंसा प्रधान धर्म का प्रशंसक तामस नरक में जाता है। तब देवलोक में जाने की बात सर्वथा मिथ्या है।

मनुस्मृति आदि वैदिक ग्रंथों में वैडाल-वृत्तिक हिंसा प्रेरक ब्राह्मणों को भोजन करवाने वाले तथा करने वाले को नरकगामी^१ बतलाया है।

आर्द्रकमुनि के इस समाधान को श्रवण करके ब्राह्मण समूह निरूत्तर हो गया^२ और आर्द्रकमुनि संत-समूह सहित आगे बढ़ने लगे। तत्पश्चात् उन्हें एकदण्डिक^३ सांख्यमत के संन्यासी मिले। वे संन्यासी आर्द्रकमुनि से इस प्रकार कहने लगे कि तुम्हारे व हमारे आचरण में अत्यधिक समानता है।

1. यम-नियम रूप धर्म को दोनों ही मानते हैं।
2. हम और आप दोनों धर्म में स्थित हैं।
3. यम-नियम रूप धर्म का आचरण करने वाला ही उत्कृष्ट ज्ञानी है।
4. हम और आप दोनों ही जगत का उत्पाद^१, व्यय^२ और ध्रौव्य^३ मानते हैं।
5. आत्मा अव्यक्त^४, सर्वलोक-व्यापी, नित्य, अक्षय, अव्यय^५ तथा सर्वभूतों^६ में परिपूर्णतः व्याप्त है।

इस प्रकार आपकी तथा हमारी मान्यता समानता लिए हुए हैं।

आर्द्रकमुनि ने सांख्य-श्रमणों के इस अभिमत को श्रवण किया और तात्त्विक दृष्टि से जैन और सांख्यों के अंतर को बतलाते हुए कहा- हे सांख्य श्रमणों! तुम्हारी और हमारी मान्यता में तात्त्विक दृष्टि से बहुत अंतर है।

1. यद्यपि आप और हम दोनों ही धर्म को मानते हैं, लेकिन हम ऐसा मानते हैं कि उस धर्म का निरूपण यदि अपूर्ण ज्ञानी करते हैं तो वह स्व-पर को संसार के गर्त में डाल देते हैं।

2. सांख्य मत में 25 तत्त्वों के ज्ञान मात्र से मोक्ष मानते हैं अतएव सांख्य मतानुसार धर्माचरण रहित मात्र तत्वज्ञाता और धर्माचरणयुक्त तत्वज्ञ दोनों ही समान है। यह उचित नहीं है।

3. सांख्य मत एकांतवादी है, जबकि जैन मत अनेकान्तवादी है।

4. सांख्य आत्मा को सर्वव्यापी मानते हैं, जैन शरीरव्यापी मानते हैं।

5. सांख्य आत्मा को कूटस्थ नित्य^७ मानते हैं, जबकि जैन कथंचित् नित्य और कथंचित

1. उत्पाद- उत्पन्न होना 2. व्य- नष्ट होना 3. ध्रौव्य- स्थिर रहना 4. अव्यक्त- कथन के अयोग्य

5. अव्य- अक्षीण 6. सर्वभूत- पृथ्वी आदि 7. कूटस्थ नित्य- एकान्त नित्य

अनित्य मानते हैं। कूटस्थ नित्य सर्वव्यापी आत्मा आकाश के समान होने के कारण गति नहीं कर सकता। वह नरकादि गतियों में गमनागमन नहीं कर सकता। बालक, युवा आदि अवस्थाएँ कूटस्थ नित्य में नहीं हो सकती।

6. सांख्य मत संसार के स्वरूप को नित्य मानता है, जबकि जैन जगत् को नित्य-अनित्य मानता है।

7. जैन दर्शन कैवल्यज्ञान के बिना मोक्ष नहीं मानता, जबकि सांख्य मात्र 25 तत्वों के ज्ञान से ही मोक्ष मान लेता है। ये 25 तत्व भी वास्तविक तत्व नहीं हैं।

इस तरह जैन धर्म के गूढ़ तत्वों का निरूपण करके आर्द्रकमुनि ने सांख्यों को निरूत्तर कर दिया और अपनी विहारचर्या में संलग्न हुए। मार्ग में उन्हें हस्तितापस मिले। उन्होंने आर्द्रकमुनि ने इस प्रकार कहा- हे मुने! अधिक जीवों के वध से अधिक हिंसा तथा अल्पसंख्यक जीवों के वध से अल्प-हिंसा होती है। कंदमूल खाने वाले या अनाज खाने वाले बहुत से स्थावर प्राणियों की तथा उनके आश्रित त्रस प्राणियों की हिंसा करते हैं। भिक्षाजीवी साधु भी भिक्षा के लिए जब भ्रमण करते हैं तो घूमते समय चींटी आदि जीवों की घात हो सकती है। भिक्षा की प्राप्ति या अप्राप्ति से उनका चित्त मलिन भी हो जाता है। अतः हम इन सब प्रपंचों से दूर रहकर वर्ष में मात्र एक बार एक बड़े हाथी को मार लेते हैं और उसी के मांस से वर्षभर निर्वाह कर लेते हैं। इसलिए हमारा धर्म सर्वोत्तम है।

आर्द्रकमुनि हस्तितापसों की इस मान्यता का निराकरण करते हुए कहते हैं कि हिंसा-अहिंसा की न्यूनाधिकता का मापदंड मृत जीवों की संख्या से नहीं हो सकता, अपितु उसका आधार प्राणी की चेतना, इन्द्रियाँ, मन, शरीर आदि का विकास एवं मारने वाले की तीव्र-मंद-मध्यम भावना अथवा पूर्ण अहिंसक की किसी भी जीव को न मारने की भावना एवं उसकी तदनुसार क्रिया है। इसलिए जो हाथी जैसे विशालकाय, विकसित, चेतनाशील पंचेन्द्रिय प्राणी को मारता है, वह कथमपि घोर हिंसा के दोष से रहित नहीं माना जा सकता।

वर्षभर में एक विशालकाय हस्ती की घात करके जीवन निर्वाह करने में सिर्फ एक प्राणी का घात नहीं होता अपितु उस प्राणी के आश्रित रहने वाले तथा उसके मांस, रक्त, चर्बी आदि में उत्पन्न होने वाले अनेक त्रस-स्थावर प्राणियों का घात होता है। अतः जीव का वध करने वाले घोर हिंसक, अनार्य एवं नरकगामी हैं। वे सम्यक्ज्ञान से बहुत दूर हैं। यदि अल्प संख्या में जीव वध करने वाले को अहिंसा का आराधक माना जायेगा तो मर्यादित हिंसा करने वाला गृहस्थ भी हिंसा के दोष से रहित माना जाने लगेगा।

वस्तुतः अहिंसा की परिपूर्ण सम्यक् आराधना दोषों से रहित प्राप्त भिक्षा को संतोषपूर्वक निर्वाह करने वाले अहिंसा महाव्रती भिक्षुओं द्वारा ही हो सकती है।

आर्द्रकमुनि की इस तर्कसंगत वार्ता को श्रवण करके हस्तितापस अत्यंत अभिभूत¹ हुए और वे भी आर्द्रकमुनि के साथ जाने को तत्पर बने।²

1. अभिभूत- परास्त/युक्त

बन्धन टूटे

आर्द्रकमुनि अपने समस्त साधुओं और वाद में जीते हुए हस्तितापसों के साथ आगे बढ़ रहे थे। तब वहाँ पर उसी मार्ग में एक विशालकाय वनहस्ती को हस्तितापसों ने अपने भोजन हेतु मारने के लिए लौह-शृंखलाओं से बांध रखा था। जब आर्द्रकमुनि इतने विशालकाय मुनि समुदाय और हस्तितापसों के साथ आगे बढ़ रहे थे तो अनेक लोग उनको मस्तक झुकाकर नमन करते हुए जा रहे थे। उन्हें नमन करते हुए देखकर लघुकर्मा गजराज ने चिंतन किया कि मैं भी इस शृंखला से आबद्ध नहीं होता तो मुनि को वंदन करता, लेकिन इस बंधन में बंधा हुआ वंदन कैसे करूँ। मुझे इन बंधनों को तोड़ डालना चाहिए। ऐसा चिंतन कर हाथी ने अपना पुरुषार्थ किया और कच्चे धागे जैसे तड़ातड़ उन बंधनों को तोड़ डाला।

बंधनों को तोड़ने के पश्चात् वह अतिविशाल हस्ती मुनि की ओर दौड़ने लगा। उसे तीव्र झंझावात की तरह बेतहाशा दौड़ते हुए देखकर लोग हाहाकार करने लगे कि अरे बचाओ... बचाओ... यह हस्ती मुनियों को मारने जा रहा है। अन्य मुनि भी भयभीत होकर इधर-उधर जाते हुए एक-दूसरे पर गिरने लगे। लेकिन आर्द्रकमुनि शांत-प्रशांत होकर, स्थिरचित्त करके अन्तर्चेतना में लीन बने रहकर वहीं खड़े रहे। वह गजेन्द्र मुनि के पास आया और अपने कुंभस्थल को झुका करके उसने मुनि को नमन किया। तत्पश्चात् अत्यंत भक्तिभाव से उस वनहस्ती ने अपनी सूंड को फैलाकर मुनि का चरण स्पर्श किया और अत्यंत शांति का अनुभव किया।

वह हस्ती अत्यंत भक्ति-भाव से मुनि को निहारने लगा। मुनि की शांत-प्रशांत मुखमूद्रा को अपलक निहारते-निहारते वह अपनी मदमस्त चाल से चलकर जंगल की ओर चला गया।

जैसे ही हस्तितापसों ने हाथी को जाते देखा तो उनको उस हस्ती पर अत्यंत क्रोध आया कि देखो हमने इसको बांधा था और यह बंधन तोड़कर भाग गया। तब आर्द्रकमुनि ने उन हस्तितापसों को समझाया और उनको भगवान महावीर के समवशरण में जाने के लिए प्रतिबोध दिया। वे हस्तितापस आर्द्रकमुनि से प्रतिबद्ध होकर भगवान के समवशरण में चले गये। वहाँ उन्होंने प्रभु की वाणी श्रवण की और अत्यंत हर्षित होते हुए संयम अंगीकार कर लिया।

इधर मगध सम्राट श्रेणिक और महामंत्री अभयकुमार को इस बात का पता लगा कि वनहस्ती ने आर्द्रकमुनि को नमन किया और हस्तितापसों ने आर्द्रकमुनि से प्रतिबोध प्राप्त कर मुनि जीवन स्वीकार कर लिया, तब राजा श्रेणिक, अभयकुमार सहित अनेक लोगों के साथ आर्द्रकमुनि को वंदन करने के लिए उपस्थित हुआ।

राजा श्रेणिक एवं अभयकुमार ने शुद्ध भूमि पर विराजित आर्द्रकमुनि एवं अन्य श्रमण परिवार को वंदन-नमस्कार किया और आश्चर्यचकित होकर पूछा- भंते! आपके दर्शन से गजेन्द्र मुक्त हो गया। उसने आपके चरण-स्पर्श किये यह सब श्रवण कर मुझे अत्यंत आश्चर्य हो रहा है।

तब आर्द्रकमुनि ने कहा- हे नरेन्द्र! मुझे हाथी को वश में करना, उसे मुक्त करना उतना

कठिन नहीं लगा, जितना कच्चे सूत के स्नेह-बंधन को तोड़ना बहुत मुश्किल लगा। मैं कच्चे स्नेह-बंधन के धागे से बंधकर बारह वर्ष तक गृहस्थ जीवन में रहा।

इस प्रकार आर्द्रकुमुनि ने अपना सारा वृत्तान्त राजा श्रेणिक और श्रमणोपासक अभयकुमार को सुनाया। उसको श्रवण कर राजा श्रेणिक, अभयकुमार और समस्त परिषद् आश्चर्य का अनुभव करने लगे।

तत्पश्चात् आर्द्रकुमार मुनि ने अभयकुमार से कहा- आपने मुझे धर्म मार्ग में प्रविष्ट होने की सद्प्रेरणा दी थी। आपके भेजे गये धार्मिक उपकरणों को देखकर मुझे जातिस्मरण ज्ञान हुआ। आप मेरे महान् उपकारी हो। आपने मुझे अनार्यपन रूपी कीचड़ से निकालकर इस संयम पथ का पथिक बनाने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। अभयकुमार ने कहा- यह तो सब आपकी स्वयं की पुण्यवाणी है। इस प्रकार कहकर अभयकुमार राजा श्रेणिक, मुनि को वंदन करके राजमहल में लौट गये।

आर्द्रकुमुनि 500 मुनियों सहित राजगृह नगर में जहाँ भगवान महावीर का समवशरण था, वहाँ गये। भगवान के प्रथम बार दर्शन कर आर्द्रकुमुनि अत्यंत आनंदित हुए। उन्होंने एवं सभी मुनियों ने भगवान को वंदन-नमस्कार किया और कहा- भगवन्! आप हमें संयम देकर अपनी शरण में लीजिए। तब भगवान महावीर ने सभी को दीक्षा दी और दीक्षा देकर 500 मुनियों एवं तापसों को आर्द्रकुमुनि को सुपुर्द कर दिया।[¶]

आर्द्रकुमार की दीक्षा लगभग भगवान महावीर के समकालीन लगती है, क्योंकि आर्द्रकुमार ने प्रथम दीक्षा ली उसके पश्चात् कुछ समय संयम का पालन किया फिर पुनः गृहस्थावस्था में आये। कालांतर में पुत्र जन्म हुआ। जब उनका पुत्र 5 वर्ष का हुआ तब पुनः संयम के भाव जगे लेकिन पुत्र द्वारा सूत के धागे से बांधने के कारण 12 वर्ष तक पुनः गृहस्थ में रहे। इस प्रकार प्रथम दीक्षा पर्याय और 17 वर्ष तक गृहवास की अवधि मिलाने पर उनकी प्रथम दीक्षा का काल लगभग भगवान महावीर के समकालीन लगता है। अभयकुमार ने इतने वर्ष पूर्व धार्मिक उपकरण भेजे थे। उसे धार्मिक उपकरणों की जानकारी भगवान महावीर से नहीं मिली। क्योंकि भगवान उस समय स्वयं छद्मस्थावस्था में थे, लेकिन अभयकुमार के दादा आदि भगवान पार्श्वनाथ को मानने वाले थे अतः पूर्व परम्परा से उसे धार्मिक उपकरणों का ज्ञान था। इसलिए उसने धार्मिक उपकरण आर्द्रकुमार को भेजा, ऐसा ही मानना संगत है।

तत्त्वं तु केवलिगम्यम्।^{¶¶}

अनेक भव्यों को संयम पथ पर आरूढ करने वाले अभयकुमार के मन में अब संयम लेने के प्रबल भाव उठने लगे। वस्तुतः अभयकुमार प्रखर प्रतिभा सम्पन्न राजकुमार था, जिसकी यशपताका सुदूर देशों तक प्रसृत थी। मगध का गौरव अभयकुमार की ही पैनी प्रज्ञा से वृद्धिगत था। स्वभाव से ही स्वामिभक्त, पितृभक्त अभयकुमार का सम्पूर्ण जीवन निष्कलंक एवं निर्मल था। राजा श्रेणिक की प्रत्येक समस्या का समाधान अभयकुमार अतीव सरलता से कर दिया करता था। वह राजनीतिशास्त्र और अर्थशास्त्र का कुशलवेत्ता था। औत्पातिकी, वैनयिकी, कार्मिकी और पारिणामिक इन चारों बुद्धियों का स्वामी होकर वह राज्यधुरा का वहन करने में धुरन्धर वीर पुरुष था।

वह राजा श्रेणिक का मनोनीत मंत्री था, जो कि 500 मंत्रियों का आधिपत्य करता था। वह सम्पूर्ण शासन, राष्ट्र, कोष, कोठार, सेना, वाहन, अन्तःपुर और नगर की भली-भाँति सुरक्षा करने में अतीव निपुण था। जटिल से जटिल समस्या को क्षणमात्र में सुलझा देना उसके बायें हाथ का खेल था।

जैन ग्रन्थों में अभयकुमार की दीक्षा के सम्बन्ध में प्रचुर सामग्री उपलब्ध है। आचार्य हेमचन्द्र ने अपने त्रिषष्टि शलाका पुरुष में अभयकुमार की दीक्षा का उल्लेख किया है। वहाँ ऐसा वर्णन मिलता है कि अभयकुमार एक बार भगवान महावीर के चरणसरोजों की उपासना कर रहा था। उपासना करते-करते उसने भगवान से पूछा- भगवन्! अन्तिम कौन राजर्षि आपके शासन में दीक्षा ग्रहण करेगा ?

तब भगवान महावीर ने फरमाया- अभय! वीतभय नगर का राजा उदायन अन्तिम राजर्षि मेरे शासनकाल में दीक्षा ग्रहण करेगा। तब अभयकुमार ने भगवान से उदायन राजा का वर्णन पूछा। भगवान ने उदायन का समग्र वृत्तान्त अभयकुमार को बतलाया। (अपश्चिम तीर्थंकर भाग 2 में उदायन राजा का पूरा वृत्तान्त है।)

यहाँ राजर्षि का तात्पर्य मुकुटबद्ध राजा से है। उदायन राजा वीतभय आदि 363 नगरों का तथा सिन्धुसैवीर आदि सोलह महादेशों का राजा था।

लाभ से बढ़ा लोभ

भगवान महावीर ने अभयकुमार* को उदायन राजा का वृत्तान्त बतलाने के पश्चात् कपिल-केवली का चारित्र भी बतलाया। ऐसा त्रिषष्टि शलाका पुरुष चारित्र के अनुसार उद्भासित होता है।⁷³ अतएव यहाँ कपिलमुनि के चारित्र का भी वर्णन करना संगत लग रहा है। कौशाम्बी नगरी का राजा प्रसेनजित⁷⁴ का एक सम्मानित राजपुरोहित था, जिसका नाम था - काश्यप ब्राह्मण। वह काश्यप अनेक विद्याओं का पारगामी दिग्गज विद्वान् था। उसकी कौशाम्बी नगरी में अत्यन्त प्रतिष्ठा थी। उसकी यशा नामक भार्या थी। समय आने पर यशा ने एक पुत्ररत्न का प्रसव किया, जिसका नाम कपिल रखा। शनैः-शनैः कपिल बड़ा होने लगा। विधि का विधान कुछ और ही था। कपिल जब अल्पवयस्क या तब अचानक उसके पिता काल के गाल में समा गये। तब कपिल को अपठित जानकर महाराजा ने काश्यप के स्थान पर दूसरे राजपुरोहित की नियुक्ति कर दी। काश्यप की पत्नी यशा को इस बात का पता चला तो वह अत्यन्त खिन्न बन गयी।

* त्रिषष्टि शलाका पुरुषचरित्र में प्रसेनजित के स्थान पर जितशत्रु नाम है।

अभय कुमार का पूर्वभ्र- वेणातट नगर में रूद्रदत्त नामक ब्राह्मण रहता था। वह वैदिक (सनातन) धर्म का अनुयायी था। वह तीर्थ यात्रा के लिए निकला, तो उसका सम्पर्क उज्जयिनी नगर में अर्हद्वास श्रेष्ठी के साथ सम्पर्क हुआ, उससे वह सम्यक्त्वी बना। अन्त में संन्यास लेकर, तप करके स्वर्ग गया, वहाँ से च्यवकर अभयकुमार बना।

एक दिन जिस विद्वान् की राजपुरोहित पद पर राजा ने प्रतिष्ठा की थी, वह विद्वान् योग्य सम्मान सहित अश्वारूढ़ होकर राज-प्रासाद की ओर कपिल के घर के सामने से होकर जा रहा था। अचानक काश्यप की पत्नी यशा ने उसे देखा। देखते ही अपने स्वामी की स्मृति तरोताजा हो गयी। अहो! जब पतिदेव थे तो यह सम्मान उनको मिलता था। वे चले गये और कपिल विद्वान् नहीं बना तो आज यह सम्मान दूसरों के हाथों चला गया। यह सोचकर वह रूदन करने लगी।

कपिल ने अपनी माँ को रूदन करते हुए देखा तो पूछा- मातेश्वरी! तू क्यों रो रही है ?

माँ- बेटा हमारा सारा गौरव तेरे पिता के दिवंगत होने के पश्चात् छिन्न गया है। वह सम्मान दूसरे को प्राप्त हो गया है। यदि तू योग्य होता तो तुझे यह सम्मान मिलता।

कपिल- माँ! तुम चिन्ता मत करो। मैं विद्वान बनूँगा। बस इतना-सा बताओ कि मुझे किसके पास पढ़ने के लिए जाना है ?

माँ- बेटा! यहाँ के पण्डित अपनी प्रतिष्ठा देखकर ईर्ष्या करते हैं। तुम श्रावस्ती नगरी जाओ। वहाँ तुम्हारे पिता के मित्र पण्डित इन्द्रदत्त शर्मा रहते हैं। वे तुम्हें पढ़ाकर विद्वान् बना देंगे। अतः तुम श्रावस्ती नगरी के लिए प्रस्थान कर दो।

कपिल- माँ! तुम्हारी मनोकामना पूर्ण करने के लिए मैं श्रावस्ती जा रहा हूँ⁷⁵ आप अब निश्चित रहिये।

ऐसा कहकर कपिल श्रावस्ती चला जाता है। वहाँ जाकर उसने इन्द्रदत्त ब्राह्मण का घर ढूँढ लिया। तत्पश्चात् वह इन्द्रदत्त के पास पहुँचा। इन्द्रदत्त को प्रणाम करके उसने अपना परिचय दिया कि मैं 'काश्यप' ब्राह्मण का पुत्र हूँ और आपके सान्निध्य में विद्याध्ययन करने आया हूँ। आप अपनी शरण में रखकर मुझे विद्याध्ययन करवाईये।

इन्द्रदत्त ने कहा- वत्स! तू मेरे मित्र का ही पुत्र है। मैं तुझे सहर्ष अध्ययन करवाऊँगा, लेकिन मेरे यहाँ पर निर्धनता का साम्राज्य होने से मैं तेरे भोजन की व्यवस्था करने में समर्थ नहीं हूँ। तब तू कैसे अध्ययन करेगा ?

कपिल- आप मेरे भोजन की चिन्ता मत कीजिए क्योंकि ब्राह्मण तो भिक्षा-जीवी होता है। वह मात्र 'भिक्षादेहि' इतना-सा शब्द उच्चारण करे, तो उसे भिक्षा की कोई कमी नहीं रहती। वह यदि हस्ती पर आरूढ़ होकर वैभवशाली भी रहे या फिर भिक्षा भी मांगे तो दोनों ही स्थितियों में उसका सम्मान बरकरार रहता है। वह तो नृपतिवत् स्वाधीन रहता है, पराधीन नहीं।

इन्द्रदत्त- अरे! भिक्षा कभी नहीं मिली तो फिर... अच्छा! यहाँ एक शालिभद्र सेठ रहता है, चलो वही चलते हैं।

ऐसा कहकर इन्द्रदत्त, कपिल को अपने साथ लेकर शालिभद्र सेठ के घर तक पहुँच गया। वहाँ सेठ के घर के बाहर रहकर 'ऊँ भूर्भुवः स्वः... गायत्री मंत्र का उच्च-स्वर से उच्चारण करके अपनी उपस्थिति से सेठ को अवगत कराया।

सेठ शालिभद्र ने उन दोनों को घर के भीतर बुलवाया और पूछा कि तुम क्या चाहते हो ?

तब इन्द्रदत्त ने कहा- ये विप्रबालक परदेश से विद्याधन के लिए आया है। क्या आप इसको भोजन देंगे ? सेठ ने कहा- हाँ! इस प्रकार स्वीकृति मिलने पर वह कपिल प्रतिदिन इन्द्रदत्त के पास अध्ययन करता और भोजन करने के लिए शालिभद्र के यहाँ चला जाता। शालिभद्र सेठ ने एक तरुण दासी की नियुक्ति उसको भोजन करवाने के लिए कर दी थी। वह तरुण दासी प्रतिदिन कपिल को भोजन परोसती थी।

संसर्ग से दोनों के हृदय में कामदेव ने प्रवेश कर लिया और दोनों परस्पर समासक्त बनकर काम-क्रीड़ा में निमग्न बनने लगे। उस दासी ने कपिल को अपनाने का मन में निश्चय कर लिया।

एक दिन नगर में दासी-उत्सव था। तब उस दासी का मन खेद खिन्न हो गया। उसका मुरझाया बदन अवलोकन कर कपिल ने कहा- क्या बात है ? आज तुम्हारा चेहरा बहुत निःस्तेज लग रहा है ?

दासी- आज सब सखियाँ उत्सव में जायेंगी, लेकिन मेरे पास पत्र-पुष्पादि स्वल्प सामग्री भी नहीं है। मैं सब दासियों के बीच जाऊँगी तो मेरी निन्दा होगी। अब मैं क्या करूँ ?

कपिल चिन्तामग्न हो गया।

दासी- स्वामिन्! एक उपाय है।

कपिल- कौनसा ?

दासी- इस नगर में धन नामक सेठ है। प्रातःकाल जो मधुर ध्वनि सुनाकर उसे जगावे वह उसे दो मासा स्वर्ण देता है। आप यदि सर्वप्रथम उसे जगावें तो आपको स्वर्ण मिल सकता है।

कपिल- प्रिये! मैं अविलम्ब जाकर इस कार्य को सम्पन्न करूँगा। तुम चिन्ता मत करो।

कपिल अब इन्तजार करने लगा। इन्तजार के लम्हें लम्बे होते हैं। वह शाम होते ही इसी इन्तजार में था कि कब रात्रि व्यतीत हो और कब मैं स्वर्ण प्राप्त करूँ ? अर्धरात्रि जैसे-तैसे व्यतीत हुई, उसने सोचा अभी चला जाता हूँ, यदि और कोई पहुँच गया तो फिर अरमान धूल-धूसरित हो जायेंगे।

कपिल घर से बाहर निकल गया। सड़कों पर सन्नाटा छाया हुआ था। हवा सांय-सांय की ध्वनि करते हुए बह रही थी। कोई भी मानव उस सघन अन्धेरे में इधर-उधर जाता हुआ नहीं दिख रहा था, लेकिन कपिल तेज कदमों से चलता ही चला जा रहा था। उसकी तीव्र चाल को देखकर आरक्षकों ने उसे चोर जानकर पकड़ लिया। रातभर कैद में रखकर प्रातःकाल उसे राजा प्रसेनजित के पास लेकर गये।

राजा ने पूछा- तू कौन है ?

कपिल- मैं ब्राह्मण हूँ।

राजा- रात्रि में क्यों घूम रहा था ?

कपिल- मुझे दो मासा स्वर्ण प्राप्त करना था, इस कारण जल्दी ही घर से निकल गया कि अवसर न चूक जाऊँ।

राजा- अच्छा! मैं तेरी सत्यता पर मुग्ध हूँ। बोल तुझे कितना दूँ ? तू मांग ले।

कपिल- मैं चिन्तन करके मांगूंगा।

राजा- हाँ। यहाँ अशोक वन में तुम चले जाओ और चिन्तन करके मांगना।

कपिल- ठीक है, जाता हूँ।

ऐसा कहकर वह कपिल अशोक वन में चला गया और योगी की तरह चिन्तन करने लगा कि कितना मांगू... दो मासा... इतने से क्या होगा ? एक महीने की भी पूर्ति नहीं होगी। तब कितना... एक सौ सोनैया... इतने से क्या होगा... वैभव-समृद्धि नहीं मिलेगी...। तो एक हजार सोनैया... इतने मात्र से क्या होगा... विवाह नहीं हो पायेगा...। तब कितना मांगू... एक लाख सोनैया... इतने मात्र से क्या होगा... न मेरी सम्पूर्ण जिन्दगी चलेगी न मैं किसी का उद्धार कर पाऊँगा। तब कितना ? सौ करोड़ या हजार करोड़ सोनैया मांगू... ? गहन चिन्तन में निमग्न हो गया।

जागरण

अचानक चारित्र मोहनीय कर्म के क्षयोपशम² से विचारों में मोड़ आया। भीतर की यात्रा प्रारम्भ हुई। चिन्तन करने लगा- ओह! कहाँ मैं दो मासा कनक हेतु घर से निकला और कहाँ हजार करोड़ में भी तृष्णा का शमन नहीं हुआ। अरे! मैं कहाँ-से-कहाँ भटक गया। आया था अध्ययन के लिए, बन गया वासना का शिकार! वासना ने पैदा किया मन में विकार। हाँ! हाँ! विकार का दुष्परिणाम कि तृष्णा ने घेरा! लोभ ने फँसाया! धिक्कार है! धिक्कार! मुझे कुछ नहीं चाहिए। मुझे सर्वस्व का त्याग करना है।

कपिल के विचार ऊर्ध्वमुखी बनते ही चले गये, क्षयोपशम की तीव्रता से आवरण³ टूटने पर उन्हें जातिस्मरण ज्ञान हो गया। तत्पश्चात् उन्होंने वहीं अपने बालों का लुंचन किया और संयम जीवन स्वीकार कर लिया। उनको वहाँ साधुवेश देवों द्वारा दिया गया।

साधु जीवन स्वीकार करके कपिलमुनि नरेश के पास गये। राजा ने पूछा- बोलो विप्र तुम्हें कितना धन चाहिए ?

कपिलमुनि- मुझे अब धन नहीं चाहिए। क्योंकि आपने जब मुझे स्वेच्छित धन मांगने की बात कही तब धन लाभ के कारण मेरा लोभ द्रौपदी के चीरवत् बढ़ता ही चला गया। मैं दो मासा से कोटि स्वर्णमुद्रा मांगने तक पहुँच गया तथापि मेरी तृष्णा ने विराम नहीं लिया।

तब मैंने चिन्तन किया कि अरे! यह तृष्णा की विष बेल बढ़ती ही जा रही है, इसको रोकना चाहिए। मेरे अध्यवसाय शुभ बनने लगे और मैंने सम्पूर्ण तृष्णा का परित्याग करने के लिए सर्वविरति अणगार⁴ बनने का विनिश्चय⁵ कर लिया और मैं अणगार बन भी गया।

1 . निमग्न- डूबना/खो जाना/लीन होना 2. क्षयोपशम- उदय पुत्र कर्मों का क्षय, अनुदयप्राप्त का उपशम 3. आवरण- बन्धन 4. सर्वविरति अणगार- पंचमहाव्रत धारी साधु 5. विनिश्चय- विशेष निश्चय

राजा- अरे! मैं तुझे करोड़ सोनैया दूंगा। अब भी तू व्रत का परित्याग कर दे। प्राप्त भोगों का त्यागकर परभव में सुख पाने की इच्छा से साधु बनना उचित नहीं है।

कपिल- धन तो अनर्थ का मूल है। मुझे धन नहीं चाहिए। मैं अब निर्ग्रन्थ धर्म¹ का पालन करूँगा। तुम भी राजन्! धर्म का पालन करना।

ऐसा कहकर कपिलमुनि राजसभा से निकल गये। वे निर्मम, निस्पृह और निराहंकारी होकर विहार करने लगे और दृढ़ता से गृहीत चारित्र का पालन करने लगे। ऐसा करने से उस महामुनि को छह मास में केवलज्ञान उत्पन्न हो गया।⁷⁶

कपिल-केवली अपने कैवल्यज्ञान से सर्व द्रव्यों और सर्व पर्यायों को जानने देखने लगे। केवली बनकर कपिलमुनि ने राजगृह की तरफ विहार कर दिया।

श्रमणत्व का स्वरूप

उस समय श्रावस्ती से राजगृह जाने का मार्ग अत्यन्त दुरूह² एवं परिषर्हों से भरा हुआ था। उसमें अठारह योजन वाली एक विशाल अटवी आती थी, जिसमें 500 डाकुओं का एक दल था। बलभद्र नामक डाकू उन सभी डाकुओं का सरदार था। यह डाकू दल अनेक गाँवों, नगरों एवं पथिकों को लूटता रहता था और इस भूल-भुलैया वाली उबड़-खाबड़ अटवी में छिप जाता था। सेना के सबल जवान भी इन डाकुओं के गिरोह को पकड़ने में असमर्थ थे।

डाकूदल के निरीक्षक वृक्षों के ऊपर चढ़कर अटवी में प्रवेश करने वालों को देखते रहते थे और तत्पश्चात् अपने सरदार को निवेदन करते, जिससे वह सावधान हो जाता। कपिल-केवली अपने ज्ञान में यह सब जान रहे थे तथा ऐसा भी जानते थे कि उन्हीं के निमित्त से इन 500 डाकुओं का उद्धार होने वाला है। अतएव केवली भगवान उधर ही पधारने लगे।

कपिल केवली को आते देखकर एक आरक्षक³ ने सेनापति से कहा- अपने को पराजित करने के लिए कोई आ रहा है। सभी एकत्रित होकर मुनि के पास पहुँचे और मुनि से कहा- आप बहुत मधुर गाते हैं अतएव हमें गायन सुनाओ। मुनि ने गायन प्रारम्भ किया। ऐसा वृहद्वृत्ति⁷⁸ में उल्लेख मिलता है। त्रिषष्टि शलाका पुरुष में ऐसा उल्लेख मिलता है कि चोरों के सरदार ने कपिल-केवली को नाच दिखाने के लिए कहा और कपिल केवली ने नाच करते हुए गाया। लेकिन नाचने की बात संगत प्रतीत नहीं होती।⁷⁹ वृहद्वृत्तिकार का कथन प्राचीन एवं संगत प्रतीत होता है।

कपिल केवली ध्रुवपद⁴ गाने लगे। तत्पश्चात् चोर तालियाँ पीटकर उनका अनुसरण करने लगे। कोई चोर प्रथम गाथा श्रवण कर, कोई द्वितीय, कोई तृतीय इस प्रकार 500 चोर समग्र अध्ययन श्रवण कर प्रतिबद्ध⁵ हुए। कपिलमुनि ने 'क्या गाया' उसको स्वयं भगवान महावीर ने अपनी अन्तिम देशना उत्तराध्ययन सूत्र में फरमाया है।

1. निर्ग्रन्थ धर्म- भगवान महावीर द्वारा प्रतिपादित साधु धर्म 2. दुरूह- कठिन 3. आरक्षक- चहुँओर रक्षा करने वाले 4. ध्रुवपद- वृहद्वृत्तिकार ने ध्रुवपद तीन प्रकार के बतलाये हैं-चार पद, छह पद और दो पद जैसे अधुवे-असायमि.... ये ध्रुवपद है 5. प्रतिबुद्ध- बोध को प्राप्त/विरक्त/जागृत

वह समग्र वर्णन इस प्रकार है।

कपिल केवली ने स्वयं ही सर्वप्रथम जिज्ञासा प्रस्तुत करते हुए इस प्रकार गाया :

अधुवे असासयम्मि, संसारम्मि दुक्ख-पउराए।

किं णाम होज्ज तं कम्मयं, जेणाहं दोग्गइं ण गच्छेज्जा ? ||1||

अनुवाद : अध्रौव्य शाश्वत विहीन दुःखादि रूप।

संसार में सफल कर्म किसे कहा है ?

होवे न दुर्गति, मिले शुभ धर्मबीज,

ऐसे सुधर्म-धन की, उचिता समीहा।||1||

अर्थ - इस अध्रुव, अशाश्वत दुःखों से प्रचुर संसार में वह कौनसा कर्म है, जिसके कारण मैं दुर्गति में नहीं जाऊँ ?

विजहित्तु पुव्वसंजोगं, न सिणेहं कर्हिं चि कुव्वेज्जा।

असिणेह-सिणेह-करेहिं, दोस पओसेहिं मुच्चएभिकखू।|2||

सर्व सम्बन्ध परिहान करे तपस्वी,

स्नेहानुषकत जन से अति दूर होवे।

दोष प्रदोष सबसे परिमुक्त होता,

तो आत्म-शुद्ध सुख साधन युक्तता से।|2||

कपिल केवली स्वयं ही जिज्ञासा का समाधान करते हुए गाते हैं :

पूर्व संयोगों¹ का सर्वथा परित्याग करके फिर किसी पर भी आसक्ति मूलक स्नेह न करें। जो स्नेह करने वालों पर भी राग नहीं करता, वह इस लोक और परलोक में दुःख रहित हो जाता है।

तो नाण दंसणसमग्गो, हियनिस्सेसाए सव्वजीवाणं।

तेसिं विमोक्खणट्ठाए, भासई मुणिवरो विगयमोहो।|3||

पद्यानुवाद : पूर्णज्ञ सर्व परिदर्शन युक्त, मोह,

मुक्त-प्रमुक्त कपिलाख्य मुनि विशेष।

ने सर्व जीव हित साधन के लिए ही,

संसार मुक्तिपथ में दृति से कहा था।|3||

तब कैवल्यज्ञान और दर्शन से सम्पन्न कपिल केवली ने उन 500 चोरों के हित, कल्याण और अष्टविध कर्म विमुक्ति के लिए सतत् उपदेश दिया।

सव्वं गन्थ कलहंच, विप्पजहे तहाविहं भिकखू।

सव्वेसु कामजाएसु, पासमाणो न लिप्पईताई।|4||

कर्मादि बन्धन निमित्त परिग्रहों को,

त्यागे सदा, कलह के विषबीज को भी।

1. पूर्व संयोग- पूर्व परिचित माता-पिता आदि

ह काम भोग भव का ध्रुव सर्व हेतु,
होवे, न लिप्त उसमें मुनि आत्मा बोधी॥4॥

भिक्षु आभ्यन्तर और बाल इन सभी ग्रंथियों¹ और कलह² का त्याग करे। आत्मरक्षक मुनि सभी प्रकार के कामभोगों में अनर्थ देखता हुआ उनमें संलित न हो।

भोगामिस दोसविसण्णे, हियनिस्सेयसबुद्धिवोच्चत्थे।
बालेय मन्दिए मूढे, बज्झई मच्छिया व खेलंमि॥5॥

पद्यानुवाद : आसक्तिपूर्ण अरू आमिष रूप भोग,
में मग्न आत्महित मोक्ष विरूद्ध बुद्धि।
पूर्णाज्ञ मन्द अरू मूढ़ कुकर्मबद्ध,
जैसे बंधे नित श्लेष्म विपन्न मक्खी॥5॥

आत्मा को दोषयुक्त करने वाले भोगरूप आमिष³ में निमग्न तथा हितकारी और निःश्रेयस में विपरीत बुद्धिवाला बाल, मन्द और मूढ़ प्राणी उन कर्मों से उसी प्रकार आबद्ध हो जाता है, जैसे श्लेष्म में मक्खी आबद्ध हो जाती है।

दुपरिच्चया इमे कामा, नो सुजहा अधीरपुरिषेहिं।
अह सन्ति सुव्वया साहू, जे तरन्ति अतरं वणियाव॥6॥

पद्यानुवाद : है काम-दुष्कर अपार निजात हेतु,
ना छोड़ना सरल, किन्तु तरे तपस्वी।
अध्यात्म साधक सुदुस्तर काम-भोग,
जैसे तिरे वणिक पोत भयानकाब्धि॥6॥

ये कामभोग दुष्परित्याग रूप हैं। अधीर पुरुषों द्वारा सरलता से नहीं त्यागे जाते हैं। किन्तु जो निष्कलंक साधु हैं, वे इन दुस्तर⁴ कामभोगों को उसी प्रकार तैर जाते हैं, जैसे वाणिक नौका से रत्नाकर⁵ तैर जाता है।

समणा'म' एगे वयमाणा, पाणवहं मिया अयाणन्ता।
मन्दा निरयं गच्छन्ति बाला पावियाहिं दिट्ठीहिं॥7॥

पद्यानुवाद : आपाततः स्वयं को मुनि मानते हैं,
अज्ञानयुक्त पशु से विनिपातनादि।
को है नहीं समझते पर मन्द-बुद्धि,
होता सदा निरयपात अश्वयमेव॥7॥

1. ग्रंथियों- आभ्यन्तर और ब्राह्म परिग्रह रूप ग्रंथियों 2. कलह- क्रोध, वाक्कलह, झगड़ा, गाली गलौच 3. आमिष- आसक्ति 4. दुस्तर- कठिनाई से तैरने योग्य 5. रत्नाकर- समुद्र

हम श्रमण हैं ऐसा कहते हुए मृग-सम अज्ञानी जीव प्राणवध को नहीं जानते। वे मन्द बाल अपनी पाप-दृष्टियों से नरक में जाते हैं।

न हु पाणवहं अणुजाणे मुच्चेज्ज कयाइसत्वदुक्खाणं।
एवमारिएहिं अक्खायं जेहिं इमो साहुधम्मो पन्नसो॥८॥
पद्यानुवाद : साधुत्वधर्म विनिदेशक आर्य-पुत्रों,
ने है कहा, नित वद्याद्यनुमोदना से।
दुःखादिताप विनिवृत्ति कभी न होती,
संसार सागर निमज्जन सर्वथा है॥८॥

जिन तीर्थंकर भगवन्तों ने इस साधुधर्म की प्ररूपणा की है, उन आर्य-पुरुषों ने कहा कि जो प्राणवध का अनुमोदन करता है वह समस्त दुःखों से कदापि मुक्त नहीं होता।

पाणे न नाइवाएज्जा, से, समिए त्ति वुच्चई ताई।
तओ से पावयं कम्मं, निज्जाइ उदगं व थलाओ॥९॥
पद्यानुवाद : जो जीव हिंसन, अकार्य करे कभी न,
सम्यक्-प्रवृत्ति युत साधक है कहाता।
पापादि कर्म उसके सब दूर होते,
जैसे कि उच्च थल से, जल दूर जाता॥९॥

अर्थ : जो प्राणियों के प्राणों की हिंसा नहीं करता, वह त्रायी¹ जीव रक्षा करने वाला मुनि समित-सम्यक् प्रवृत्ति करने वाला कहलाता है। उसके जीवन से पापकर्म जैसे ही निकल जाता है जैसे उन्नत स्थल से जल।

जग णिस्सिएहिं भूएहिं, तस नामेहिं थावरेहिं च।
णो तेसिमरंभे दंडं, मणसा वयसा कायसा चेव॥१०॥
पद्यानुवाद : संसार में त्रस व थावर नाम जीव,
होते सदैव, मन वचन काय रूप।
से दण्ड का नहीं करे, इन पे प्रयोग,
होता अहिंसक वही, तपसाभिभूत॥१०॥

अर्थ : जगत् के आश्रित त्रस² और स्थावर³ नाम कर्मवाले जितने जीव हैं उनके लिए मन, वचन और काया से किसी भी प्रकार का दण्ड-प्रयोग मुनि न करे।

सुद्धेसणा उणच्चाणं, तथ्य ठवेज्ज भिक्खू अप्पाणं।
जायाए घासमेसेज्जा, रसगिद्धे ण सिया भिक्खाए॥११॥

1. त्रायी- दुर्गति से आत्मा की रक्षा करने वाला/छःकाय रक्षक 2. त्रस- जो जीव सुख-दुख से रक्षा हेतु चलते हैं, जैसे डीन्डिय आदि 3. स्यावर- जो जीव एक जगह स्थिर रहते हैं, वे स्थावर एकेन्द्रिय

पद्यानुवाद : शुद्धैषणा समझ के अनुरूप होके,
संस्थापना नित करे, परिपूर्णता से।
भिक्षार्थि संयमन के हित भोजनादि,
की एषणा नित लहे, रस गृह्य हो, न॥11॥

अर्थ : साधु शुद्ध एषणाओं को जानकर उसमें अपनी आत्मा को स्थापित करे। भिक्षु संयम यात्रा के लिए आहार ही एषणा करे, किन्तु रसों में गृह्य¹ न बने।

पंताणि चेव सेवेज्जा, सीय पिंडं पुराण कुम्मासं।
अदु बुक्कसं पुलागं वा, जणवट्टाए णिसेवएमंथुं॥12॥

पद्यानुवाद : भिक्षु स्वजीवन सुयापन के लिए ही,
प्रायः लहे सुरसहीन व शीतरूक्ष।
कल्पास, बुक्कस, पुलाक व मन्थु, बेर,
के चूर्ण को ग्रहण ही करता तपस्वी॥12॥

अर्थ : भिक्षु जीवनयापन के लिए प्रायः प्रान्त-नीरस अन्न-पान, शीत-पिण्ड, पुराने² कुल्माष (उड़द) पुलाक-रूक्ष, मंथु-बेरसत्तु आदि के चूर्ण का सेवन करे।

जे लक्खणं च सुविणं च, अंग-विज्जं च जे पउंजंति।
ण हु ते समणा वुच्चंति, एवं आयरिएहिं अक्खायं॥13॥

पद्यानुवाद : जो लोक लक्षण, समुद्र व अंग विद्या,
का संप्रयोग करता वह साधु है न।
संसारचक्र पतनोन्मुख है यथार्थ,
आचार्यवृन्द परिदिष्ट किया गया है॥13॥

अर्थ : जो भिक्षु लक्षणशास्त्र³, स्वप्नशास्त्र⁴ एवं अंगविद्या⁵ का प्रयोग करते हैं, वह वास्तव में श्रमण नहीं है ऐसा आचार्यों द्वारा कहा गया है।

इह जीवियं अणियमेत्ता, पब्भट्टा समाहि जोएहिं
ते काम-भोग रसगिद्धा, उववज्जंति आसुरेकाए॥14॥

पद्यानुवाद : तत्काल जीवन नियन्त्रण-हीन होके
जो साधनागत महापथ से गिरे हैं।
वे काम-भोग रस-सक्त बने हुए हैं
उत्पत्ति से असुर काय अवश्य भावी॥14॥

अर्थ : जो साधक जीवन को अनियंत्रित रखने के कारण समाधि योग⁶ से परिभ्रष्ट⁷ हो जाते हैं वे कामभोग और रसासक्त बने आसुरकाय में उत्पन्न होते हैं।

1. गृह्य- आसक्त 2. पुराने- बासी 3. लक्षण शास्त्र- शरीर के शुभाशुभ चिन्ह बताने वाले शास्त्र
4. स्वप्न शास्त्र- शुभाशुभ स्वप्नफल बताने वाले शास्त्र 5. अंगविद्या- अंग-स्फुरन अथवा आरोग्य
शास्त्र 6. समाधि योग- शुभचित्त की एकाग्रता 7. परिभ्रष्ट- पतित होना/गिरना

तत्तोऽवि य उच्चकृत्ता, संसारं बहुं अणुपरियडंति
 बहुकम्भ-लेव-लित्ताणं, बोही होइ सुदुल्लहा तेसिं॥15॥
 पद्यानुवाद : भोगाद्यनन्तर विनिर्गत हो वहाँ से
 संसारचक्र लहते बहु कालकर्मी
 स्नेहासक्त कर्म परिलिप्त सहेतुता से
 संबोधि धर्म अतिदुर्लभ नित्य होता॥15॥

अर्थ : तत्पश्चात् वहाँ से निकलकर भी वे बहुत काल तक संसार मं परिभ्रमण करते हैं।
 बहुत कर्मों के लेप से लिप्त होने के कारण उनको बोधि-धर्म¹ का प्राप्त होना अत्यन्त दुर्लभ है।

कसिणं पि जो इमं लोयं, पडिपुण्णं दलेज्ज इक्कस्स।
 तेणावि से ण संतुस्से, इह दुप्पूरए इमे आया॥16॥
 पद्यानुवाद : होवे धनादि अरू धान्य विशेषपूर्ण,
 देवे समग्र यदि विश्व किसी गृही को।
 सन्तुष्टि को न लहता, वह जीव सत्य,
 दुष्पर है, यह यहाँ परिलोभ भाव॥16॥

अर्थ : धन-धान्य से परिपूर्ण विश्व यदि किसी एक व्यक्ति को दे दिया जाये तो भी वह
 उससे सन्तुष्ट नहीं होगा क्योंकि लोभाभिभूत आत्मा दुष्पर² है।

जहा लाहो तहा लोहो, लाहा लोहो पवडुइ।
 दो-मास कयं कज्जं, कोडीए वि ण णिट्ठियं॥17॥
 पद्यानुवाद : लाभादि से सतत् लोभ बढ़े जहाँ में
 ये सत्य है, न इसमें परिशेष शंका।
 लोभाभिभूत जन को यदि हेमराशि,
 पर्याप्त लब्धि पर भी, परितोष है क्या ?॥17॥

अर्थ : जैसे-जैसे लाभ होता है, वैसे-वैसे लोभ बढ़ता जाता है। दो मासा स्वर्ण से होने वाला
 कार्य करोड़ों से भी पूर्ण नहीं हुआ।

णो रक्खसीसु गिज्जेज्जा, गंडवच्छासु ऽणेग चित्तासु।
 जाओ पुरिसं पलोभित्ता, खेलंति जहा व दासेहिं॥18॥
 पद्यानुवाद : पीनत्व वक्ष-थल से विष रूप धारी
 फैली विशेष जिनमें बहुवासनाएँ।
 लोभ प्रलोभ करके निज दास मानें
 ऐसी पिशाच महिलाजन में, न राग॥18॥

1. बोधिकर्म- जिन धर्म 2. दुष्पर- कठिनाई से पूर्ण करने योग्य

अर्थ : जिनके वक्षस्थल में ग्रंथियां हैं, जो अनेक कामनाओं वाली हैं, जो पुरुषों को प्रलोभन में फँसाकर खरीदे हुए दास की भाँति नचाती हैं। ऐसी वासना की दृष्टि से राक्षसी¹ स्वरूप स्त्रियों में आसक्त नहीं होना चाहिए।

णारीसु णेव गिज्जेज्जा, इत्थी विप्पजहे अणगारे।

धम्मं च पेसलं णच्चा, तत्थ ठवेज्ज भिक्खू अप्पाणं॥19॥

पद्यानुवाद : नारी विलोक, अणगार न मुग्ध होवे,

एकान्त आत्महित साधनशीलता से।

जाने मनोज्ञ-गुणभव्य स्वरूप धर्म,

साधुत्व है, परमशांति विकासकारी॥19॥

अर्थ : स्त्रियों का परित्याग करने वाला अणगार उन नारियों में आसक्त न हो। साधुधर्म को पेशल-अत्यन्त कल्याणकारी जानकर भिक्षु उसी में अपनी आत्मा को स्थापित करें।

इइ एस धम्मे अक्खाए, कविलेणं च विसुद्ध पण्णेणं।

तरिहन्ति जेएकाहन्ति, तेहिं आराहिया दुवे लोग॥20॥

पद्यानुवाद : प्रज्ञा-विशुद्ध कपिलादिक ने कहा है,

आराधना नित करे इस धर्म की जो।

वो जीव पार भव के नव छोर पाता,

संसाधना कर सके, उभलोक की भी॥20॥

अर्थ : विशुद्ध प्रज्ञावाले कपिल मुनिवर ने इस साधुधर्म का प्रतिपादन किया है। जो इसकी सम्यक् आराधना करेंगे वे संसार-सागर को पार करेंगे और उनके द्वारा उभयलोक आराधित होंगे।

उदायन राजा एवं कपिल केवली का वृत्तान्त श्रवण कर अभयकुमार के मन में वैराग्य का अंकुर लहलहाने लगा। उसने अपने उत्तरदायित्व को धीरे-धीरे अन्य मंत्रियों को सौंपने का कार्य प्रारम्भ कर दिया और निर्लिप्तता का वरण करने लगा। बहुत आवश्यक होने पर वह राज्यकार्य में भाग लेता था। वह भगवान महावीर के उपदेशों को जीवन में आत्मसात् करने में लग गया।

अमय बना अभयदाता

एक दिन उने भगवान महावीर से श्रवण किया कि प्रत्येक क्षण जो व्यतीत हो रहा वह अमूल्य है उसे लौटाया नहीं जा सकता अतएव समय रहते हुए धर्माधना कर लेनी चाहिए। मृत्यु का कोई भरोसा नहीं है, किस समय आ जाये। अतएव शरीर के सशक्त रहते हुए आत्मसाधना में लग जाना चाहिए।

भगवान महावीर की निर्वेद-प्रधान वाणी श्रवण कर उसके (अभयकुमार) मन-मन्दिर में विरक्ति का दीपक जगमगाने लगा। इन्हीं विरक्ति के पलों में समालीन² अभयकुमार संसार के बन्धनों को पाशवत् मानकर उनको तोड़ने के लिए समुत्सुक बन गया।

1. राक्षसी- साधना विधातक 2. समालीन- युक्त

इन्हीं प्रशस्त विचारों में रमण करता हुआ वह मगधेश श्रेणिक के पास पहुँचा और विनम्र होकर निवेदन किया- पिताश्री! मैंने भगवान महावीर की वाणी श्रवण की और मुझे संसार से विरक्ति हो गयी है। अतएव मैं भगवान के श्रीचरणों में संयम ग्रहण करना चाहता हूँ।

राजा श्रेणिक- वत्स! अब मैं वृद्ध हो गया हूँ। तुम राज्यश्री का वरण करो। राज्य संचालन करने के पश्चात् फिर संयम ग्रहण करना।

अभयकुमार- तात! भगवान महावीर ने फरमाया कि वीतिभय के राजा उदायन के बाद अब कोई राजर्षि मुझसे संयम ग्रहण नहीं करेगा। अतएव राज्यश्री का उपभोग करने पर मैं संयम से वंचित रह जाऊँगा। इसलिए आप मुझे संयम ग्रहण करने की अनुज्ञा प्रदान कीजिए।

राजा श्रेणिक- वत्स! राजगृह का क्या होगा ? और मेरा...।

अभय- पिताश्री! आपके कई योग्य पुत्र राज्य धुरा का वहन करने में सामर्थ्यवान हैं। अतएव आप मुझे संयम मार्ग से वंचित न कीजिए। मेरा मनअब संसार से पूर्ण विरक्त बन गया है।

राजा श्रेणिक- अभय! तुम्हारा दृढ़ निश्चय देखकर मैं तुम्हें सहर्ष संयम ग्रहण करने की अनुमति देता हूँ⁸¹।

अपने पिताश्री राजा श्रेणिक से अनुमति ग्रहण करने के पश्चात् अभयकुमार ने अपनी माता नन्दा से संयम ग्रहण करने की अनुमति माँगी। माँ नन्दा ने कहा - वत्स! तू ही जब चला जायेगा तो मैं यहाँ संसार में रहकर क्या करूँगी ? मैं भी तेरे साथ संयम ग्रहण करूँगी। ऐसा चिन्तन कर नन्दा ने भी सम्राट श्रेणिक से संयम ग्रहण करने की अनुमति माँगी। सम्राट श्रेणिक ने नन्दा महारानी को संयम ग्रहण करने की अनुमति प्रदान की।

अनुमति मिलने पर नन्दा महारानी ने राजा श्रेणिक द्वारा प्रदत्त दिव्य कुण्डल और दिव्य वस्त्र युगल हल्ल-विहल्ल को दे दिये और अभयकुमार एवं नन्दा महारानी ने भगवान महावीर के मुखारविन्द से भव्य भगवती दीक्षा अंगीकार कर ली।*

अभय दीक्षा समीक्षा

जब अभयकुमार राजा श्रेणिक से दीक्षा की अनुमति माँगते हैं तब राजा श्रेणिक कहते हैं कि जिस दिन मैं तुझसे रूष्ट होकर यह कह दूँ - दूर हट जा, चला जा। उस दिन तू श्रमण बन जाना।

अभयकुमार ने यह बात स्वीकार कर ली और जब एक दिन राजा श्रेणिक को चलना के चारित्र पर सन्देह हुआ और अभयकुमार को अंतःपुर के महलों में आग लगाने को कहा तब अभयकुमार ने आग लगायी। इस बीच में राजा का सन्देह भगवान महावीर ने मिटा दिया तब राजा

*दीक्षा ग्रहण करने के पश्चात् अभयकुमार ने विविध प्रकार के अभिग्रह पूर्वक तप करते हुए निर्मल चारित्र का पाँच वर्ष तक पालन किमा एक मास का पादपोगमन अनशन किमा और अन्त में सर्वार्थसिद्ध विमान में उत्तम देवरूप में उत्पन्न हुए। ऐसा-त्रिषष्टि में उल्लेख है लेकिन अनुत्तरोपतातिकशास्त्रानुसार अभयकुमार विजय विमान में देव रूप में उत्पन्न हुआ।

ने अभयकुमार से कहा- तूने बुद्धि से काम नहीं लिया, हट जा यहाँ से। (यह विस्तृत वर्णन अपश्चिम तीर्थंकर महावीर भाग 2 में है, वहाँ से देखें)। तब वह भगवान के पास चला गया उसने संयम ग्रहण कर लिया। इधर राजा श्रेणिक महारानी चेलना के महलों में पहुँचे तो सबकुछ सुरक्षित देखकर पुनः भगवान के पास पहुँचे अभयकुमार दीक्षित हो गया था।

अभयकुमार की दीक्षा के पश्चात् भी भगवान महावीर राजगृह नगर में विराज रहे थे। अद्भुत ठाठ राजगृह नगर में लगा हुआ था। अनेक राजकुमार नित्यप्रति भगवान महावीर की धर्मदेशना को जीवन में उतार रहे थे।

राजकुमार बने मुनि

मगध सम्राट श्रेणिक की धारिणी महारानी के तेरह राजकुमार दीर्घसेन, महासेन, लष्टदन्त, गुद्धदन्त, शुद्धदन्त, हल्ल, द्रुम, द्रुमसेन, महाद्रुमसेन, सिंह, सिंहसेन, महासिंहसेन, पुण्यसेन जिनके जन्म के समय महारानी ने सिंह का स्वप्न देखा था, जिनका जन्म बाल्यकाल और कला-ग्रहण आदि जालीकुमार की तरह हुए। वे सारे तेरह ही राजकुमार भगवान महावीर की वाणी श्रवण कर विरक्त बने। इन्होंने भी मगध सम्राट श्रेणिक और धारिणी महारानी से संयम ग्रहण करने की अनुज्ञा मांगी।

अनेक तर्क-वितर्क से समझाने पर भी जब इनका मन संयम लेने के लिए दृढ़ीभूत बना रहा तब माता-पिता ने अनुमति प्रदान कर दी। अनुमति मिलने पर तेरह ही राजकुमारों ने भगवान महावीर से संयम⁸⁵ ग्रहण कर लिया।*

नन्दा आदि महारानियों की दीक्षा

राजगृह नगर में धर्म-ध्यान, त्याग-तप का अभूतपूर्व ठाठ लगा हुआ था। दीक्षाओं का मानो मेला-सा लग गया। जब राजा श्रेणिक की नन्दा आदि महारानियों को भगवान के आगमन का

टिप्पणी - 1 इनका बाल्माकालादि का सारा वर्णन मेघकुमार की तरह भी जान सकते हैं। इन तेरह महर्षिओं ने सोलह-सोलह वर्ष तक संयम पालन किया। तेईस राजकुमारों ने एक मास का पादपोगमन अनशन किया। दीर्घसेन तथा महासेन विजम विमान में, लष्टदन्त तथा गूद्धदन्त वैजमन्त विमान में, शुद्धदन्त तथा हल्ल जमन्तविमान, द्रुम तथा द्रुमसेन अपराजित विमान में तथा महाद्रुमसेन, सिंह, सिंहसेन, महासिंहसेन तथा पुण्यसेन में पाँच सर्वार्थसिद्ध विमान में उत्पन्न हुए।

टिप्पणी - 2 अनुत्तरोपपातिक के प्रथम और द्वितीय दोनों वर्गों में लष्टदन्त राजकुमार का वर्णन आया है। प्रथम वर्ग में सातवाँ तथा द्वितीय वर्ग में तीसरा लष्टदन्त कुमार का अध्ययन है। दोनों की माता धारिणी तथा पिता श्रेणिक हैं। संभव है धारिणी नाम वाली महारानियाँ दो हो अथवा लष्टदन्त नाम वाले दो राजकुमार हों। (तत्त्वं तु केवलिगभ्यम्)

समाचार मिला तब उन्होंने अपने धार्मिक रथ तैयार करवाये और 1. नन्दा 2. नन्दवती 3. नन्दोत्तरा 4. नन्दश्रेणिका 5. मरूता 6. सुमरूता 7. महामरूता 8. मरूदेवा 9. भद्रा 10 सुभद्रा 11. सुजाता 12. सुमनायिका 13. भूतदत्ता ये तेरह ही महारानियाँ समवशरण में पहुँची।

भगवान की भवजल तारिणी वाणी श्रवण की। अन्तर्मन में वैराग्य के अंकुर प्रस्फुटित हुए। श्रेणिक राजा से आज्ञा ली और तेरह ही महारानियों ने संयम अंगीकार कर लिया।⁸⁶

राजगृह में नित्य प्रति दीक्षा का महोत्सव हो रहा था। अनेक भव्यात्माएँ राजा श्रेणिक की धर्मदलाली से मोक्ष-मार्ग की ओर अग्रसर हो रही थी। ऐसी भव्य प्रभावना के कारण परम कृपालु भगवान महावीर राजगृह की भूमि को पावन कर रहे थे।

तभी वर्षावास का समय सन्निकट आया और भगवान ने केवलीचर्या का यह सातवाँ चातुर्मास भी राजगृह में ही करने का विनिश्चय कर लिया।

राजगृह का भव्यातिभव्य चातुर्मास चल रहा है। वहाँ की धर्मपरायण, धर्मप्रेमी जनता वर्षावास का अतीव आनंद उठा रही है। ऐसे महान् चरम तीर्थंकर भगवान की अमृतवाणी श्रवण करके भव्यात्माएँ अपने कर्म मैल को अपगत¹ कर रही थीं।⁸⁷ वे प्रभु की वाणी श्रवण करके स्वयं को धन्य मान रहे थे। सुख का समय बिजली की चमक की तरह शीघ्र ही समाप्त हो जाता है। यह चातुर्मास भी ऐसे ही व्यतीत हो गया।

प्रभु के विहार करने का समय आ गया। वहाँ की जनता ने गीली आँखों से भगवान का विहार करवाया और जनता पुनः लौट आई।

*दीक्षा लेकर तेरह ही महारानियों ने ग्यारह अंगों का अध्ययन किया, बीस वर्ष तक चारित्र्य पर्याय का पालन किया। अंत में कर्मक्षय करके सिद्ध गति को प्राप्त किया।

अनुत्तर ज्ञानचर्या का सातवाँ वर्ष - टिप्पण

1. विपुल

विशाल को कहते हैं। एक बार कष्ट सहन किया जा सकता है, दो या तीन बार कष्ट का सामना किया जा सकता है, परन्तु लगातार छह महीनों तक कष्टों की छाया तले रहना कितना कठिन कार्य है ? जिधर जाओ उधर अपमान, जिस घर में प्रवेश करो वहाँ अनादर की वर्षा, सम्मान का कहीं चिन्ह भी नहीं। ऐसी दशा में मन को शान्त रखना, क्रोध को निकट न आने देना, बड़ा ही विलक्षण साहस है और बड़ी विकट तपस्या है, अपूर्व सहिष्णुता है। सम्भव है इसीलिए सूत्रकार ने अर्जुनमुनि की जप साधना को विपुल (विशाल, बड़ी) कहा है।

2. विद्युन्माली

विद्युन्माली का जीव भवदेव के भव में दीक्षा लेता है और नवविवाहिता अपनी पत्नी के ऊपर मोह जागृत हो जाता है, लेकिन पत्नी द्वारा बोध प्राप्त होने पर संयम में स्थिर हो जाता है वही जीव चौथे भव में विद्युन्माली देव बनता है।

3. च्यवन

देवलोक आदि से पतन होना, मृत्यु को प्राप्त होना, देवता की मृत्यु।

भगवती. 7/15, आचारांग 1/3, 2/रायपसेणिय/5/अर्धमागधी कोष/भाग 2

4. जातिस्मरण

गत जन्मों का स्मरण, मतिज्ञान का भेद, जिसके द्वारा अधिक से अधिक 900 भवों-जन्मों की बात जानी जा सकती है, एक प्रकार का ज्ञान

उत्तराध्ययन 19/7 दशाश्रुतस्कन्ध/5/19, अर्धमागधी कोष/भाग 2/पृष्ठ 819

5. कायोत्सर्ग

कुछ ग्रन्थों में, आभ्यन्तर तप में माने गये, 'व्युत्सर्ग' के स्थान पर कायोत्सर्ग का उल्लेख मिलता है। अतः कायोत्सर्ग क्या है ? इस पर प्रकाश डालना यहाँ प्रसंगगत आवश्यक है।

कायोत्सर्ग की परिभाषा/लक्षण, प्रायः सभी आगम ग्रन्थों में सहज ही देखे जा सकते हैं। जिनमें बतलाया गया है - देह में ममत्व की निरास करना, परिमित काल के लिए शरीर में होने वाली ममत्व बुद्धि का त्याग करना, देह को अचेतन नश्वर व कर्मजनित मानते हुए उनके पोषण आदि के निमित्त कोई कार्य न करना, जिस मुनि का शरीर जल्ल और मल्ल से लिप्त हो या दुस्सह रोग के हो जाने पर जो उसका इलाज न कराता हो, शरीर के अंग धोने में जो उदासीन हो, भोजन, शय्या आदि की अपेक्षा न करता हो, दुर्जन व सज्जन के प्रति मध्यस्थ हो, शरीर में ममत्व न रखता हो, सिर्फ अपने स्वरूप चिन्तन में लीन रहता हो, उसे कायोत्सर्ग नाम का तप होता है। जबकि मूलाचार

में दैवसिक निश्चित क्रियाओं में यथोक्त काल प्रमाण पर्यन्त उत्तम क्षमा आदि रूप, जिन गुणों की भावना करते हुए ममत्व का छोड़ना कायोत्सर्ग बतलाया गया है। नियमसार का मत है - काय आदि द्रव्यों में स्थिर भाव को छोड़कर, निर्विकल्प रूप से आत्मा का ध्यान करना कायोत्सर्ग है। तात्पर्याख्यावृत्ति के अनुसार-काय सम्बन्धी समस्त क्रियाओं की निवृत्ति को कायोत्सर्ग बतलाया गया है। कर्मों के विनाश की अभिलाषा रखने वाला मुमुक्षु निर्जन, एकान्त जन्तुओं से रहित स्थान में टूठ की तरह सीधा हाथों के नीचे की ओर लटकाए हुए खड़ा होकर, शरीर से निस्पृह होकर, शरीर को न जो अकड़ाया हुआ, न ही झुकाया हुआ बल्कि एकदम सीधा रखता हुआ, परीषहों और उपसर्गों को सहता हुआ, प्रशस्त ध्यान में स्थित होता है, यही उसका कायोत्सर्ग है।

इस विवेचन के निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है - बाहर के क्षेत्र में वस्तु आदि का और आन्तरिक क्षेत्र में कषायों आदि का नियत व अनियत काल के लिए, शरीर पर से ममत्व बुद्धि को छोड़कर, उपसर्गों को जीतता हुआ अन्तमुहूर्त से लेकर वर्ष पर्यन्त तक शुद्धात्मा का ध्यान करते हुए निश्चल खड़ा रहना कायोत्सर्ग है। इस कायोत्सर्ग में प्रायश्चित्त स्वरूप किया गया व्युत्सर्ग भी समाहित हो जाता है।

राजवार्तिक 6/24/12

योगसार 5/52

कार्तिकेयानुपेक्षा 467/468

मूलाचार /28

नियमसार /121

मूलाराधना 2/116 विजयोदया /पृष्ठ 278

6. नरक

एक बार राजा श्रेणिक शिकार खेलने गया। वहाँ वन में उसने एक गर्भवती हिरणी को बाण मारा। हिरणी का पेट फट गया, उसका गर्भस्थ शिशु बाहर निकलकर गिरा। सभी ने राजा के अचूक निशाने की प्रशंसा की। राजा भी बहुत हर्षित हुआ। इस घोर पाप के कारण वह नरक का बंध कर लेता है।

अधार - श्रेणिक चारित्र/दाल 18

7. तीर्थकर

राजा श्रेणिक का जीव उत्सर्पिणी काल का दूसरा आरा समाप्त होने पर तीन वर्ष साढ़े आठ माह बाद वैतादृत्य पर्वत के समीप पुण्डरीक देश के शतद्वार नामक नगर में जन्म ग्रहण करेगा। इनकी माता का नाम भद्रा होगा।

श्रेणिक का जन्म नाम पद्मनाभ होगा। पूर्णभद्र मानभद्र देव सेवा करेंगे, इसलिए देवसेन नाम होगा तथा चार दांत वाला हाथी उसका वाहन होगा, इस कारण उसका नाम विमल-वाहन होगा।

72 वर्ष की आयु होगी। भगवान महावीर के समान ही लोगों का कल्याण करके सिद्ध-बुद्ध और मुक्त होगा।

इसके पश्चात् तीसरे और में अन्य 23 तीर्थंकर होंगे तथा उसके उपरान्त युगलिक युग प्रारम्भ हो जायेगा।

श्रेणिक चरित्र/ढाल 83, भगवती सूत्र।

8. पोतानपुर

यह प्राचीनकाल में अस्मक देश की राजधानी थी। यहाँ के राजा प्रसन्नचन्द्र ने भगवान महावीर के पास दीक्षा ली थी। चरित्रकारों के मत से महावीर ने पोतानपुर तक विहार किया था। बौद्धग्रन्थों में इसका नाम पोतली लिखा है। यह स्थान गोदावरी के उत्तर तट पर अवस्थित था। सातवाहन की राजधानी प्रतिष्ठान और आजकल का पैठन, ये पोतानुर के उत्तरकालीन नाम हैं।

आधार ग्रन्थ -श्रमण भगवान महावीर/ वही/ पृ. 383

9. पुत्र

जो पिता, पितामह आदि की अर्थात् अपने वंश की मर्यादा का पालन करे उसे पुत्र कहते हैं। पुत्र दस प्रकार के हैं -

1. आत्मज - अपनी स्त्री से उत्पन्न हुआ। जैसे भरत चक्रवर्ती का पुत्र आदित्यशशा।
2. क्षेत्रज - सन्तानोत्पत्ति के लिए स्त्री क्षेत्र रूप मानी गयी है। उसकी अपेक्षा पुत्र क्षेत्रज जैसे पाण्डु राजा की पत्नी कुन्ती के पुत्र युधिष्ठिर आदि।
3. दत्तक - गोद लिया पुत्र जैसे बाहुबली का पुत्र अनिलवेग।
4. विनयित - अपने पास रखकर जिसे अक्षर ज्ञान या धार्मिक शिक्षा दी जाये।
5. औख - जिस बच्चे पर पुत्र के समान स्नेह पैदा हो गया।
6. मौखर - जो पुरुष किसी व्यक्ति की चापलूसी करके अपने आपको उसको पुत्र बतलाये।
7. शौंडीर - कोई शूरीर किसी वीर को अपने अधीन करे वह अधीन किया हुआ व्यक्ति अपने आपको उसका पुत्र माने।
8. संवर्द्धित : भोजनादि देकर जिसका पालन किया जाये। जैसे-अनाथ।
9. उपयाचित - देवादि आराधना करने से जो पुत्र उत्पन्न हो अथवा सेवा करना ही जिसका उद्देश्य हो वह उपयाचित है।
10. अन्तेवासी - समीप रहने वाला। शिष्य भी धर्म शिक्षा की अपेक्षा अन्तेवासी पुत्र है।

ठाणांग 10/3/762

10. प्रव्रजित होने के 10 कारण

“छंदा रोसा परिजुण्णा, सुविणा पडिसुत्ता चेव।

सारणिया रोगिणिया अणाढित्ता देवसण्णत्ती वच्छाणु बंधिता।”

निम्नलिखित 10 कारणों से भी मनुष्य दीक्षा स्वीकार करता है।

1. छन्द - अपने या दूसरे की इच्छा से दीक्षा लेने को 'छन्द' प्रव्रज्या कहते हैं।
2. रोष - क्रोध से दीक्षा लेना।
3. परिधूना - गरीबी के कारण दीक्षा लेना।
4. स्वप्न - विशेष प्रकार का स्वप्न आने से दीक्षा लेना।
5. प्रतिश्रुत : पहले की हुई प्रतिज्ञा के कारण दीक्षा लेना।
6. स्मरण - स्मरण अर्थात् किसी के द्वारा स्मरण कराने से या कोई दृश्य देखने से जातिस्मरण ज्ञान होना और पूर्वभव को जानकर दीक्षा ले लेना।
7. रोगिणिका - रोग के कारण संसार से विरक्ति हो जाने पर ली गई दीक्षा।
8. अनादर - किसी के द्वारा अपमानित होने पर ली गई दीक्षा अथवा मन्द उत्साह से ली गई दीक्षा।
9. देव संज्ञामि - देवों के द्वारा प्रतिबोध देने पर ली गई दीक्षा।
10. वत्सानुबन्धिका - पुत्र स्नेह के कारण ली गई दीक्षा।

ठाणांग 10 सूत्र 712 उद्धृत - जिठाधम्मो

11. प्रत्येक बुद्ध

प्रत्येक बुद्धों को धर्म की प्राप्ति बैल आदि निमित्तों को देखकर होती है। उनकी जघन्य उपधि मुँहपत्ति एवं रजोहरण है तथा उत्कृष्ट उपधि मुँहपत्ति, रजोहरण और सप्तविधि पात्रनियोग है। उनका श्रुतज्ञान पूर्वभव सम्बन्धी होता ही है। वह जघन्य से ग्यारह अंग का तथा उत्कृष्ट से किंचित् न्यून दशपूर्व का होता है। इनको वेषार्पण देव द्वारा ही होता है। कदाचित् ये लिंग रहित भी होते हैं। प्रत्येक बुद्ध एकाकी ही विचरण करते हैं। गच्छ में नहीं जाते हैं।

प्रत्येक बुद्ध को सम्यक्त्व की प्राप्ति बाह्य कारणों से ही होती है। जैसे बादलों की बनती बिगड़ती रचना देखकर, बसन्त ऋतु में हरे-भरे पेड़ को पतझड़ में टूठ के रूप में देखकर उसे संसार से विरक्ति हो जाती है।

प्रवचन सारोद्धार/गाथा 524/527

12. अनार्य देश

आर्य क्षेत्र की सीमा पूर्व दिशा में मगध तथा अंग की सीमा तक, दक्षिण में कौशाम्बी की सीमा तक, पश्चिम में स्थूणा (कुरुक्षेत्र) की सीमा तक तथा उत्तर में कुणाल देश की सीमा तक थी। इसी आर्यक्षेत्र में साधुओं और साध्वियों को विहार करने का आदेश था। केवलज्ञान प्राप्ति के

पश्चात् भगवान महावीर ने आर्य क्षेत्र की सीमा इस प्रकार बांधी :

यह आर्य क्षेत्र धर्म प्रधान भूमि है। यह आर्य क्षेत्र की सीमा में समय-समय पर परिवर्तन होते रहते हैं। एक काल का आर्य क्षेत्र दूसरे काल में अनार्य क्षेत्र और एक काल का अनार्य क्षेत्र दूसरे काल में आर्य क्षेत्र घोषित होते रहते हैं।

तीर्थकर महावीर/भाग1/लेखक श्री विजयेन्द्रसूरि/प्रकाशक /काशीनाथ सराक/यशोधर्म
मन्दिर 166 मर्जबान रोड, अंधेरी, बम्बई 58/ पृष्ठ 47/48

13. दीक्षार्थी के 16 गुण

दीक्षा लेने वाले व्यक्ति में नीचे लिखे 16 गुण होने चाहिए -

1. **आर्यदेश समुत्पन्न**- प्रायः आर्यदेश में उत्पन्न व्यक्ति ही दीक्षा के योग्य होता है।
2. **शुद्ध जाति कुलान्वित**- जिसके जाति अर्थात् मातृपक्ष और कुल अर्थात् पितृपक्ष दोनों शुद्ध हों। प्रायः शुद्ध जाति और कुल वाला संयम का निर्दोष पालन करता है। किसी प्रकार की भूल होने पर कुलीन होने के कारण रथनेमि की तरह सुधार कर लेता है।
3. **क्षीणप्रायः शुभकर्मा**- जिसके अशुभ अर्थात् चरित्र में बाधा डालने वाले कर्म प्रायः क्षीण अर्थात् नष्ट हो गए हों।
4. **विशुद्ध धी**- अशुभ कर्मों के दूर हो जाने से जिसकी बुद्धि निर्मल हो गई हो। निर्मल बुद्धिवाला धर्म के तत्व को अच्छी तरह समझकर इसका शुद्ध पालन करता है।
5. **विज्ञात संसार नैर्गुण्य**- जिस व्यक्ति ने संसार की निर्गुणता (व्यर्थता) को जान लिया हो। मनुष्य जन्म दुर्लभ हैं, जिसका जन्म होता है उसकी मृत्यु अवश्य होती है। धन सम्पत्ति चंचल है, सांसारिक विषय दुःख के कारण है। जिसका संयोग होता है। उसका वियोग होता है, आवीचिमरण से प्राणियों की मृत्यु प्रतिक्षण होती रहती है। इस प्रकार संसार के स्वभाव को जानने वाला व्यक्ति दीक्षा का अधिकारी होता है।
6. **विरक्त**- जो व्यक्ति संसार से विरक्त हो गया हो, क्योंकि सांसारिक विषय भोग में फंसा हुआ व्यक्ति संयम का पालन नहीं कर सकता।
7. **मन्दकषाय भाजक**- जिस व्यक्ति के चारों कषाय मन्द हो गये हों। स्वयं अल्पकषाय वाला होने के कारण वह अपने और दूसरे के कषाय को शांत कर सकता है।
8. **अल्पहास्यादि विकृति**- जिसके हास्यादि नौकषाय कम हों। अधिक हँसना आदि गृहस्थों के लिए भी निषिद्ध है।
9. **कृतज्ञ**- जो दूसरों के द्वारा किये हुए उपकार को मानने वाला हो। कृतघ्न व्यक्ति लोक में निन्दा का पात्र होता है, इसलिए भी वह दीक्षा के योग्य नहीं होता।
10. **विनय**-विनीत- दीक्षार्थी विनयवान् होना चाहिए क्योंकि विनय ही धर्म का मूल है।
11. **राजसम्मत**- दीक्षार्थी राजा, मंत्री आदि के सम्मत अर्थात् अनुकूल होना चाहिए।

राजा आदि से विरोध करने वाले को दीक्षा देने से अनर्थ होने की संभावना रहती है।

12. **अद्रोही-** जो झगड़ालु तथा ठग, धूर्त न हो।

13. **सुन्दरांगभूत-** सुन्दर शरीर वाला हो। कोई अंगहीन या गला हुआ नहीं होना चाहिए। अपंग या नष्ट अवयव वाला व्यक्ति दीक्षा के योग्य नहीं होता।

14. **श्रद्धा-** श्रद्धा वाला। दीक्षित भी यदि श्रद्धारहित हो तो अंगारमर्दक के समान त्याज्य है।

15. **स्थिर-** जो अंगीकार किये हुए व्रत में स्थिर रहे। प्रारम्भ किये हुए शुभ कार्य को बीच में छोड़ने वाला न हो।

16. **समुपसम्पन्न-** पूर्वोक्त गुणों वाला होकर भी जो दीक्षा लेने के लिये पूरी इच्छा से गुरु के पास आया हो। उपर्युक्त गुणों वाला व्यक्ति दीक्षा के योग्य होता है। दीक्षार्थी में काल-दोष से सब गुण न हो तो भी बहुत से गुण तो होने ही चाहिए।

धर्मसंग्रह अधिकार 3 श्लोक 63/78

जिणधमो-आचार्य श्री नानेश/पृष्ठ 750/75

14. अभयकुमार

अभयकुमार ने पुष्पसाल सुत को भी राजा श्रेणिक से परिचय करवाकर भगवान महावीर के चरणों में दीक्षित करवा दिया। उसका वृत्तान्त इस प्रकार है -

सेवा से आत्मकल्याण

राजगृह के निकट ही गुब्बर नामक एक छोटा-सा गाँव था। वहाँ पुष्पसाल नामक एक सद्गृहस्थ रहता था। उसने अपने पुत्र का नाम पुष्पसाल सुत रखा था। पुष्पसाल सुत बचपन से ही धर्म श्रवण करता था। उसने एक बार धर्मशास्त्र पाठक के मुँह से सुना कि बड़ों की विनय और सेवा करनी चाहिए। इससे व्यक्ति लोकप्रिय होता है और उसे मनोवांछित लाभ मिलता है।

पुष्पसाल सुत ने यह बात हृदय में धारण कर ली। वह घर आया तब उसके मन में विचार आया कि मेरे माता-पिता मुझसे बड़े हैं। मुझे इनका विनय और सेवा करनी चाहिए। इस विचार से वह माता-पिता की सेवा करने लगा।

एक बार उसके पिता उसे साथ लेकर ग्राम स्वामी के पास गये। उन्होंने मुखिया को नमस्कार किया तो बालक पुष्पसाल सुत ने समझा कि ये मेरे पिता से भी बड़े हैं। उसने पिता से पूछा- क्या ये आप से बड़े हैं ?

पिता- हाँ बेटा! इसलिए मैंने इनको नमस्कार किया है, तो तू भी इनको नमस्कार किया कर।

बालक- पिता श्री आप आज्ञा दें तो मैं इनकी सेवा करूँ ?

पिता- अवश्यमेव बड़ों की सेवा तो करनी ही चाहिए।

अब वह पुष्पसाल सुत मन लगाकर मुखिया की सेवा करता है। एक बार मुखिया उसे लेकर राजगृह नगर गया। वहाँ महामंत्री अभयकुमार मिला। मुखिया ने अभय को नमस्कार किया तो उसने सोचा अभयकुमार मुखिया से भी बड़ा है। तब वह मुखिया से आज्ञा लेकर अभयकुमार की सेवा करने लगा।

अभयकुमार महाराज श्रेणिक को प्रातःकाल वन्दना करने गया, तो वह पुष्पसाल सुत साथ में ही था। अभयकुमार ने विनयपूर्वक पिता को वन्दन किया। तब पुष्पसाल सुत ने महामंत्री अभयकुमार को पूछा- स्वामी! ये कौन हैं, जिनकी आप विनयपूर्वक सेवा करते हैं ?

अभयकुमार बोला- ये परमशूरवीर, परम धार्मिक, महाप्रतापी राजा श्रेणिक हैं।

तब पुष्पसाल सुत अभयकुमार से आज्ञा लेकर महाराज श्रेणिक की सेवा करने लगा।

कुछ समय पश्चात् भगवान राजगृह नगर में पधारे। श्रेणिक भगवान के चरणों की भक्तिपूर्वक उपासना करने लगा। उस समय पुष्पसाल सुत साथ में था। उसने श्रेणिक राजा से पूछा- ये कौन ? जिनकी आप भक्तिपूर्वक उपासना करते हैं ? श्रेणिक ने कहा- ये भगवान महावीर हैं। तीनों लोकों में सबसे बड़े हैं। देवगण भी इनकी वन्दना करते हैं।

पुष्पसाल सुत ने सोचा- जब तीनों लोकों में ये ही सबसे बड़े हैं। तो मुझे इन्हीं की सेवा करनी चाहिए ताकि नया स्वामी न बनाना पड़े।

तब उसने भगवान से निवेदन किया- मैं आपकी सेवा करना चाहता हूँ।

भगवान- देवानुप्रिय! तुम सन्त बनकर ही मेरी सेवा कर सकते हो।

पुष्पसाल सुत ने वैसा ही किया। दीक्षा लेकर सेवा से आत्मकल्याण कर लिया।

वास्तव में सेवा ऐसा गुण है, जो आदमी को सर्वोच्च शिखर पर पहुँचा देता है।

आधार ग्रन्थ - धर्मरत्न प्रकरण/टीका गाथा 45

15. भगवान महावीर

तीर्थकर और चक्रवर्ती के शरीर में छत्र-चामरादि 1008 लक्षण होते हैं। वासुदेव और बलदेव के शरीर में 108 लक्षण होते हैं और अन्य पुरुषों के 32 लक्षण होते हैं।

1. छत्र, 2. कमल, 3. धनु, 4 रथ, 5. वज्र, 6. कछुआ, 7. अंकुश, 8. बावड़ी, 9. स्वस्तिक, 10. तोरण, 11. सरोवर, 12. सिंह, 13. वृक्ष, 14. चक्र, 15. शंख, 16. हाथी, 17. समुद्र, 18. कलश, 19. प्रासाद, 20. मीन, 21. यव, 22. यज्ञस्तंभ, 23. स्तूप, 24. कमण्डलु, 25. पर्वत, 26. चामर, 27. दर्पण, 28. बैल, 29. ध्वजा, 30. अभिषेक, 31. वरदाम और 32. मयूर।

आधार ग्रंथ : कल्पसूत्र सुबोधिका टीका, पत्र 35

अनुतर ज्ञानचर्या का आठवां वर्ष : सुनो मेरी पुकार :

भगवान राजगृह से विहार करके कौशाम्बी I की ओर पधारने लगे। राजगृह और कौशाम्बी के मध्य में काशी देश की सुप्रसिद्ध नगरी आलभिका पड़ती थी। अतएव प्रभु ग्रामानुग्राम विहार करके आलभिका नगरी पधार गए। वे वहाँ के शंखवन नामक उद्यान में तप संयम से अपनी आत्मा को भावित करने लगे।

चले समाधान की ओर :

आलभिका नगरी ऋषिभद्रपुत्र आदि तत्व ज्ञानी श्रावकों की नगरी थी। वहाँ के श्रावक जीव-अजीव आदि नौ तत्वों के ज्ञाता थे। वे श्रावक समय-2 पर एकत्रित होकर धर्म-ध्यान की तात्त्विक चर्चा किया करते थे।ⁱ धन-संपत्ति प्रचुर मात्रा में होने पर भी वे उससे अलिप्त बने अपने जीवन को मोक्ष-मार्ग की ओर उन्मुख बनाते थे।ⁱⁱ संवेग¹ और निर्वेद² भावों से ओतप्रोत होते हुए भी सामाजिक क्षेत्र में अनेक व्यक्तियों को सत्परामर्श

1. संवेग-मोक्ष सुख की अभिलाषा 2. निर्वेद-विरक्तिपरक

देते थे। वे न्याय नीति के परिपूर्ण ज्ञाताⁱⁱⁱ थे। किसी से पराभूतⁱ होने वाले नहीं थे।^{iv} श्रावकों का आदर्श जीवन प्रत्येक व्यक्ति के लिए प्रेरणादायी था।

वे पुण्यवानⁱⁱ श्रमणोपासक समय-2 पर एकत्रित होकर तत्त्वचर्चा^v किया करते थे। एक बार वे श्रावक एक स्थान पर एकत्रित हुए और उनका वार्तालाप प्रारम्भ हुआ। वार्तालाप करते-2 कुछ श्रमणोपासकों के मन में देव-सम्बन्धी जिज्ञासा पैदा हुई, उन्होंने पृच्छा की- हे आर्यो! देवलोक में देवों की स्थिति³ कितने काल की कही गयी है?

तब इस प्रश्न को कर्णगोचर⁴ कर देव स्थिति के ज्ञाता ऋषिभद्रपुत्र श्रमणोपासक ने उन श्रमणोपासकों को इस प्रकार कहा-आर्यो! देवलोक में देवों की स्थिति जघन्य⁵ दस हजार वर्ष की कही गयी है। उसके पश्चात् एक समय अधिक, दो समय अधिक यावत् दस समय अधिक, संख्यात् समय अधिक, असंख्यात् समय अधिक, उत्कृष्ट⁶ तैतीस सागरोपम की स्थिति कही गयी है। इनसे अधिक स्थिति वाले देव नहीं हैं।

ऋषिभद्रपुत्र श्रमणोपासक के ऐसा कहे जाने पर उन श्रमणोपासकों को 'ऋषिभद्रपुत्र' के कथन पर श्रद्धा, प्रतीति⁷ और रुचि नहीं हुई। तब वे श्रमणोपासक जिस दिशा से आये थे उसी दिशा में चले गए।

कितना आदर्श व्यवहार था श्रावकों का कि तत्त्वज्ञान संबंधी समाधान पर विश्वास नहीं हुआ तो भी उन्होंने ऋषिभद्रपुत्र से यह नहीं कहा कि तुम्हारा कथन सत्य नहीं है। वे मौन रहे, उन्होंने तर्क-वितर्क के मार्ग का आश्रय नहीं लिया। ऋषिभद्रपुत्र की अवज्ञा⁸ नहीं की और मन में चुप्पी साधे चल दिये। यह शास्त्रीय पाठ प्रेरणा दे रहा है कि जब तत्त्वज्ञाता श्रमणोपासक का भी इतना सम्मान, तब आचार्य-उपाध्याय आदि भगवन्तों का कितना सत्कार सम्मान करना चाहिए, यह स्वयंमेव जानने योग्य है।^v

आलभिका के श्रमणोपासक इन्तजार कर रहे थे कि भगवान महावीर पधारें, मुनि भगवन्त पधारें तो हमारी जिज्ञासा का समाधान करेंगे^{vi} और घट-2 के ज्ञाता भगवान ने उनके मनोभावों को जान लिया। अत्यंत अनुग्रह⁹ करके स्वयं तीर्थपति भगवान पधार गये। जैसे ही भगवान के आगमन की चर्चा श्रमणोपासकों के कर्णकुहरों¹⁰ में प्रविष्ट हुई, वे अत्यंत हर्षित संतुष्ट हुए और परस्पर एक दूसरे को बुलाकर उस प्रकार कहने लगे, हे

1. पराभूत-पराजित 2. तत्त्व-जीवादि नौ (तस्य भावं तत्वम्) 3. स्थिति-अमुक समय तक उसी भव में रहना 4. कानों में सुनाई देना 5. जघन्य-सबसे थोड़ी 6. उत्कृष्ट-सबसे अधिक 7. प्रतीति-विश्वास 8. अवज्ञा-अनादर, अवहेलना 9. अनुग्रह-कृपा 10. कर्ण-कुहरों-कानों में।

देवानुसियों! हमारे यहाँ शंखवन उद्यान में अनन्तज्ञान सम्पन्न देवाधिदेव स्वयं महाप्रभु महावीर पधारे हैं। उनके नाम-गोत्र श्रवण का भी महाफल होता है। तब उनके सामने जाना, वन्दन नमस्कार करना, उनके कुशल-मंगल की पृच्छा करना¹, उनकी सेवा करना और इनसे प्रश्न पूछकर समाधान करना, उन सभी बातों के कल्याण रूप फल का तो कहना ही क्या? इसलिए हम सभी को भगवान के पास जाकर वन्दन, नमन, पर्युपासना करनी चाहिए, जो इस भव और परभव के लिए सुखावह होगी।

इस प्रकार वार्तालाप करते हुए सभी ने एक-दूसरे के कथन को स्वीकार किया। स्वीकारोपरान्त अपने-2 घर गए। वहाँ जाकर स्नानादि करके धर्मसभा योग्य वस्त्राभूषणों से शरीर को अलंकृत² किया।

तदनन्तर अपने-2 निवास स्थान से निकलकर सब एक जगह एकत्रित हुए और पैदल चलते हुए आलभिका के बीचो-बीच होकर जहाँ शंखवन उद्यान था, वहाँ आये और भगवान को दूर से देखते ही पाँच अभिगम का पालन करते हुए भगवान के समीप पहुँचे। वे पाँच अभिगम इस प्रकार हैं :-

1. अपने पास रहे हुए फूल, ताम्बूल आदि सचित्त द्रव्यों का त्याग करना।
2. अचित्त द्रव्यों (योग्य वस्त्रादि) का त्याग न करना, मर्यादा करना।
3. एक शाटिक उत्तरासंग धारण करना।
4. भगवान के दृष्टि पथ पर आते ही दोनों हाथों को जोड़ना।
5. मन को एकाग्र करना।

इस प्रकार पाँच अभिगमों को धारण करके वे श्रमणोपासक भगवान महावीर के निकट पहुँचे, पहुँचकर उन्होंने तीन बार आदक्षिणा-प्रदक्षिणा की, वन्दना नमस्कार किया। तदनन्तर अपने हाथ-पाँव आदि को यथायोग्य अवस्थापन करते हुए, शुश्रूषा करते हुए, नमस्कार करते हुए भगवान के सन्मुख विनयपूर्वक³ अंजलिबद्ध³ होकर पर्युपासना करने लगे।

स्वयं संसार-सागर से तिरने वाले और दूसरे को संसार से तिराने वाले भगवान महावीर की दिव्य देशण से विशाल परिषद एवं वे श्रमणोपासक अनुप्राणित⁵ होने लगे।

भगवानकी वाणी श्रवण कर वे श्रमणोपासक कहने लगे, भगवन्! ये सत्य है! असंदिग्ध⁶ है! भगवन्! यह इष्ट है, अभीष्ट है, विशेष इष्ट है। इस प्रकार वाणी से

1. पृच्छा करना-पूछना 2. अलंकृत-सज्जित 3. अंजलिबद्ध-हाथ जोड़कर
4. देह-शरीर 5. अनुप्राणित-युक्त 6. असंदिग्ध-सन्देह रहित

अप्रतिकूल¹ होकर वे विनय सम्प्रेषित² वाणी से पर्युपासना करते हैं। मन में संवेग भाव^{viii} धारण करते हुए तीव्र धर्मानुराग-रंजित और विमल³ प्रज्ञावान⁴ बनकर एकाग्र मन से मानसिक उपासना करते हैं।

आत्मलीनता के उन स्वर्णिम पलों में परमात्मा से मिलन का वह अवसर अविस्मरणीय⁵ बन रहा था। हृदय का सौंदर्य उमड़कर प्रभु से एकाकार होने के लिए समातुर⁶ था। तल्लीनता बढ़ती चली जा रही थी और भाव प्रवण⁷ होकर सब सुनते ही चले जा रहे थे। भगवान की वाणी को सुनते-2 वे इतने खो गये, इतने खो गये कि सब कुछ भूलकर, सबकुछ मिटाकर अन्तर मन को पढ़ने लगे। लेकिन समय.....समय की अपनी मर्यादा है। धर्मदेशना परिपूर्ण हुई।

धर्मदेशना से अनुप्रणित वे अपने हृदय की समस्त कामनाओं को भगवान के चरणों में समर्पित करते हुए आदक्षिणा-प्रदक्षिणा करते हुए तीन बार वंदन-नमस्कार करते हैं और भगवान से इस प्रकार प्रश्न पूछते हैं :- भगवन्! एक बार तत्त्वज्ञान के क्षणों में हमारे मन में जिज्ञासा उत्पन्न हुई कि देवलोकों में देवोंⁱⁱⁱ की स्थिति कितनी है? तब परस्पर वार्तालाप करते हुए हमने एक-दूसरे से पूछा कि देवों की स्थिति कितनी है? उस समय ऋषिभद्रपुत्र श्रमणोपासक ने बतलाया कि देवलोक में, देवों की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष की है। उससे आगे एक समय अधिक यावत् उत्कृष्ट तैतीस सागरोपम⁸ की कही गई है। इसके आगे देव और देवलोक विच्छिन्न⁹ हो जाते हैं^x भगवन्! क्या यह बात सत्य है?

भगवान ने फरमाया-हाँ! आर्यों! जैसा ऋषिभद्रपुत्र श्रमणोपासक ने कहा, वह सत्य है। आर्यों! मैं भी इसी प्रकार कहता हूँ। यावत् प्ररूपणा करता हूँ कि देवलोक में देवों की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष की यावत् तैतीस सागरोपम की है।^x इससे आगे देव और देवलोक विच्छिन्न हो जाते हैं। आर्यों! यह बात सर्वथा सत्य है।

भगवान की आप्तवाणी सुनकर हृदयंगम¹⁰ कर श्रमणोपासकों ने भगवान महावीर को वन्दन नमस्कार किया और अपनी गलती की क्षमायाचना करने के लिए ऋषिभद्रपुत्र श्रमणोपासक के पास जाने लगे। सरल, विनयवान आत्माएँ अपनी गलती का परिमार्जन¹¹

1. अप्रतिकूल-अनुकूल 2. संप्रेषित-प्रकट करने वाली 3. विमल - निर्मल 4. प्रज्ञावान-बुद्धि सम्पन्न 5. अविस्मरणीय-याद रखने योग्य 6. समातुर-तत्पर 7. भाव प्रवण-भाव युक्त 8. सागरोपम-दस कोटा कोटि पल्योपम का एक सागरोपम 9. विच्छिन्न-समाप्त 10. हृदयंगम-हृदय में धारण करना 11. परिमार्जन-संशोधन

कर स्वयं का संशोधन करने हेतु सतत् प्रयास करती हैं, जबकि दुर्लभबोधि¹ कषायानुरंजित¹ आत्माएँ दूसरों की गलती देखकर उन्हें दुर्वचनों से प्रताड़ित करती हैं। स्वयं का संशोधन करना बन्धन से विमुक्ति² का रास्ता है और दूसरों को संशोधन करवाने हेतु द्वेष भावना से आग्रह-रत³ बने रहना आश्रव⁴ परम्परा का मार्ग है, जो संसार-सागर में डुबो देता है।

श्रमणोपासकों ने जिनवाणी को जीवन में उतारा था, उसी कारण वे क्षमायाचना करने के लिए तुरंत ऋषिभद्रपुत्र के पास चले गये और ऋषिभद्रपुत्र का अभिवादन करते हुए कहा- आपने देवों की जो स्थिति बतलाई थी वही स्थिति सही है, लेकिन उस समय हमें आपकी बात सत्य न लगी। आज हमने महावीर से समाधान कर लिया है, आपकी बात परिपूर्ण सत्य है। इसलिए हम आपसे क्षमायाचना करते हैं। आप हमें अवश्यमेव क्षमा प्रदान करेंगे।

विनय से अवनत होकर उन्होंने नम्र वचनों से बारम्बार क्षमायाचना की और पुनः भगवान महावीर के चरणों में अपनी जिज्ञासाओं का समाधान करने हेतु पहुँचे। कितना आदर्श जीवन था उन श्रावकों का कि अपनी भूल का पता चलते ही उसे स्वीकार करने हेतु तत्पर हो गये। एक क्षण का भी विलम्ब⁵ नहीं किया। वस्तुतः भूलों को स्वीकार करने वाला भगवान बन जाता है और विस्मरण करने वाला शैतान बन जाता है। अपनी भूलों को नहीं भूलने वाला परमात्मा से साक्षात्कार कर लेता है। उन श्रावकों का यह कृत्य अत्यन्त प्रशंसनीय और आचरणीय है। जिन्होंने समस्त कार्यों को दरकिनार⁶ करते हुए सर्वप्रथम क्षमायाचना का महान् आदर्श उपस्थित किया और तदनन्तर अपनी अन्य जिज्ञासाओं का समाधान किया।

श्रमणोपासक अपनी जिज्ञासाओं का भगवान से समाधान कर अपने-2 घरों को लौट गये। उन श्रमणोपासकों से ऋषिभद्रपुत्र श्रावक की चर्चा श्रवण कर सहसा श्री इन्द्रभूति गौतम के मन ने प्रश्न उठा कि मैं भी उनके बारे में भगवान से प्रश्न करूँ। ऐसी जिज्ञासा मन में लिए गौतम भगवान के पास पहुँचे और वन्दन-नमस्कार करके बोले- भगवन्! क्या ऋषिभद्रपुत्र श्रमणोपासक आप देवानुप्रिय के समीप मुण्डित होकर आगारवास⁷ से अणगार⁸ धर्म में प्रव्रजित होने में समर्थ है? भगवन् ने कहा-यह अर्थ समर्थ नहीं है। यह ऋषिभद्रपुत्र श्रमणोपासक बहुत से शीलव्रत, गुणव्रत, विरमण व्रत, प्रत्याख्यान और

1. कषायानुरंजित-क्रोधादि से युक्त 2. विमुक्ती-मोक्ष 3. आग्रहरत-आग्रह में लीन 4. आश्रव-कर्म आने के कारण/जिसमें कर्म आते हैं, वे मार्ग 5. विलम्ब-देर से 6. दरकिनार-एक तरफ 7. आगारवास-गृहस्थ जीवन 8. अणगार-साधु

पौसधोपवासों से तथा ग्रहीत¹ यथोचित्पशुचर्या द्वारा अपनी आत्मा को भावित² करता हुआ वर्षों तक श्रमणोपासक पर्याय का पालन करेगा। तदनन्तर मासिक संलेखना द्वारा साठ भक्त³ का अनशन छेदकर आलोचना, प्रतिक्रमण कर, समाधि प्राप्त कर काल के अवसर पर काल करके सौधर्मकल्प के अरूणाभ नामक विमान में देवरूप में उत्पन्न होगा। वहाँ ऋषिभद्रपुत्र देव की चार पल्योपम की स्थिति होगी।

तब गौतम स्वामी ने ऋषिभद्रपुत्र का भविष्य जानने की इच्छा से प्रश्न किया- भंते! वह ऋषिभद्रपुत्र देव उस देवलोक से आयु क्षय, स्थिति क्षय, और भव क्षय करके यावत् कहाँ उत्पन्न होगा ?

भगवान ने फरमाया- गौतम! वह महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर सिद्धगति को प्राप्त होगा और शाश्वत सुख का वरण करेगा।^{xi}

भगवान के वचनों को श्रवण कर गौतम स्वामी ने कहा- भंते! यह इसी प्रकार है.....यह इसी प्रकार है। ऐसा कहकर भगवान गौतम स्वामी तप संयम अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरण करने लगे।^{xii}

मेरे महावीर :

भगवान महावीर आलम्बिका में अनेक भव्यात्माओं को पथ दिखलाकर कौशाम्बी की ओर विहार करने लगे। ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए भगवान कौशाम्बी पधार गये।

कौशाम्बी का राजा उदायन तरूणाई की दहलीज पर कदम रख रहा था। उधर चण्ड प्रद्योतन^v कामवासनाओं से संलित⁴ बना, मृगावती को अपनाने के ख्वाबों में खोया हुआ था।^{xiii} वह इसके लिये उज्जयिनी से मजबूत ईंटें मंगवाकर कौशाम्बी का किला बनवा रहा था। (जिसका समग्र वर्णन 'अपश्चिम तीर्थकर' भाग-2 अध्याय 3, पृष्ठ 174-176 में देख सकते हैं।) उसके मन में एक मात्र वासना का गुब्बार उठ रहा था कि कब किला बने और कब मैं मृगावती को अपना बनाऊँ। विशाल किले का निर्माण वह अतिशीघ्रता से करवाने लगा।

किला पूर्णता को प्राप्त करने वाला था। महारानी मृगावती के मन में अनेक संकल्प विकल्प⁵ चल रहे थे- कि शील धर्म की रक्षा कैसे होगी? इसी संकल्प-विकल्पों में वह समस्या का समाधान खोज रही थी।^{xiv} इतने में चण्डप्रद्योतन का दूत आया और महारानी मृगावती से आकर निवेदन किया- महारानी की जय हो। राजा प्रद्योतन ने कहलवाया है

1. ग्रहित-ग्रहण की हुई। 2. भक्ति-युक्त 3. साठ भक्त-दो माह 4. संलिप्त-युक्त/लिपटा हुआ। 5. संकल्प-विकल्प-विविध प्रकार के विचार

कि आपके आदेशानुसार किला बनकर तैयार होने ही वाला है, आगे आपका क्या आदेश है? तब महारानी मृगावती ने कहा- अभी तो किला ही बना है। महाराज को बोलिये कि कौशाम्बी को धन-धान्य और ईंधन से परिपूर्ण करो। दूत- जो आज्ञा कहकर कौशाम्बी से उज्जयिनी लौट गया। महाराज चंडप्रद्योतन को रानी मृगावती का संदेश कह सुनाया। प्रद्योतन ने अतिशीघ्र धन-धान्य और ईंधन से कौशाम्बी को परिपूर्ण करने की तैयारी कर ली। अतिशीघ्र ही कौशाम्बी धन-धान्य और ईंधन से परिपूर्ण होने लगी। महारानी मृगावती ने कुमार उदयन से कहा कि संकट के घने बादल कौशाम्बी पर मंडरा रहे हैं। अब चंडप्रद्योतन मुझे पाने के लिए नगरी पर आक्रमण करने वाला है, तो अब जनता को सारी स्थिति से अवगत करवा देना चाहिये। उदयन ने अपनी माँ की बात का सत्कार किया और परिषद आमंत्रित की।

कौशाम्बी का राजदरबार खचाखच भरा हुआ था। सब मिलकर उस गम्भीर समस्या का समाधान करने में लगे हुए थे। उसी समय द्वारपाल ने आकर सूचना दी कि उज्जयिनी (अवन्ति) से दूत आया है। राजामाता¹ ने दूत को प्रवेश करने की आज्ञा दी।

राजमाता की अनुमति से दूत दरबार में प्रविष्ट हुआ। उसने महारानी को विनयपूर्वक नमन किया और चण्डप्रद्योतन द्वारा प्रेषित² प्रणय-पत्र³ और प्रेम उपहार अर्पित किया साथ ही महारानी की कुशल-क्षेम की पृच्छा की।

महारानी ने जैसे ही प्रणय पत्र एवं प्रेम उपहार देखा, उसका रोम रोम अंगारों की भाँति जलने लगा। मन मसोस कर उसने पत्र पढ़ा और चिन्दा-चिन्दा कर पैरों से कुचल डाला। उसके इस दृश्य को देखकर पूरे राज दरबार में सन्नाटा छा गया सबका खून खौलने लगा, सभी राजमाता की ओर देखे जा रहे थे।

महारानी ने प्रद्योतन के प्रेमोपहार को ऐसी ठोकर मारी कि वे तीतर-बीतर⁴ हो गये। महारानी के चेहरे पर शील का अपूर्व तेज झलक रहा था। उसने प्रद्योतन के पत्र और उपहार का करारा⁵ जबाव देते हुए कहा- अरे! गीदड़ द्वारा भेजे गये उपहार शेरनी के योग्य नहीं होते। वह तो क्या स्वर्ग का इन्द्र भी मुझे मेरे शील धर्म से च्युत⁶ नहीं कर सकता। मैं शरीर का त्याग कर सकती हूँ पर अपने शील धर्म का त्याग नहीं कर सकती।

अरे! दूत! तेरा राजा कामान्ध⁷ बनकर मर्यादा को भूल गया है। कामी रावण की

1. राजमाता-मृगावती 2. प्रेषित-भेजा 3. प्रणय पत्र-प्रेम-पत्र 4. तीतर-बीतर होना-बिखेरना 5. करारा-कठोर 6. च्युत-पतित 7. कामान्ध-वासना से अन्ध

तरह पर-स्त्री को अपनाना चाहता है, लेकिन उसे तुम यह बतला देना कि मृगावती कदापि तेरी होने वाली नहीं है।

महारानी के इस तेजस्वी वाणी को श्रवण कर क्षत्रियों की तलवारों म्यान से बाहर निकल आई और वे जोर-जोर से नारे लगाने लगे-

शील के खातिर मरना है

शील के खातिर जीना है।

जोश में आकर क्षत्रिय अपने अपने-आसनों से उठ खड़े हुए और कहने लगे-अरे दूत! तेरे महाराज को बोल देना कि हमारी राजमाता की ओर देखने का भी प्रयास किया तो हम उन नेत्रों को नष्ट-भ्रष्ट कर देंगे।^{xv}

सब ने उस प्रकार दूत का तिरस्कार किया और उसे पीछे के दरवाजे से निकाल दिया।

अब कौशाम्बी की रक्षा कैसे की जाये। इसके लिए राजमाता ने राजा उदयन से कहा- किले के समस्त दरवाजों को बंद कर दिया जाये और किले पर सुभटों¹ का समूह तैनात कर दिया जाये, ताकि प्रद्योतन हमारे कौशाम्बी को तहस-नहस न कर सकें।

राज्य में संकट की भेरी बज गई। किले के सब द्वार बंद कर दिये गये और किले की रक्षा के लिये वीर सुभटों के समूह को तैनात कर दिया गया। उधर दूत ने जाकर प्रद्योतन से सारी हकीकत कह डाली। चंडप्रद्योतन ने युद्ध की रणभेरी बजवाई और अपनी विशाल सेना को लेकर कौशाम्बी की ओर चल दिया।

कौशाम्बी के किले के द्वार बंद थे। उसने किले के बाहर पड़ाव डाल दिया और डेरा डालकर बैठा रहा। समय निरंतर अपनी गति से गतिमान था। महारानी मृगावती संसार की इस आरोह-अवरोह² की स्थिति से निर्वेद³ वासना से अन्ध भाव को प्राप्त हुई। उसने चिन्तन किया कि यदि भगवान महावीर यहाँ पधारे तो मैं संयम ग्रहण करूँगी। घट-घट के ज्ञाता भगवान महावीर ने मृगावती के अन्तर्भावों को जाना और महारानी मृगावती को तिराने के लिए कौशाम्बी पधार गये।^{xvi}

कौशाम्बी में भगवान के पधारने से धर्म की धूम मच गयी। चण्डप्रद्योतन और उसकी अंगारवती आदि आठ महारानियाँ भगवान के समवशरण में भगवान को वंदन करने, उनकी वाणी श्रवण करने हेतु गयी।

1. सुभटों-सैनिकों

2. आरोह-अवरोह-उत्थान-पतन 3. निर्वेद-वैराग्य भाव/संसार से उदासीनता का भाव।

मृगावती की कली-कली खिल गयी। उसके मन की मुरादें पूर्ण होने का सुअवसर आ गया। उसने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाकर अपना धार्मिक रथ तैयार करवाया और स्वयं उसमें बैठकर भगवान महावीर के दर्शन करने चली गयी। राजा उदयन भी भगवान की दिव्य देशना श्रवण करने हेतु गया।

भगवान ने उस महती परिषद को एवं मृगावती को धर्म देशना दी। इधर धर्म देशना समाप्त हुई और उधर एक धनुष-धारी पुरुष जिसे कानो-कान खबर मिली कि यहाँ सर्वज्ञ¹ महावीर पधारे हैं, ऐसा सुनकर वह भगवान के चरणों में उपस्थित हुआ। वह मन से ही भगवान से अपना संशय पूछ रहा था।

या सा सा सा :

तब भगवान ने उससे कहा-भद्र! तुम अपना संशय बोलकर बतलाओ ताकि उससे अन्य भव्य प्राणियों को भी प्रतिबोध मिल सके। भगवान के ऐसा फरमाने पर वह अपना संशय स्पष्ट शब्दों में बोलने में लज्जा का अनुभव कर रहा था, इसलिए उसने संक्षेप में कहा-‘या सा, सा, सा’ तब भगवान ने संक्षिप्त उत्तर फरमाते हुए कहा-एवमेव।

गौतम गणधर ने इस परिदृश्य² का अवलोकन किया और यह सब पहेली समझने के लिए प्रभु से पृच्छा की- भगवन्! या सा, सा, सा का अर्थ क्या है?

तब भगवान ने फरमाया-उस काल, उस समय में, भरत क्षेत्र में चंपा नामक नगरी थी। वहाँ एक स्त्री लम्पट³ स्वर्णकार रहता था। वह पृथ्वी पर घूमता रहता और जो जो रूपवती कन्याएँ दिखती उनके माता-पिता को पाँच सौ सौनेया देकर उनके साथ विवाह करता रहता था। इस प्रकार अनुक्रम से विवाह करते हुए उसने 500 कन्याओं के साथ विवाह कर लिया। सब स्त्रियों के लिये उसने अलंकार, आभूषण आदि बनवाये और उन्हें दे दिये। वह अनुक्रम से उन स्त्रियों का उपभोग करता था। वह जिस स्त्री को जो वस्त्राभूषण पहनने का निर्देश देता, वैसा ही पहनना पड़ता था। यदि कोई स्त्री उसके आदेश की अवहेलना करती तो वह उसकी ताड़ना-तर्जना⁴ करता था।

वह सुनार अपनी स्त्रियों को छोड़कर कभी घर के बाहर नहीं जाता और न कभी अपने रिश्तेदारों को अपने घर में ही घुसने देता और न ही अपनी स्त्रियों को घर से बाहर निकलने देता।

1. सर्वज्ञ-सबकुछ जानने वाले केवली भगवान
2. परिदृश्य-दृश्य
3. स्त्रीलम्पट-पर स्त्री रत
4. ताड़ना-तर्जना-डांट फटकार, मारपीट

एक बार ऐसा संयोग बना कि उसका कोई प्रिय-मित्र अत्यधिक आग्रह करके उसको अपने घर खाना खाने को लेकर गया। यद्यपि वह जाना नहीं चाहता था, तथापि मित्र के आग्रह को वह टाल नहीं सका। जब वह अपने घर से चला गया तब स्वर्णकार की पत्नियों ने विचार-विमर्श किया कि 'अपने घर', अपने यौवन और अपने जीवन को धिक्कार है। हम सभी यहाँ कारागृह¹ की तरह बन्दी-खाने में रहती हैं। अपना पापी पति यमदूत की तरह घर का द्वार छोड़ता ही नहीं है। आज हमारा सौभाग्य है कि आज वो बाहर गया है, इसलिए आज स्वेच्छा² से कुछ श्रृंगार करें। ऐसा विचार करके उन स्त्रियों ने स्नान करके अंगराग (अलत्ता) लगाया, उत्तम पुष्प-मालादि धारण किये और मनपसंद वस्त्रों को पहनकर खुशी का अनुभव करने लगी। अपने हाथ में वे दर्पण लेकर अपना-अपना रूप निहारने लगी। इतने में ही वह स्वर्णकार घर पर आ गया। उसने अपनी पत्नियों की स्वेच्छाचारिता देखी, तो वह क्रोध की आग में जलने लगा। अपने आवेश को वह रोक नहीं पाया उसने एक स्त्री को पकड़कर ऐसे मारा जैसे हाथी अपने पैर से कमलिनी को रौंद देता है। उसके तीव्र प्रहार से उस स्त्री की वहीं मृत्यु हो गयी।

तब अन्य पत्नियों ने विचार किया कि जैसे आज इसने एक स्त्री को मारा है, वैसे यह इस रीति से अपने को भी मारेगा। इसलिए हम सब एकत्रित होकर इसी को मार डालें, ऐसे पापी पति के जीवित रहने से क्या फायदा?

ऐसा विचार करके उन सभी 499 स्त्रियों ने निशंक³ होकर 499 दर्पण, चक्र की तरह उस स्वर्णकार के ऊपर फेंके। उससे उस स्वर्णकार की तत्काल मृत्यु हो गयी। तब सब स्त्रियों ने पश्चात्ताप करते हुए सती बनने के लिए पूरे घर में आग लगा दी और स्वयं उसी में जलकर राख हो गयी।

पश्चात्ताप करने से एवं अकाम निर्जरा करने से वे 499 स्त्रियाँ मरकर पुरुष रूप में पैदा हुईं।

यौवनवय प्राप्त होने पर ये 499 पुरुष जंगल में किला बनाकर रहने लगे और चोरी का धंधा करने लगे। वह स्वर्णकार मरकर तिर्यच गति में उत्पन्न हुआ। उसकी एक पत्नी जो पहले मर गयी थी वह भी तिर्यच से मरकर एक ब्राह्मण के घर में पुत्र के रूप में पैदा हुई। जब वह पुत्र पाँच वर्ष का हुआ तब वह स्वर्णकार का जीव तिर्यच से निकलकर उसी ब्राह्मण के घर में पुत्री रूप में उत्पन्न हुआ। वह ब्राह्मण पुत्र (स्वर्णकार पत्नी का जीव)

1. कारागृह-जेल/कैदखाना 2. स्वेच्छा-स्वयं की इच्छा 3. निशंक-शंका रहित

अपनी बहिन (स्वर्णकार के जीव) को खिलाता रहता था। तब भी वह बहिन रूदन करती ही रहती थी, लेकिन जब वह उस बहिन के गुप्तांग स्पर्श करता तो वह चुप हो जाती। इस प्रकार जब-2 बहिन रूदन करती तो वह उसे शांत कर देता। एक बार माता-पिता ने उसे देख लिया तो उसको घर से बाहर निकाल दिया। वह घूमता-2 जहाँ 499 चोर थे, वहाँ चला गया और उनके साथ रहने लगा।

उसकी बहिन युवावस्था को प्राप्त होने पर कुलटा¹ हो गयी और स्वेच्छा से फिरती-2 एक ग्राम में चली गयी। इधर इन 500 चोरों ने उस ग्राम को पहले लूट लिया और तत्पश्चात् इस कुलटा को पकड़कर स्त्री रूप में स्वीकार कर लिया।

एक समय समस्त चोरों ने विचार किया कि इस एक स्त्री का हम सभी उपभोग कर रहे हैं तो यह जल्दी ही मृत्यु को प्राप्त हो जायेगी, इसलिए दूसरी स्त्री लाना चाहिए। ऐसा विचार कर चोर दूसरी स्त्री लाये, तब वह प्रथम स्त्री उसको ईर्ष्या की दृष्टि से देखने लगी। उसकी ईर्ष्या इतनी बढ़ गयी कि वह उसको मारने के लिए उपाय खोजने लगी।

एक बार जब चोर चोरी करने गये थे, उसने उस अवसर को श्रेष्ठ जानकर उस दूसरी स्त्री से कहा- बहिन! देखो इस कुएँ में क्या गिरा है? जैसे ही वह देखने लगी, उसने उस दूसरी स्त्री को कुएँ में धक्का दे दिया। जब चोर चोरी करके आये और उन्होंने पूछा- दूसरी स्त्री कहाँ है? तो उसने कहा-मुझे क्या मालूम? तुम्हें अपनी पत्नी का खुद ख्याल रखना चाहिए।

तब चोरों ने विचार किया कि जरूर इसी ने हमारी दूसरी पत्नी को मार डाला है। उसी समय ब्राह्मण पुत्र जो उस प्रथम स्त्री का भाई था, उसने सोचा- अरे! रे! ये कुलटा कहीं मेरी बहिन तो नहीं है? इसका निर्णय करना चाहिये इतने में उसने लोगों के मुख से सुना कि सर्वज्ञ आये हुए हैं तो वह मेरे पास पूछने के लिये आया। पहले तो उसने मन से पूछा- तत्पश्चात् जब मैंने प्रकट में पूछने के लिए कहा (भगवान महावीर ने) तो उसने संक्षिप्त वाणी से पूछा- या सा सा सा अर्थात् यह जो स्त्री है, वह क्या मेरी बहिन है? तो मैंने (भगवान महावीर ने) उत्तर दिया-एवमेव अर्थात् ये तुम्हारी बहिन है, ऐसा मैंने उसे बतलाया। वस्तुतः राग-द्वेष आदि से मूढ़² बने हुए प्राणी इस संसार में भव-भव में भ्रमण करते हैं और विविध दुःख के पात्र बनते हैं।

इस प्रकार सारी सत्यवार्ता जानकर उस ब्राह्मण को संवेग भाव पैदा हुआ और

1. कुलटा-कुशीला 2. मूढ़-मतिभ्रान्त

उसने संयम ग्रहण कर लिया। स्वयं चोर पल्ली में गया, 499 चोरों को प्रतिबोध¹ दिया, तब उन 499 चोरों ने भी भगवान से संयम ग्रहण कर लिया।^{xvii}

शील से संयम की ओर :

मृगावती ने भी भगवान की वाणी को श्रवण करके संयम ग्रहण करने का दृढ़ निश्चय कर लिया। अतएव उसने उसी समय भगवान से निवेदन किया- भंते मैं चंद्रप्रद्योत की आज्ञा लेकर आपके समीप दीक्षा ग्रहण करना चाहती हूँ। भगवान ने फरमाया कि तुम्हें जैसा सुख हो वैसा करो, लेकिन धर्म कार्य में विलंब न करो।

तब उस महती सभा में महारानी मृगावती चंद्रप्रद्योतन से बोली- 'मैं राजा उदयन को आपके संरक्षण² में छोड़कर संयम ग्रहण करना चाहती हूँ।

यद्यपि प्रद्योतन की तनिक भी इच्छा नहीं थी कि वह मृगावती को संयम ग्रहण करने की अनुमति दे। उसके मन में कुत्सित³ वासना का धूम⁴ उठ रहा था, तथापि वह मृगावती को लज्जा के वशीभूत होकर उस धर्मसभा में संयम लेने से इंकार न कर सका, और ब्रीडावश⁵ उसने महारानी मृगावती को संयम ग्रहण करने की अनुमति प्रदान कर दी। लज्जा से वह घृणित कार्य करने से रुक गया। लज्जा वह सेतु⁶ है, जो शील धर्म की सुरक्षा बनाये रखती है। इसलिए दशवैकालिक में भी ब्रह्मचर्य से पहले लज्जा का उल्लेख किया है। लज्जा ही वास्तव में ब्रह्मचर्य का संगीन सुरक्षा कवच है।

आखिरकार महारानी मृगावती ने प्रद्योतन से अनुमति लेकर संयम ग्रहण करके अपने शील धर्म की संपूर्णतया सुरक्षा कर ली। चंद्रप्रद्योतन की अंगारवती आदि आठ महारानियों ने भी भगवान की वाणी श्रवण कर निर्वेद भाव को धारण किया, उन्होंने भी चंद्रप्रद्योतन से दीक्षा की अनुमति मांगी। प्रद्योतन ने उन्हें संयम ग्रहण करने की अनुज्ञा प्रदान कर दी। भगवान के मुखारविंद से अंगारवती आदि आठ महारानियों ने भी संयम ग्रहण कर लिया।^{xviii}

भगवान महावीर कुछ समय तक कौशाम्बी विराजे। वहाँ अनेक भव्यों का उपकार करके भगवान विदेह भूमि की ओर पधार गये। उधर विचरण करते हुए प्रभु ने ग्रीष्मकाल पूरा होते होते वैशाली^{VI} में प्रवेश किया। अष्टम् वर्षावास भगवान ने वैशाली में ही संपन्न किया।

1. प्रतिबोध-ज्ञान 2. संरक्षण-सुरक्षा/सानिध्य 3. कुत्सित-खराब 4. धूम-धुआँ 5. ब्रीडावश-लज्जा वश 6. सेतु-पुल/सम्बल

टिप्पण-मृगावतीजी को कैवल्यज्ञान 4 वर्ष पश्चात् भगवान के दीक्षा पर्याय के 24वें वर्ष में तथा केवलीचर्या के 12वें वर्ष में हुआ। उसका उल्लेख आगे किया जाना संभव है।

टिप्पण

अनुतर ज्ञानचर्या का आठवाँ वर्ष

1. कौशाम्बी :- इलाहाबाद जिले की मानजहानपुर तहसील में यमुना नदी के बाएँ किनारे पर जहानपुर से दक्षिण में बारह मील और इलाहाबाद से दक्षिण-पश्चिम में इक्कतीस मील पर कोसमइनाम और कोसमइखिराज नामक दो गाँव हैं। ये ही प्राचीन कौशाम्बी के अवशेष हैं। वहाँ से करीब चार मील पश्चिम में पभोसा का गाँव और पहाड़ हैं, जहाँ पर जैन-मन्दिर है।

कौशाम्बी वत्स देश की राजधानी थी। यहाँ का राजा उदयन और राजमाता मृगावती भगवान महावीर के परम उपासक थे। भगवान महावीर अनेक बार यहाँ पधारे थे।

- आधार ग्रंथ-श्रमण भगवान महावीर वही/पृ. 372

2. पुण्यवान :- पुण्यवान को दस बोलों की प्राप्ति होती है :-

जो मनुष्य अच्छे कर्म करते हैं, वे आयुष्य पूर्ण करके ऊँचे देवलोक में महर्द्धिक देव होते हैं। वहाँ सुखों को भोगते हुए अपनी आयु पूर्ण करके मनुष्य लोक में पैदा होते हैं। उस समय उन्हें दस बोलों की प्राप्ति होती है-

1. क्षेत्र- ग्रामादि, वास्तु-घर, सुवर्ण-उत्तम धातुएँ, पशु, दास-नौकर-चाकर और चौपाए इन चार स्कन्धों से भरपूर कुल में पैदा होते हैं।

2. बहुत मित्रों वाले होते हैं।

3. बहुत सगे-सम्बन्धियों को प्राप्त करते हैं।

4. उच्च गोत्र वाले होते हैं।

5. कांति वाले होते हैं।

6. शरीर निरोग होता है।

7. तीव्र बुद्धि वाले होते हैं।

8. कुलीन अर्थात् उदार स्वभाव वाले होते हैं।

9. यशस्वी होते हैं।

10. बलवान होते हैं।

-उत्तरा./3/17-18

3. देव :-

देवताओं के दस भेद होते हैं :-

1. इन्द्र : सामानिक आदि सभी प्रकार के देवों का स्वामी इन्द्र कहलाता है।
2. सामानिक : आयु आदि में जो इन्द्र के समान होते हैं, लेकिन जिनमें इन्द्रत्व नहीं होता, वे सामानिक हैं।
3. त्रायस्त्रिंशः : जो देव मन्त्री और पुरोहित का काम करते हैं।
4. परिषद्यः : जो देव इन्द्र के मित्र सरीखे होते हैं।
5. आत्मरक्षकः : इन्द्र की रक्षा करने वाले जो शस्त्र लेकर इन्द्र के पीछे खड़े रहते हैं।
6. लोकपालः : सीमा की रक्षा करने वाले।
7. प्रकीर्णकः : नगर निवासी अथवा साधारण जनता की तरह रहने वाले देव।
8. अनीकः : सैनिक अथवा सेनानायक।
9. आभियोगिकः : सेवक देव जो दास के समान होते हैं।
10. किल्बिषिकः : अन्त्यज देव जो चाण्डाल के समान होते हैं।

आधार ग्रंथ - तत्त्वार्थाधिगम भाष्य अध्याय 4/4

4. दुर्लभ बोधि :

जिसे भविष्य में सद्धर्म की प्राप्ति होना दुर्लभ है, वह दुर्लभ-बोधि होता है। ठाणांग सूत्र में दुर्लभ-बोधि होने के पाँच कारणों का उल्लेख मिलता है :-

1. अरिहंतों का अवर्णवाद करने से
2. अरिहंत प्ररूपित धर्म का अवर्णवाद करने से
3. आचार्य-उपाध्याय का अवर्णवाद करने से
4. चतुर्विध-संघ का अवर्णवाद करने से
5. उत्कृष्ट तप एवं ब्रह्मचर्य पालन के फलस्वरूप देव बने हुआ का अवर्णवाद (निन्दा) करने से।

आधार ग्रंथ - जिणधम्मो/वही/147

5. चण्ड-प्रद्योतन :-

चण्ड प्रद्योतन राजा चेटक का जँवाई था। राजा चेटक वैशाली गणराज्य का गणाध्यक्ष था। उसकी रानी का नाम सुभद्रा था। उसके सात पुत्रियाँ थीं- 1. प्रियकारिणी 2. मृगावती 3. जयावती 4. सुप्रभा 5. ज्येष्ठा 6. चेलना 7. शिवादेवी।

इनमें 5 विवाहिता थीं- 1. प्रियकारिणी-कुण्डलपुर नरेश सिद्धार्थ (भगवान महावीर के पिता) के साथ 2. मृगावती का कौशाम्बी नरेश शतानीक के साथ 3. जयावती का विवाह दशार्ण देश के कुसुमपुर नगर के सूर्यवंशी राजा दशरथ के साथ 4. पद्मावती (सुप्रभा) का विवाह वीतभयपाटण के राजा उदायन के साथ 5. शिवादेवी का विवाह उज्जयिनी नरेश चण्डप्रद्योतन के साथ। 6. सुज्येष्ठा का विवाह नहीं हुआ। 7. चेलना राजा श्रेणिक के साथ।

आधार ग्रंथ - श्रेणिक चारित्र/ढाल 18

अन्य ग्रंथों में :- 1. प्रभावती का विवाह वीतभयपाटण के राजा उदायन के साथ 2. पद्मावती का विवाह चंपानरेश दधिवाहन के साथ 3. मृगावती का विवाह कौशाम्बी नरेश शतानीक के साथ। 5. ज्येष्ठा का कुण्डग्राम के शासक नन्दीवर्धन (भगवान महावीर के बड़े भाई) के साथ। छठी सुज्येष्ठा कुँआरी 7. चेलना का श्रेणिक के साथ।

आधार ग्रंथ - तिलोक काव्य कल्पतरु चरितावली भाग-2/वही/पृ. 16

6. वैशाली :- मुजफ्फर जिला में जहाँ आज बेसादपट्टी गाँव है, वहीं पहले महावीर के समय की विदेह देश की राजधानी वैशाली नगरी थी। वैशाली और वाणिज्य ग्राम की निश्रा भगवान महावीर ने कुल बारह चातुर्मास व्यतीत किये। वैशाली जैन धर्म के प्रमुख केन्द्रों में से एक थी। यहाँ का रज कुटुम्ब तथा नागरिकगण भी अधिकांश जैन थे। यही कारण है कि बौद्ध ग्रन्थकारों ने इस नगरी को पाखंडियों का अड्डा कहा है। नक्शे के हिसाब से वैशाली नगरी चम्पा से वायव्य दिशा में 125 मील और राजगृह से लगभग उत्तर में सत्तर मील की दूरी पर थी।



अनुत्तर ज्ञानचर्या का आठवां वर्ष : तप की बहारें

वैशाली का वर्षावास पूर्ण पर भगवान ने वैशाली से उत्तर विदेह¹ की ओर प्रयाण¹ किया, वहाँ से मिथिला² होते हुए भगवान काकन्दी³ नगरी पधारे।

जीवन निर्मात्री-माँ :-

काकन्दी उस समय उत्तर भारत की प्राचीन एवं प्रसिद्ध नगरी थी। आजकल लहुआउ से पूर्व में काकन्दी तीर्थ माना जाता है, लेकिन विद्वानों के मतानुसार काकन्दी का मूल स्थान यहाँ पर नहीं था, क्योंकि भगवान महावीर की विहारचर्या के वर्णन से यह स्पष्ट रूप से जाना जा सकता है कि काकन्दी नगरी उत्तर भारत वर्ष में कहीं स्थित थी। इतिहासकारों की शोध के अनुसार नूनखार स्टेशन से दो मील और गोरखपुर से दक्षिण पूर्व तीस मील पर दिगम्बर जैन जिस स्थान को किष्किंधा अथवा खुखुंदोजी नामक तीर्थ मानते हैं, वही प्राचीन काकन्दी है।⁴

1. प्रयाण-गमन

भगवान काकन्दी नगरी के सहस्राश्रवन उद्यान¹ में विराज रहे थे। वहाँ का राजा जितशत्रु अत्यंत धार्मिक प्रवृत्ति वाला था। वह जितशत्रु² पुत्रवत् अपनी प्रजा का पालन करता था।

उस काकन्दी नगरी में भद्रा नामक सार्थवाह पत्नी निवास करती थी। वह धनवती थी, उसके पास विस्तृत एवं विपुल भवन, शरया³ आसन⁴ यान⁵ वाहन आदि बहुतायत में थे। स्वर्ण एवं रजत भी उसके पास बहुलता से थे। वह ऋण के लेन-देन में अत्यंत कुशल थी। शास्त्रकारों ने भद्रा को सार्थवाही विशेषण से अंकृत किया है, इससे यह स्पष्ट सिद्ध है कि वह देश-विदेश में बड़े पैमाने से व्यापार करती थी और सार्वजनिक कार्यों में महत्त्वपूर्ण रीति से भाग लेती थी।

भद्रा सार्थवाही अत्यंत उदारमना थी। उसके यहाँ पर भोजन करने के अनन्तर भी बहुत-सा अन्न-पानी बच जाता था। उसके घर में दास-दासी आदि सेवक और गाय, भैंस, बकरी आदि पशु थे। वह किसी से पराभूत⁶ नहीं होने वाली एवं जनता के लिए सम्माननीय थी।

उस भद्रा सार्थवाही के धन्यकुमार नामक एक पुत्र था। धन्यकुमार की पाँचों इन्द्रियाँ सुदौल थी। उसका शरीर स्वस्तिक आदि उत्तम लक्षणों एवं तिलमष आदि व्यंजन और अनेक गुणों से संयुक्त था। उसके मुखमण्डल से झलकने वाली कान्ति बरबस सबके मन को मुग्ध बना डालती थी। उसका कमनीय⁷ गात्र⁸ नेत्रों को समाकृष्ट करने में अतीव सक्षम था।

धन्यकुमार का पालन-पोषण पाँच धार्यों* द्वारा किया जाता था 4 धन्यकुमार शनैः-2 वृद्धि को प्राप्त होने लगे। तब किसी एक दिन माता-पिता ने शुभ तिथि, करण और मुहुर्त में कलाचार्य के पास भेजा। जहाँ धन्यकुमार ने 72 कलाएँ सीखी।⁹

1. सहस्राश्रवन उद्यान का वर्णन अनेक नगरों के बाहर मिलता है यथा- (i) काकन्दी के बाहर (ii) गिरनार पर्वत पर (iii) काम्पिल्य नगर के बाहर (iv) पाण्डु मथुरा के बाहर (v) मिथिला नगरी के बाहर (vi) हस्तिनापुर के बाहर। 2. जैन ग्रंथों में जितशत्रु राजा का बहुत उल्लेख मिलता है। निम्न नगरों के राजा का नाम जितशत्रु बतलाया है- (i) वाणिज्य ग्राम (ii) चम्पा नगरी (iii) उज्जयिनी (iv) सर्वतो भद्र नगर (v) मिथिला नगरी (vi) पाँचाल देश (vii) आमल कल्पानगरी (viii) सावत्यीनगरी (ix) वाराणसी (x) आलभिया (xi) पोलासपुर। 3. शय्या-मकानादि 4. आसन-बैठने योग्य साधन 5. यान-रथादि सवारी योग्य साधन 6. पराभूत-पराजित/तिरस्कृत 7. कमनीय-कोमल 8. गात्र-शरीर* पाँच धार्यों का वर्णन अपश्चिम तीर्थकर भाग-2 में देखें। 9. बहतर कलाओं का वर्णन अपश्चिम तीर्थकर भाग-2 में देखें।

क्रमशः धन्यकुमार 72 कलाओं में निपुण हो गये। अठाराह देशी भाषाओं के ज्ञाता हो गये। युवावस्था ने आकर जब दस्तक दिया तो वे अश्वयुद्ध, गजयुद्ध, रथयुद्ध में कुशल एवं शत्रुओं का मान-मर्दन करने में समर्थ हो गये। उनमें भोग-भोगन का सामर्थ्य आ गया। उनका मन इतना निर्भीक हो गया कि अर्धरात्रि में भी अकेले चले जाने में वे समर्थ थे।

जब धन्यकुमार गति एवं रति में अनुराग-युक्त, गान्धर्व गान एवं नाट्य क्रिया में पारंगत, हास्य विलासादि चेष्टाओं में कुशल हो गया। तब भद्रा सार्थवाही ने उसके लिए विशाल उन्नत बत्तीस सुंदर प्रासाद बनवाये।

मणि, सुवर्ण और रत्नों से चित्रित वैजयन्ती^१ से युक्त गगन तल का स्पर्श करते हुए से वे प्रासाद विहंसते हुए प्रतीत होते थे।

उन प्रासादों^१ के मध्य एक उत्तम भवन का निर्माण करवाया गया, जो सैकड़ों स्तम्भों^२ पर अवलम्बित^३ था। उस भवन में अनेक प्रकार के चित्र उकेरे^४ गये थे, जो दर्शकों का चित्त समाकृष्ट करते थे।

भद्रा सार्थवाही ने उचित समय जानकर धन्यकुमार का बत्तीस श्रेष्ठी कन्याओं के साथ विवाह कर दिया और उन कन्याओं को बत्तीस-2 हार, कुण्डल, मुकुट आदि जो उनकी सात पीढ़ी तक भोगने के लिए पर्याप्त थे।

जाऊँ प्रभु समीप :-

धन्यकुमार उन बत्तीस पत्नियों के साथ उत्तम भोग-भोगने लगा। उस समय श्रमण भगवान काकन्दी नगरी पधारे। भगवान के आगमन के समाचार श्रवण करके परिषद प्रभु के दर्शन, वन्दन एवं प्रवचन के लिए निकली। कोणिक^५ राजा की तरह जितशत्रु भी भगवान महावीर के दर्शनार्थ जाने लगा। लोगों के समूह के समूह प्रभु के दर्शनार्थ जाने लगे। धन्यकुमार ने समूह को देखा। जब इस बात की जानकारी हुई कि भगवान महावीर काकन्दी^६ नगरी में पधारे हैं, तब वह भी पैदल ही भगवान महावीर के दर्शन के लिए जाने लगा।^{III}

समवसरण में पहुँचकर उसने भगवान के दर्शन किये और प्रभु वाणी को श्रवण करने लगा। भगवान की भवजल तारिणी वाणी श्रवण कर उसके मन में अत्यंत आह्लाद

1. प्रासाद-महल 2. स्तम्भ-खम्भे 3. अवलम्बित-आधारित/टिका हुआ 4. उकेरे-बनाये 5. वर्तमान में गोरखपुर से दक्षिण-पूर्व तीस मील पर नूनखार स्टेशन से दो मील कहीं पर काकन्दी रही होगी। 6. काळंडी का वर्णन औपपातिक सूत्र में देखें।

पैदा हुआ। तब वह प्रभु के समीप गया। तीन बार भगवान महावीर को आदक्षिणा-प्रदक्षिणा व वन्दन नमस्कार किया और इस प्रकार कहने लगा- भगवान आपश्रीजी की वाणी सत्य है, तथ्य और असंदिग्ध है, मुझे आपकी वाणी श्रवण करने पर वैराग्य भाव पैदा हो गया है। मैं माता-पिता से अनुमति लेकर आपश्रीजी के पास संयम अंगीकार करना चाहता हूँ। भगवान ने फरमाया- देवानुप्रिये! तुम्हें जैसा सुख हो, वैसा करो, लेकिन धर्म कार्य में प्रमाद मत करो।

संयम का राजमार्ग :-

भगवान के ऐसा फरमाने पर धन्यकुमार अपने घर लौट कर आये और माता की जय हो, इस प्रकार बोलकर माता से कहा- आज मैंने भगवान की अत्यंत सारगर्भित सत्यवाणी को श्रवण किया है। मुझे भगवान के वाणी श्रवण करने पर संसार से वैराग्य पैदा हो गया है। मैं जन्म, जरा और मरण के चक्र से विनिर्मुक्त¹ होना चाहता हूँ, अतएव मैं भगवान के चरणों में प्रब्रज्या अंगीकार करना चाहता हूँ।

धन्यकुमार की माता इस अनिष्ट, मन को अप्रिय वाणी को श्रवण कर मूर्च्छित हो गयी और होश में आने पर कपोलों² को अश्रुधारा से भिगोती हुई इस प्रकार बोली-वत्स! तू मेरा एक ही पुत्र है, जो मुझे श्वास के समान जीवन देने वाला है। हम तेरा वियोग एक क्षण के लिए भी सहन करने में सक्षम नहीं हैं। इसलिए हमारे कालधर्म के प्राप्त होने पर तू संयम अंगीकार करना।

तब धन्यकुमार ने कहा- माता यह मनुष्य जीवन जन्म, मरण, रोग, व्याधि और अनेक प्रकार के कष्टों से परिपूर्ण, अध्रुव³ अनित्य⁴ अशाश्वत⁵ है। यह अवश्यमेव एक दिन छोड़ना ही पड़ेगा। लेकिन यह पता नहीं कि पहले कौन जायेगा? इसलिए आप मुझे आज्ञा दीजिए। मैं अतिशीघ्र भगवान महावीर के चरणों में प्रब्रज्या अंगीकार करना चाहता हूँ।

धन्यकुमार के इसी प्रकार वैराग्य-परक वार्ता को श्रवण कर भद्रा सार्थवाही⁶ ने धन्यकुमार को प्रब्रज्या ग्रहण करने की अनुमति प्रदान कर दी।

1. विनिर्मुक्त-विशेष मुक्त/रहित 2. कपोलों-गालों 3. अध्रुव-अनिश्चित/अस्थिर 4. अनित्य-चलायमान 5. अशाश्वत-नाशमान् 6. धन्यकुमार की माता ही थी, ऐसा ही उल्लेख मिलता है। पिता का उल्लेख नहीं मिलता।

तत्पश्चात् यावच्चा पुत्र के दीक्षा प्रसंग पर जैसे उनकी माता ने श्रीकृष्ण से छत्र-चामरादि की याचना की, वैसे ही भद्रा सार्थवाही* ने जितशत्रु राजा से छत्र-चामरादि की याचना की। जितशत्रु राजा ने श्रीकृष्ण की तरह धन्यकुमार का दीक्षा महोत्सव सम्पन्न किया।

विकृति-त्याग से वीतरागता की ओर :-

तत्पश्चात् धन्यकुमार ने पंचमुष्टि लोच करके संयम अंगीकार किया और जिस दिन प्रव्रजित हुए उसी दिन उनके मन में तप करने के विशिष्ट अध्यवसाय¹ जागृत हुए। वे प्रभु महावीर के पास गये। उन्होंने भगवान महावीर को वन्दन-नमस्कार किया और इस प्रकार निवेदन करने लगे-

भगवन्! आपकी अनुज्ञा मिलने पर मैं जीवनपर्यन्त बेला-2 तप^{iv} करके पारणे में आयम्बिल^{iv} करना चाहता हूँ। उस आयम्बिल तप में मैं संसृष्ट हाथों (अन्न-पानी आदि से हाथ भरे हो उन्हीं हाथों से) से आहार आदि ग्रहण करना चाहता हूँ, असंसृष्ट हाथों से नहीं। जो अन्न मैं ग्रहण करूँगा, वह अन्न उज्झित धर्म वाला अर्थात् जो अन्न गृहस्थ द्वारा सर्वथा त्याग कर देने योग्य हो अथवा फेंकने योग्य हो, वह ग्रहण करना चाहता हूँ, अनुज्झित धर्म वाला ग्रहण करना मुझे नहीं कल्पता। उसमें से भी उस प्रकार का आहार-पानी मुझे लेना कल्पता है, जिस आहार-पानी को बहुत से श्रमण, ब्राह्मण, अतिथि, कृपण और वनीपक (भिखारी) भी ग्रहण करना न चाहे।

धन्य अणगार के निवेदन को श्रवण करके भगवान महावीर ने कहा- हे देवानुप्रिये! तुम्हें जैसा सुख हो, वैसा करो, लेकिन जरा भी प्रमाद मत करो।

तब श्री धन्य अणगार भगवान महावीर से आज्ञा लेकर अत्यंत आह्लादित हुए और जीवनपर्यन्त बेले तप और पारणे में आयम्बिल करने का अभिग्रह^८ लेकर अपनी आत्मा को तप-संयम से भावित करने लगे।

तदनन्तर धन्य अणगार के बेले का तप सम्पन्न होने पर पारणे का दिन उपस्थित हुआ। तब उन्होंने प्रथम प्रहर में स्वाध्याय किया,^v द्वितीय प्रहर में ध्यान किया, तृतीय

*भद्रा के साथ में रहे हुए सार्थवाही- शब्द से यह सिद्ध होता है कि यह व्यापार के अतिरिक्त अन्य सार्वजनिक कार्यों में भाग लेती रही होगी। तथा देश-विदेश में बड़े पैमाने पर व्यापार करती होगी।

1. अध्यवसाय-आत्म-परिणाम

८ आहारादि लेने में पदार्थों की मर्यादा बांधना, विशेष प्रकार का नियम लेना अभिग्रह है।

ग्रहण में गोचरी का समय होने पर शारीरिक शीघ्रता एवं मानसिक चपलता से रहित होकर अनाकुल और अनुत्सुक बनकर पात्र आदि का प्रतिलेखन कर भगवान महावीर के समीप आये और भगवान को वंदन-नमस्कार करके इस प्रकार का निवेदन किया- भंते! आज मेरे बेले का पारणा है। आपकी अनुज्ञा होने पर मैं काकन्दी-नगरी में उच्च, नीच और मध्यम- कुल में भिक्षा-विधि के अनुरूप भिक्षाचर्या के लिए जाना चाहता हूँ।

भगवान महावीर ने फरमाया- हे देवानुप्रिये! तुम्हें जैसा सुख हो, वैसा करो।

भगवान से आज्ञा मिलने पर धन्य अणगार भगवान के समीप से सहस्राभ्रवन उद्यान से निकले। निकलकर शारीरिक शीघ्रता से रहित, मानसिक चपलता से रहित, अनाकुल¹ अनुत्सुक² युगप्रमाण भूमि को देखते हुए, ईर्या-समितपूर्वक काकन्दी नगरी में आये।

काकन्दी नगरी के उच्च, नीच एवं मध्यम कुलों में आयम्बिल रूप आहार ही ग्रहण किया। उन्होंने सरस आहार ग्रहण करने की आकांक्षा का भी परित्याग कर दिया।

इस प्रकार धन्य अणगार उत्कृष्ट प्रयत्न वाली, गुरुजनों द्वारा अनुज्ञात एवं पूर्णतया शुद्ध एषणा³ से गवेषणा करने लगे। उन्हें कभी आहार प्राप्त हुआ तो पानी नहीं और पानी प्राप्त हुआ तो आहार नहीं, लेकिन ऐसी स्थिति में भी धन्य अणगार अदीन, प्रसन्नचित्त, कषाया की कलुषता से रहित खेद रहित, समाधि में लीन रहे। वे आहारपानी ग्रहण करके काकन्दी नगरी से बाहर निकले और भगवान के सन्निकट पहुँचे।

भगवान के श्रीचरणों को प्राप्त करके धन्य अणगार ने गमनागमन सम्बन्धी प्रतिक्रमण किया, भिक्षा-चर्या में लगे दोषों की आलोचना की और भगवान को आहार पानी दिखलाया।

भगवान के आहार-पानी देखने के पश्चात् जब भगवान महावीर ने धन्य अणगार को आहार करने की अनुमति प्रदान की, तब धन्य अणगार अनासक्ति से भोजन ग्रहण करने लगे। जैसे सर्प पार्श्व भाग का स्पर्श किये बिना सीधा ही बिल में घुस जाता है, वैसे ही वे स्वादरहित होकर मात्र संयम निर्वाह के लिए आहार ग्रहण करने लगे।

धन्य अणगार की उत्कृष्ट तपश्चर्या⁴ और पारणा निरंतर चल रहा था। कितना भव्य त्याग उनके जीवन में, जिन्होंने दीक्षा लेकर कभी विगय का सेवन नहीं किया, कभी

1. अनाकुल-व्याकुलता रहित 2. अनुत्सुक-उत्सुकता रहित 3. एषणा-निर्दोष भिक्षादि ग्रहण करना, जिससे अन्वेषणा (खोज) की जाती है, वह एषणा है। 4. आयम्बिल-विगय-रहित रूक्ष आहार ग्रहण करना।

फलों को चखा तक नहीं, कभी पिस्ता, बादाम, काजू, अखरोट ग्रहण नहीं किया, कभी इलायची आदि मुखवास को खाया नहीं।

दीक्षा ग्रहण करते ही उत्कृष्टतम त्याग^{VI} कर लिया। जीवनभर आयम्बिल^{*1} करने की प्रतिज्ञा कर डाली। अपनी रसनेन्द्रिय पर उन्होंने जबर्दस्त अंकुश लगा दिया। अनासक्ति का आदर्श उपस्थित कर दिया। सभी प्रकार के सरस भोजन का त्याग कर नीरस भोजन स्वेच्छा से स्वीकार कर लिया। अहो! धन्य है ऐसे महामुनि का जीवन, जिन्होंने शरीर के ममत्व का परित्याग कर आत्मसाधना में स्वयं को तल्लीन कर लिया।

इधर धन्ना अणगार आत्म साधना के शिखरों का संस्पर्श कर रहे हैं, उधर भगवान महावीर सहस्राभ्रवन उद्यान से निकले और बाहरी जनपदों में विचरण करने लगे। धन्ना अणगार तपश्चर्या के साथ-2 अध्ययन भी कर रहे थे। उन्होंने अध्ययन में अपनी तल्लीनता धारण की और स्वल्प समय में ग्यारह अंगों का अध्ययन कर लिया। अध्ययन करने के पश्चात् वे तप, संयम से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरण करने लगे।

धन्ना अणगार उत्कृष्टतम तपश्चर्या में निरत बने हुए थे। उन्होंने मन और इन्द्रियों पर इस प्रकार से विजय प्राप्त कर लिया कि वे देहातीत अवस्था में चले गये। शरीर के प्रति अत्यंत निस्पृह बन गये और अग्लान भाव से तपस्या में तल्लीन बन गये।

आखिरकार निरंतर तप करते हुए उनका शरीर तपस्या से कृशकाय बन गया। शरीर में रूक्षता बढ़ गयी, हड्डियाँ मात्र चर्म से ढकी हुई प्रतीत होने लगी।

उनकी हड्डियाँ जब वे चलते या खड़े रहते तो ऐसे खड़-खड़ करती जैसे सूखी लकड़ियों से भरी गाड़ी, पत्तों से भरी गाड़ी, तिल और सूखे सामान से भरी गाड़ी, एरंड की लकड़ियों से भरी गाड़ी, कोयले से भरी गाड़ी आवाज करती है। ये सब गाड़ियाँ धूप में अच्छी तरह सुखाये सामान को भरकर जब चलती है तो खड़-खड़ की आवाज करती हुई चलती है और खड़-खड़ की आवाज करती हुई खड़ी रहती हैं। इसी प्रकार जब धन्य अणगार चलते या खड़े रहते तो उनकी हड्डियाँ कड़कड़ करती थीं। उनकी नसें स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होती थीं। उनका शारीरिक बल अत्यंत क्षीण हो गया था, तथापि वे आत्मबल से ही अपना जीवन निर्वाह कर रहे थे। वे आत्मबल से ही गमनागमन करते थे और आत्मबल से ही खड़े रहते थे। वे भाषा बोलूंगा इतना विचार करने मात्र से थक जाते

1. बदरी-बेर

थे और जब बोलते तब बहुत थकान का अनुभव करते थे।

इस प्रकार धन्य अणगार शरीर से अत्यंत दुर्बल हो गये थे, तथापि वे तप से अतीव पुष्ट थे। राख के ढेर में दबी हुई अग्नि के समान वे तप से, तेज से, तप स्तेज की शोभा से अतीव-2 शोभित हो रहे थे।

धन्य अणगार के शरीर में जबर्दस्त परितर्वन हो गया था। उनके दोनों चरण इस प्रकार सूख गये थे जैसे सूखी हुई वृक्ष की छाल, लकड़ी की खड़ाऊँ अथवा पुराना जूता हो। इस प्रकार उनके पैरों में मांस और रूधिर दृष्टिगत नहीं होता था, केवल हड्डी, चमड़ा और नसें ही देखने में आती थी।

उनके पैरों की अंगुलियां मटर, मूंग और उड़द की उन फलियों के समान सूख गयी थीं, जो कोमल-कोमल अवस्था में तोड़कर धूप में डाल दी गयी हो।

धन्य अणगार की जंघाएँ इस प्रकार सूख कर निर्मांस और रूधिर रहित हो गयी थी जैसे काक पक्षी, कंक पक्षी की अथवा टिड्डे की जंघा हो।

उनके घुटने रूधिर और मांस के क्षीण होने से इतने मुरझा गये थे मानो काकजंघा नामक वनस्पति विशेष की गाँठ हो अथवा मयूर और ढंक पक्षियों के सन्धि स्थान हो।

उनके दोनों उरू मांस और रूधिर रहित होने से ऐसे हो गये थे मानो धूप में सूखाने के कारण मुरझाई हुई बदरी¹, शल्य की शाल्मली वृक्षों की कोंपलें हो।

धन्य अणगार की कमर का तपोजनित लावण्य इस प्रकार हो गया था जैसे ऊँट, वृद्ध बैल का पैर हो। उनका पेट ऐसा परिलक्षित² हो रहा था मानो सूखी मशक, चणकादि भूने का खप्पर या आटा गूंदने की कठौती हो अर्थात् उदर बीच में एकदम खोखला हो गया था। उनकी पसलियाँ ऐसी प्रतीत होती थी मानों जैसे ढलान पर एक दूसरे के ऊपर रखी हुई दर्पणों की पंक्ति हो, एक दूसरे पर रखे गिलासों की पंक्ति हो या खूंटों की पंक्ति हो। जैसे इन वस्तुओं को गिना जा सकता है, वैसे ही धन्य अणगार की पसलियाँ गिनी जा सकती थीं।

धन्य अणगार के पृष्ठ करण्डक (रीढ़ का ऊपरी भाग) का ऐसा स्वरूप हो गया था जैसे मुकुटों की किनारियों के कोरों का भाग हो, परस्पर चिपकाये हुए गोल-2 पत्थरों की पंक्ति हो अथवा लाख के बने हुए बालकों के खेलने के गोले हो। मात्र अस्थि और चर्म ही दृष्टिगोचर हो रहा था।

धन्य अणगार के वक्षःस्थल का तपोजनित लावण्य इस प्रकार का था मानो बाँस

1. परिलक्षित-दिखाई देना

की टोकरी का निचला हिस्सा हो, बाँस की बनी खपच्चियों का पंखा हो अथवा ताड़ पत्र का बना पंखा हो।

धन्य अणगार की भुजाओं का लावण्य इस प्रकार परिलक्षित होता था जैसे शमी (खेजड़ी), बहाया अथवा अगस्तिक वृक्ष की शुष्क लम्बी फलियाँ हो।

उनके हाथ ऐसे प्रतीत होते थे। जैसे शुष्क गोमय¹ का कंड़ा, वटवृक्ष या पलाश का पत्ता हो। उनके हाथों की अंगुलियाँ मटर, मूंग और उड़द की शुष्क फलियों के समान मांस और रूधिर से रहित हो गयी थीं।

धन्य अणगार की ग्रीवा इस प्रकार शुष्क और लम्बी दिखाई दे रही थी मानो करवे* की गर्दन, छोटी कुंडी (पानी की झारी), उच्च स्थापनक (सुराही की गर्दन) हो। धन्य अणगार की ठोड़ी इस प्रकार निर्मांस हो गयी थी मानो तुम्बे का, हिगोटे का सूखा फल हो अथवा आम की गुठली हो।

धन्य अणगार के होठ मांस और शोणित रहित होकर इस प्रकार प्रतीत होते थे मानो शुष्क जलौका (द्विन्दिय जल जन्तु विशेष), श्लेष्म की गुटिका हो या लाक्षा² रस की गुटिका हो।

उनकी जिह्वा सूखकर ऐसी कड़क हो गयी थी मानो वट, पलाश और सागवान का सूखा पत्ता हो।

जैसे आम की फाँक, आम्रातक³ (फल विशेष) की फाँक, बिजौरै की फाँक को धूप में सुखाने से वह मुरझा जाती है, सिकुड़ जाती है, उसी प्रकार मांस और शोणित⁴ रहित धन्य अणगार की नासिका हो गयी थी।

धन्य अणगार के नयनों की तपोजनित शोभा इस प्रकार लगती थी मानो वीणा या बांसुरी का छिद्र हो अथवा प्रभातकालीन तारा हो। उनके नेत्र अंदर धंस गये थे, मात्र आँखों की कीकी टिमटिमाहट कर रही थी।

धन्य अणगार के कान मूले की, ककड़ी की, और करेले की कटी हुई लम्बी, पतली छाल के समान शुष्क हो गये थे। धन्य अणगार का मस्तक देखने पर ऐसा लगता था मानो तुम्बा, आलुक (आलू की एक जाति) सिस्तालक (फल विशेष) काटकर धूप में सूखा दिया गया हो और मुरझा गया हो।

वास्तव में तपस्या के कारण उनके पैर, जंघा, उरू आदि अत्यंत शुष्क एवं रूक्ष

1. गोमय-गोबर 2. लाक्षा-लाख 3. शोणित-रक्त

* करवा-जलपात्र विशेष/आज भी मारवाड़ में करवे से बच्चों को दूध पिलाते हैं।

बन गये थे। उनकी कटि मानो हलवाई की कड़ाई हो, वह मांस क्षीण होने से तथा अस्थियों के ऊपर उठने से दोनों पाश्वर्यो में उन्नत होने से वीभत्स लग रही थी। यकृत एवं प्लीहा आदि क्षीण होने से उनके रीढ़ की सन्धियाँ एवं पसलियाँ स्पष्ट रूप से गिनी जा सकती थीं। उरःस्थल¹ गंगा की तरंगों के समान स्पष्ट परिलक्षित होने वाले अस्थियों का ढांचा मात्र था। उनके भुजदण्ड सूखे सर्प के समान लम्बे एवं सूखे हुए थे। उनके हाथ अश्व निरंतर हिलते रहते थे। कम्पन-वातग्रस्त रोगी की तरह उनका मस्तक काँपता रहता था। उनका मुख-कमल क्षीण कांति वाला हो गया था। होंठ शुष्क हो जाने से उनका मुख फूटे हुए घटवत्² विकृत-सा लग रहा था। नयन अंदर धँस गये थे। वे आत्मबल से ही गमनागमन करते थे, न कि शरीर बल से।

चलते समय उनके शरीर की हड्डियाँ ऐसे शब्द करती थी मानो कोयलों से भरी गाड़ी हो।

यद्यपि स्कन्दक-मुनि की तरह धन्य अणगार का शरीर अत्यन्त कृशकाय बन गया था, तथापि राख के ढेर से ढँकी हुई अग्नि के समान उनकी आत्मा भीतर से अत्यन्त दैदीप्यमान हो गयी थी। वास्तव में धन्य अणगार तप से, तेज से, तपस्तेज की शोभा से अत्यन्त सुशोभित होकर अपनी साधना में स्थिर, अडिग और अडोल थे।

ऐसी महान् तपश्चर्या करने पर शरीर के अत्यन्त कृशकाय होने पर भी उनका मन तप से उपरत नहीं बना। इस प्रकार धन्य-अणगार तपश्चर्या में लीन बनकर आत्मसमाधि में स्थित थे।

महादुष्करकारक महानिर्जराकारक श्रमणः-

धन्य अणगार पर महती-अनुकम्पा करके देवाधिदेव भगवान महावीर वाणिज्य ग्राम का वर्षावास पूर्ण करके राजगृह नगर पधारे और गुणशीलक चैत्य^{viii} में विराजने लगा। राजा श्रेणिक को जब यह ज्ञात हुआ कि परमात्मा महावीर पधारे हैं तो वह भगवान की धर्मदेशना श्रवण करने हेतु गया। परिषद भी धर्मदेशना श्रवण करने हेतु चली गयी। भगवान ने राजा श्रेणिक एवं परिषद को धर्मोपदेश दिया।

धर्म श्रवण करके परिषद लौट गयी। तब राजा श्रेणिक के मन में जिज्ञासा पैदा हुई कि भगवान महावीर के 14 हजार साधु हैं, इन समस्त साधुओं में ऐसे कौन से अणगार भगवन्त हैं, जो महादुष्कर तपश्चर्या कर रहे ? मैं भगवान के समीप में जाकर इस

1. उरः स्थल-वक्षस्थल 2. घटवत्-घड़े की तरह

जिज्ञासा का समाधान प्राप्त करूँ। ऐसा चिन्तन करके वे भगवान महावीर के सन्निकट गये, उन्होंने भगवान महावीर को वन्दन-नमस्कार किया और भगवान से पृच्छा की- भगवन्! आपके इन्द्रभूति प्रमुख चौदह हजार साधुओं में कौनसा अणगार महादुष्करकारक और महानिर्जराकारक है?

भगवान- श्रेणिक! इन चौदह हजार श्रमणों में धन्य अणगार महादुष्करकारक है, महानिर्जराकारक¹ है।

श्रेणिक- भगवन्! आप किस दृष्टि से ऐसा फरमा रहे हैं?

भगवान- धन्य अणगार काकन्दी का श्रेष्ठ पुत्र है, जिसने उत्तम भागों का परित्याग कर यह श्रमण जीवन अपनाया है। उसने जीवनपर्यन्त बेले-2 पारणा तथा पारणे में उत्कृष्टतम आयम्बिल तप स्वीकार किया है। जैसा आहार भिखारी भी ग्रहण नहीं करता वैसा रूक्ष, नीरस² आहार यह ग्रहण कर रहा है। उसकी शरीर एवं आहार के प्रति अनासक्ति आचरणीय एवं अनुकरणीय है। इस प्रकार तप से इसने अपने शरीर को सूखा डाला है, फिर भी इसके अध्यवसाय अत्यन्त निर्मल है। इस दृष्टि से मैं जैसा कहता हूँ कि इन्द्रभूति प्रमुख चौदह हजार साधुओं में धन्य अणगार महादुष्करकारक और महानिर्जराकारक है।

भगवान महावीर के मुखारविन्द से इस तथ्य को श्रवण करके श्रेणिक राजा का मन आनंदविभोर हो गया तथा उसी आनंद में निमग्न होकर श्रमण भगवान महावीर को वन्दन-नमस्कार करके जहाँ धन्य अणगार था, वहाँ पर गये। धन्य अणगार को वन्दन नमस्कार किया और उनसे इस प्रकार कहा-

“हे देवानुप्रिये! आप धन्य हो, आप पुण्यशाली हो, आप कृतार्थ हो, आप सुकृत लक्षण हो। हे देवानुप्रिये! आपने मनुष्या जन्म और मनुष्य जीवन को सफल किया है।”

इस प्रकार धन्य अणगार की यथार्थ स्तुति करके श्रेणिक राजा ने धन्य अणगार को वन्दन-नमस्कार किया, तदनन्तर वह अपने राजमहल की ओर लौट गया।

धन्य अणगार अपनी तपश्चर्या में तल्लीन बने हुए थे। आत्मबल बढ़ता जा रहा था और देह बल क्षीणप्राय होता जा रहा था। तब एक समय मध्य रात्रि के समय धर्म-जागरण करते हुए धन्य अणगार के मन में इस प्रकार के अध्यवसाय उत्पन्न हुए-

इस उदार तप: कर्म से मेरा शरीर निर्बल हो गया है। अब अधिक समय तक इस

1. महानिर्जराकारक-महानिर्जरा करने वाला 2. नीरस-रस रहित/रूखा

□ निर्जरा-एक अंश से कर्मों का क्षय करना।

देह¹ का टिक पाना असम्भव है, अतः अब मुझे चरम² साधना संलेखणा^{•viii} संधारा ग्रहण कर लेना चाहिए। ऐसा चिन्तन करके प्रातःकाल होने पर धन्य अणगार भगवान महावीर के समक्ष उपस्थित हुए। उन्होंने भगवान से निवेदन किया- भगवन्! आपकी अनुज्ञा प्राप्त होने पर मैं विपुलगिरि^{viii} पर्वत पर जाकर पादपोपगमन^५ अनशन स्वीकार करना चाहता हूँ।

तब भगवान ने फरमाया हे देवानुप्रिय! तुम्हें जैसा सुख हो वैसा करो, लेकिन श्रेष्ठ कार्य में विलम्ब³ मत करो।

तब प्रभु की आज्ञा मिलने पर धन्य अणगार ने उपस्थित श्रमण-श्रमणी से क्षमायाचना की और स्थविर भगवन्तों के साथ वे विपुलगिरि पर्वत पर शनैः शनैः आरूढ़ हो गये। विपुलगिरि पर पहुँचकर महान् आत्मबली धन्य अणगार ने कृष्ण वर्ण वाली शिलापट्ट पर प्रतिलेखन करके दर्भ⁴ का संस्तारक⁵ बिछाया और पद्मासन की मुद्रा में पूर्व दिशा की ओर मुँह करके बैठ गये। उन्होंने अपने दोनों हाथ जोड़े, सिर पर आवर्तन⁶ किया और नमोत्थुणं के पाठ से सर्वप्रथम सिद्ध भगवन्तों को नमस्कार किया तत्पश्चात् नमोत्थुणं के पाठ से श्रमण भगवान महावीर को नमस्कार किया और निवेदन किया- भगवन्! आप वहाँ विराजमान होते हुए भी सबकुछ देख रहे हैं, अतः भंते! मेरी यहीं से वंदना स्वीकार कीजिए। मैंने पूर्व में आपश्री से अठारह पाप स्थानों का परित्याग किया था, अब भी मैं आपश्रीजी की साक्षी से उन पाप-स्थानों का जीवनपर्यन्त के लिए त्याग करता हूँ। अशन, पान, खादिम और स्वादिम के त्याग के साथ मैं अपने शरीर का भी जीवनपर्यन्त के लिए व्युत्सर्ग⁷ करता हूँ। इस प्रकार इन सबका त्याग करने के पश्चात् मैं पादपोपगमन नामक अनशन स्वीकार करता हूँ।

इस प्रकार पादपोपगमन अनशन स्वीकार करके वे जीवन मरण की आकांक्षा से रहित हो गये। जैसे टूटा हुआ वृक्ष निश्चेष्ट हो जाता है, वैसे ही उन्होंने शरीर के हलन-चलन तक को विराम दे दिया और आत्मसाधना में तल्लीन हो गये।

इस प्रकार अपने अणगार जीवन में धन्य मुनि ने सामायिक आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। नव मास तक दीक्षा पर्याय का परिपालन किया और एक मास का 1. देह-शरीर 2. चरम-अन्तिम 3. विलम्ब-देर ५पादपोपगमन-किसी अंग को नहीं हिलाते हुए निश्चल रूप से संधारा करना। 4. दर्भ-डाभ 5. संस्तारक-बिछौना 6. आवर्तन-घूमना •शारीरिक और मानसिक तप से कषाय आदि आत्मविकारों को तथा काया को कृश करना। 7. व्युत्सर्ग-विशेष रूप से त्याग करना।

अनशन तप करके साठ भक्त* का छेदन कर आलोचना-प्रतिक्रमण करके समाधिमरण को प्राप्त किया।

धन्य अणगार के स्वगगमन होने के पश्चात् उनकी परिचर्या करने वाले स्थविर मुनिवरों ने परिनिर्वाण[□] सम्बन्धी कायोत्सर्ग किया। तत्पश्चात् उनके वस्त्र, पात्र आदि उपकरणों को ग्रहण किया और वे विपुलगिरि पर्वत से नीचे उतरे।

विपुलगिरि से नीचे उतरकर जहाँ भगवान महावीर थे, वहाँ पर आये। आकर भगवान को वंदन-नमस्कार करके धन्य अणगार के समाधिमरण के समग्र वृत्तान्त को प्रभु को सुनाया तत्पश्चात् धन्य अणगार के धर्मोपकरणों को प्रभु को सौंप दिया।

उसी समय इन्द्रभूति गौतम ने भगवान से प्रश्न किया- भंते! आपका विनीत शिष्य धन्य अणगार समाधिमरण को प्राप्त करके कहाँ गया? कहाँ उत्पन्न हुआ? वहाँ उनकी कितनी स्थिति है? वे वहाँ से च्यवकर कहाँ उत्पन्न होंगे?

भगवान ने अपने श्रीमुख से फरमाय- गौतम! प्रकृति से भद्रिक और विनयवान मेरा शिष्य धन्य अणगार* समाधिमरण प्राप्त करके सवार्थसिद्ध विमान में उत्पन्न हुआ है। वहाँ उसकी स्थिति तैंतीस सागरोपम की है। वह वहाँ से च्युत होकर महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होकर मोक्ष प्राप्त करेगा। सिद्ध, बुद्ध और मुक्त होकर परिनिर्माण प्राप्त कर सब दुःखों का अंत करेगा।^{viii}

टिप्पण : धन्य अणगार की दीक्षा संभवतः इस वर्ष में लगभग फाल्गुन के पश्चात् ही होने की पूर्ण संभावना लगती है, क्योंकि शास्त्र में धन्य अणगार की दीक्षा 9 मास बतलायी है और साथ में ऐसा भी उल्लेख किया है कि भगवान के पुनः राजगृह पधारने तक उनकी तपश्चर्या चल रही थी। भगवान ने धन्य अणगार की दीक्षा के पश्चात् वाणिज्यग्राम में वर्षावास सम्पन्न किया और वर्षावास के पश्चात् भगवान पुनः राजगृह पधारे। भगवान के पुनः राजगृह पधारने के पश्चात् ही धन्य अणगार ने भगवान

* साठ भक्त की वृत्तिकार ने इस प्रकार व्याख्या की है- प्रतिदिनं भोजन द्वयस्य परित्यागात्त्रिंशत दिनैः षष्ठि भक्तानां व्यक्ता भवति अर्थात् प्रत्येक दिन के दो भक्त (भोजन) होते हैं। इस प्रकार एक माह के साठ भक्त होते हैं। धन्य अणगार ने एक मास पर्यन्त अनशन धारण किया तो साठ भक्तों का परित्याग हो गया।

□परिनिर्वाणम्-मरणं यत्र, यच्छरीरस्य परिष्ठापनं तदपि परिनिर्वाणं मेव तदेव प्रत्ययो हेतुर्यस्य स परिनिर्वाण-प्रत्ययः अर्थात् मृत साधु के शरीर का परिष्ठापन करना परिनिर्वाण है, उसके लिए अर्थात् मृत्यु के लिए किया जाने वाला कायोत्सर्ग परिनिर्वाण संबंधी कायोत्सर्ग है।

से आज्ञा लेकर अनशन ग्रहण किया। अतः इस आगमिक प्रमाण से धन्य अणगार की दीक्षा फाल्गुन माह के पश्चात् ही होने की संभावना पुष्ट होती है।

तत्त्वं तु केवलीगम्यम्

सुनक्षत्र संयम की ओर :-

धन्य अणगार की दीक्षा के पश्चात् जब भगवान महावीर काकन्दी नगरी में विराज रहे थे, तब भद्रा सार्थवाही जो सांसारिक सुख-उपभोग के साधनों से सुसम्पन्न थी, उनका पुत्र था सुनक्षत्र कुमार। उसका लालन-पालन धन्यकुमार की तरह राजसी ठाठ में हुआ। यौवन की देहली पर उसका विवाह बत्तीस श्रेष्ठि-कन्याओं के साथ सम्पन्न हुआ। वह बत्तीस महलों में मानवीय सुखों का अनुभव कर रहा था कि ज्ञात हुआ कि भगवान महावीर पधारे हैं। वह भी धन्य अणगार की तरह भगवान के चरणों में पहुँचा, धर्मोपदेश सुना, उसे वैराग्य भाव उत्पन्न हुआ और धन्यकुमार की तरह ही उसने माता-पिता से पूछकर संयम ग्रहण किया। सुनक्षत्र कुमार ने भी जिस दिन से संयम ग्रहण किया, उसी दिन से बेले-2 पारणा और पारणे के दिन धन्य अणगार की तरह ही आयम्बिल करने की प्रतिज्ञा धारण की। वे भी धन्य अणगार की तरह भीषण तपश्चर्या में संलग्न हुए। इस प्रकार काकन्दी में इन दो श्रेष्ठि-पुत्रों ने संयम को ग्रहण कर भीषण तपश्चर्या प्रारंभ कर दी^{ix} जिसे श्रवण करते ही मन धन्य-धन्य कह उठता है, वाणी मूक¹ बन जाती है और अनासक्ति की वीणा झंकृत होने लगती है।

टिप्पण : दीक्षा लेने के पश्चात् सुनक्षत्र अणगार काकन्दी नगरी से बाहर निकले और वे बाहरी जनपदों में विचरण करने लगे। उन्होंने स्थविर भगवन्तों से ग्यारह अंगों² का अध्ययन किया और तप संयम से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरण करने लगे। इस प्रकार बहुत वर्षों तक श्रमण-पर्याय¹ का पालन करने के पश्चात् एक समय मध्यरात्रि में धर्म जागरण करते हुए उनके मन में इस प्रकार के अध्यवसाय उत्पन्न हुए

*यद्यपि धन्य अणगार की तरह अन्य अणगार सुनक्षत्र, ऋषिदास पेल्लक, रामपुत्र, चन्द्रिक, पृष्टिमातृक, पेढालपुत्र, पोष्टिल्ल, वेहल्ल ने भी उत्कृष्टतम तपश्चर्या को स्वीकार किया, इनकी तपश्चर्या धन्य अणगार के ही समान थी। इन्होंने भी जीवनपर्यन्त बेले-2 पारणा और वैसा ही आयम्बिल किया जैसा धन्य अणगार ने तथापि भगवान महावीर ने धन्य अणगार को महादुष्करकारक और महानिर्जराकारक बतलाया है। इससे परिलक्षित होता है कि तप की समानता होने पर भी भाव विशुद्धि धन्य अणगार की विशेष रूप से रही होगी। तत्त्वं तु केवलीगम्यम्।

1. मूक-मौन 2. ग्यारह अंगों-आचारांगादि ग्यारह आगम

कि मेरा शरीर इस तप से कृश काय बन गया है, अतएव मुझे अब संलेखना-संधारा ग्रहण कर लेना चाहिए। तब उन्होंने स्कन्दक अणगार की तरह संलेखना संधारा ग्रहण किया और सर्वार्थसिद्ध* विमान में देवरूप में उत्पन्न हुए।

तब गौतम स्वामी ने पूछा- भगवन्! सुनक्षत्र अणगार□ सर्वार्थसिद्ध विमान में से च्यवकर कहाँ उत्पन्न होंगे? भगवान ने फरमाया कि वह वहाँ से महाविदेह क्षेत्र में जाकर सिद्ध बनेगा।

कुण्डकौलिक-प्रखर प्रतिभा धनी :-

सुनक्षत्र की दीक्षा के पश्चात् भगवान महावीर ने काकन्दी से विहार कर दिया और शनैः शनैः प्रभु काम्पिल्य¹⁰पुर नगर पधार गये। भगवान सहस्त्राश्रवन^x नामक उद्यान में भव्यजनों को तिराने हेतु पधार गये।

शकेन्द्र ने भव्यों का विशेष उपकार देखकर देवों को समवसरण□ निर्माण करने की आज्ञा दी। चारों प्रकार के देवों ने समवसरण की रचना कर दी। भगवान का धर्मोपदेश श्रवण करने के लिए जित्रशत्रु राजा गया। परिषद भी धर्म-श्रवण करने हेतु निकली।

इधर काम्पिल्यपुर नगर में उस समय कुण्डकौलिक नामक गाथापति निवास करता था। उसकी पत्नी का नाम था पूषा। कुण्डकौलिक सम्पन्न और सदाचारी गृहस्थ था। उसकी छह करोड़ स्वर्ण मुद्राएँ खजाने में सुरक्षित थीं, छह करोड़ स्वर्ण मुद्राएँ व्यापार में लगी थी तथा छह करोड़ स्वर्ण मुद्राएँ घर के वैभव, धन, धान्य, द्विपद, चतुष्पद आदि

1. श्रमण-पर्याय-दीक्षा-पर्याय

*सर्वार्थसिद्ध-जिनके सब अर्थ सिद्ध हो गये हैं, वे सर्वार्थसिद्ध विमान के देव। (उत्तरा/शाल्या.)

□यद्यपि धन्य और सुनक्षत्र दोनों कुमारों की माता का नाम भद्रा सार्थवाही उपलब्ध है तथापि प्रश्न उठता है कि क्या दोनों एक ही माँ के लड़के थे? अनुत्तरौपपतिक सूत्र श्री मधुकरजी म.सा. की सम्पादकीय (पृ.15) तथा परिशिष्ट पृ. 62 10 पर दोनों कुमारों की एक माता मानी है जबकि धन्य अणगार से संबंधित मूल पाठ में भद्रा सार्थवाही के एक ही पुत्र होने का उल्लेख मिलता है। भगवान महावीर एक अनुशीलन में आ. श्री देवेन्द्रमुनि जी म.सा. ने एक ही पुत्र भद्रा सार्थवाही के था, ऐसा उल्लेख किया है।¹¹ अत एव आगम के मूल पाठ से स्पष्ट है कि धन्य कुमार एवं सुनक्षत्र कुमार की माता अलग-2 थी, लेकिन उनका नाम एक ही था।
□समवसरण-जहाँ अनेक दृष्टियाँ/दर्शन समवसृत होते हैं।

साधन सामग्री में लगी हुई थी। उसके पास छह गोकुल थे। प्रत्येक गोकुल में दस-दस हजार गायें थीं। इस प्रकार साठ हजार गायें उसके यहाँ पलती थीं।

जब कुण्डकौलिक गाथापति को भगवान महावीर के पधारने की जानकारी मिली तो वह भी कामदेव श्रावक की तरह भगवान के समवसरण में पहुँचा। भगवान की हृदयस्पर्शी वाणी¹² का अनुपान¹ करके वह भी अत्यंत आनंदित हुआ। उसने भी उस समय कामदेव श्रावक की तरह श्रावक-योग्य बारह-व्रतों को ग्रहण कर लिया। वह कुण्डकौलिक श्रमणोपासक श्रमण-निर्ग्रन्थों को शुद्ध आहार-पानी देते हुए कामदेव की तरह धर्मारोपण करने लगा।

एक दिन कुण्डकौलिक श्रमणोपासक मध्याह्न² के समय अशोक वाटिका में गया। वहाँ पर एक शिलापट्टक पर उसने अपनी नामांकित मुद्रिका और दुपट्टा उतारा और भगवान महावीर से अंगीकृत धर्मप्रज्ञप्ति के अनुसार उपासना में तल्लीन बन गया।

उपासना करते हुए कुण्डकौलिक के समक्ष एक देव प्रकट हुआ। उस देव ने कुण्डकौलिक को दुपट्टे एवं नामोक्त मुद्रिका को शिलापट्टक से उठाया। वस्त्रों में संलग्न घंटियों की झुनझुन सहित वह गगन-तल में अवस्थित हुआ। वह देव श्रमणोपासक कुण्डकौलिक से बोला-कुण्डकौलिक! श्रमणोपासक!! देवानुप्रिय!!! मंखलिपुत्र गौशालक³ की धर्मप्रज्ञप्ति सुंदर है। गोशालक के अनुसार उत्थान³ कर्म, बल⁴ वीर्य⁵ पुरुषाकार⁶-पराक्रम¹ इन सबका कोई स्थान नहीं है। उसके अनुसार सब होने वाले कार्य नियत हैं। भगवान महावीर की धर्मप्रज्ञप्ति के अनुसार सब होने वाले कार्य नियत नहीं हैं अपितु

1. अनुपान-ग्रहण/श्रवण

2. मध्याह्न-दोपहर

³गोशालक का विस्तृत विवरण भगवती सूत्र के 15वें शतक में उपलब्ध है। बौद्ध साहित्य में अंगुत्तर निकाय, मज्झिम निकाय, संयुक्त निकाय आदि ग्रंथों में एवं दीर्घ निकाय पर बुद्धघोष द्वारा रचित सुमंगल विलासिनी टीका के सामंजस्य सुत्रवर्णन में गोशालक के सिद्धांतों की विस्तृत विवेचना उपलब्ध है। वह उस समय अवैदिक परम्परा के छह प्रमुख आचार्यों में से एक था।

प्रस्तुत घटना उस समय की है, जब गोशालक भगवान महावीर से पृथक् होकर अपने आपको जिन कहता हुआ विचरण कर रहा था।

3. उत्थान-साध्य के अनुरूप ऊर्ध्वगामी प्रयत्न

4. बल-दैहिक शक्ति 3. वीर्य-आन्तरिक शक्ति

5. पुरुषाकार-पौरुष का अभिमान

6. पराक्रम-पौरुष के अभिमान के अनुरूप उत्साह एवं ओज-पूर्ण उपक्रम

उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पौरुष, पराक्रम इन सबका अपना अस्तित्व है। भगवान की यह धर्मप्रज्ञप्ति सुंदर नहीं हैं।

तब कुण्डकौलिक ने कहा- देव! आपने गोशालक के नियतिवाद को सुंदर बतलाया और भगवान महावीर के कर्मवाद को असुंदर बतलाया तो देव! तुम्हें जो ऐसा दिव्य ऋद्धि, द्युति², प्रभाव प्राप्त हुआ है, वह क्या उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पौरुष और पराक्रम से मिला है अथवा अनुत्थान, अकर्म, अबल, अवीर्य, अपौरुष या अपराक्रम से है।

देव बोला- हे देवानुप्रिय! मुझे यह दिव्य ऋद्धि, द्युति एवं प्रभाव आदि सब बिना उत्थान, पौरुष एवं पराक्रम से ही उपलब्ध हुआ है।

तब कुण्डकौलिक ने देव से कहा- देव! यदि तुम्हें यह दिव्य ऋद्धि आदि सभी बिना पुरुषार्थ के मिली है तो जिन जीवों में उत्थान आदि नहीं हैं, वे देव क्यों नहीं हुए? इससे स्पष्ट सिद्ध है कि बिना उत्थान आदि के तुम्हें देव ऋद्धि नहीं मिली, इसलिए तुम जो यह कह रहे हो कि गोशालक का नियतिवाद सुंदर है एवं भगवान महावीर का कर्मवाद असुंदर है, यह तुम्हारा कथन असत्य है।

श्रमणोपासक कुण्डकौलिक द्वारा ऐसा कहे जाने पर वह देव शंका, कांक्षा³ ग्लानियुक्त होकर हतप्रभ⁴ हो गया। वह कुण्डकौलिक को कुछ भी उत्तर देने में समर्थ नहीं हुआ। तब उसने कुण्डकौलिक की नामांकित मुद्रिका एवं दुपट्टे को पृथ्वी-शिलापट्टक पर रख दिया एवं वह जिस दिशा से आया उसी दिशा में लौट गया।^{xiii}

उस काल, उस समय भगवान महावीर का पदार्पण काम्पिल्यपुर नगर में हुआ।

श्रमणोपासक कुण्डकौलिक को जब यह ज्ञात हुआ कि भगवान महावीर पधारे हैं तो अतीव आनंदित हुआ और कामदेव के समान ही भगवान की पर्युपासना¹ करने, धर्मदेशना श्रवण करने गया। भगवान ने धर्मदेशना दी। कुण्डकौलिक प्रभु की वाणी श्रवण करके गदगद हो गया।

तत्पश्चात् वह भगवान महावीर के पास गया। तब भगवान महावीर ने फरमाया- कुण्डकौलिक! कल मध्याह्न के समय अशोक-वाटिका में जब तुम उपासना कर रहे थे,

1. द्युति-कान्ति
2. कांक्षा-अन्य धर्म की आकांक्षा
3. हतप्रभ-हतोत्साहित
4. पर्युपासना-सम्पूर्ण रूप से धर्मारोपण में निवास करना।

तब तुम्हारे समीप एक देव प्रकट हुआ था। वह तुम्हारी नामांकित मुद्रिका और दुपट्टा लेकर आकाश में स्थित हुआ, और उसने गोशालक के नियतिवाद को सत्य और मेरे सिद्धांत को असत्य ठहराया, तुमने उसका समाधान कर दिया तो वह लौट गया।

हे कुण्डकौलिक! क्या ऐसा तुम्हारे साथ हुआ है?

कुण्डकौलिक- हाँ भगवन्! ऐसा ही मेरे साथ हुआ है। आप सत्य फरमा रहे हैं।

भगवान ने कामदेव की तरह कुण्डकौलिक को कहा- तुम धन्य हो।

तब श्रमण भगवान ने वहाँ उपस्थित श्रमण-श्रमणियों को संबोधित करके कहा- हे आर्यों! घर में रहने वाला गृहस्थ भी जब अन्य मतानुयायियों को युक्तिसंगत, तर्कसंगत उत्तर द्वारा निरूत्तर कर देते हैं, तो हे आर्यों! द्वादशांगी रूप गणिपिटक का अध्ययन करने वाले श्रमण निर्ग्रन्थ तो अन्य मतानुयायियों को निरूत्तर करने में समर्थ ही हैं।

भगवान महावीर का यह कथन श्रवण करके उन साधु-साध्वियों ने कहा-भगवन्! ऐसा ही है! यो कहकर विनय से प्रभु के कथन को स्वीकार किया।

श्रमणोपासक कुण्डकौलिक ने श्रवण भगवान महावीर से प्रश्न पूछे और समाधान प्राप्त किया। तत्पश्चात् वह अपने घर की ओर लौट गया।

भगवान महावीर अन्य जनपदों में विहार कर गये।

टिप्पण : तदनन्तर श्रमणोपासक कुण्डकौलिक ने चौदह वर्ष पर्यन्त व्रतों का पालन किया। पन्द्रहवाँ वर्ष आधा व्यतीत हो चुका था। तब एक दिन अर्धरात्रि के समय कामदेव की तरह उसके मन में चिन्तन आया और उसने अपने ज्येष्ठ पुत्र को अपने स्थान पर नियुक्त किया और कामदेव की तरह पौषधशाला में उपासना में लीन रहने लगा। उसने ग्यारह श्रावक प्रतिमाओं की आराधना की। उसके पश्चात् कामदेव की तरह ही संलेखना-संधारा आदि करके देह त्याग कर सुधर्म¹ देवलोक के अरूणध्वज विमान में देव रूप में उत्पन्न हुआ। वह वहाँ से च्यवकर महाविदेह क्षेत्र में सिद्ध, बुद्ध मुक्त होगा और दुःखों का अंत करेगा।^{xiv}

सकडालपुत्र हुए निहाल :

इस प्रकार काम्पिल्यपुर में अनेक भव्यों को धर्म मार्ग, त्याग मार्ग पर समारूढ़

1. सुधर्म-प्रथम देवलोक

करके भगवान पोलासपुर नगर¹पधारे और वहाँ के सहस्राभ्रवन नामक उद्यान में विराजने लगे।

उस समय पोलासपुर नगर में सकडालपुत्र नामक कुम्हार रहता था, जो गोशालक का मतानुयायी था। उसका नियतिवाद में दृढ़ विश्वास था। वह नियतिवाद² को ही सर्वश्रेष्ठ मानता था। उसके अस्थि-अस्थि, मज्जा-मज्जा में आजीविका मत के प्रति अनुराग था।

उस सकडालपुत्र की एक करोड़ स्वर्ण मुद्राएँ खजाने में थी। एक करोड़ स्वर्ण मुद्राएँ व्यापार में लगी थीं तथा एक करोड़ स्वर्ण मुद्राएँ धन के वैभव आदि में लगी थीं। उसका एक गोकुल था, उसमें दस हजार गायें थीं। उसकी अग्निमित्रा नामक पत्नी थी, जो उसकी अनुगामिनी¹ बनी रहती थी।

उस सकडालपुत्र कुम्हार की पोलासपुर नगर के बाहर पाँच सौ आपण-बर्तन की कर्मशालाएँ थी, जहाँ पर अनेक वैतनिक² पुरुष प्रतिदिन प्रभात होते ही पहुँच जाते थे। वे मजदूर आदि वहाँ पर करवे, घड़े, छोटे घड़े, आटा गूंदने की तथा दही जमाने की परातें, कलशे, मटके, सुराहियाँ, तेल-घी रखने के लिए लम्बी गर्दन तथा बड़े पेट वाले कूपे बनाते थे तथा बने हुए बर्तनों को सड़कों पर बेचते थे।

इस प्रकार कुम्भकार सकडालपुत्र का व्यापार समीचीन¹ रीति से चल रहा था, एक दिन आजीविकोपासक सकडालपुत्र मध्याह्न के समय अशोक वाटिका में गया और मंखलिपुत्र गोशालक के पास स्वीकार की गयी धर्म-शिक्षा के अनुसार उपासना में लीन बन गया। वहाँ पर सकडालपुत्र के समक्ष एक देव प्रकट हुआ। वह देव छोटी-छोटी घंटियों से अलंकृत पाँच वर्ण के उत्तम वस्त्र धारण किए हुए आकाश में स्थित होकर सकडालपुत्र से कहने लगा- देवानुप्रिय! कल प्रातः यहाँ महामाहन*। अप्रतिहत ज्ञान-दर्शन के धारक, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी भगवान पधारेंगे तो तुम उनकी पर्युपासना करना तथा प्रातिहारिक¹ पीठ² फलक³ शय्या⁴ संस्तारक⁵ हेतु उन्हें आमंत्रित करना। इस प्रकार वह देव दूसरी और तीसरी बार भी यही कहकर जिस दिशा से आया था, उसी दिशा में लौट

²नियतिवाद :आजीविका मत यह गोशालक का सिद्धांत था। इसमें जो होना होगा वही होगा, इस प्रकार की नियति को स्वीकार किया गया है। ये नियतिवादी पुरुषार्थ को नहीं मानते।

1. अनुगामिनी-अनुसरण करने वाली
2. वैतनिक-वेतन से काम करने वाल
3. समीचीन-श्रेष्ठ

गया।

देव वाणी को श्रवण करके सकडालपुत्र ने मन में ऐसा चिन्तन किया कि मेरे धर्माचार्य, धर्मोपदेशक भगवान मंखलिपुत्र पधारेंगे क्योंकि वे ही महामाहन^{xv} सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हैं। मैं कल उन्हें वन्दन-नमस्कार करूँगा, उनकी पर्युपासना करूँगा और प्रातिहारिक, पीठ, फलक आदि के लिए आमंत्रित करूँगा।

इन्हीं अध्यवसायों में निमग्न⁶ रात्रि कब व्यतीत हुई। वह जान ही नहीं पाया। तप्पश्चात् प्रातःकाल होने पर भगवान महावीर पधारे। परिषद् धर्मदेशना श्रवण करने हेतु गयी।

आजीविकोपासक सकडालपुल ने यह श्रवण किया कि भगवान महावीर पधारे हैं, तो उनके मन में भी भगवान महावीर के प्रति इस प्रकार के अध्यवसाय पैदा हुए कि मुझे भगवान महावीर को वंदन, नमन और पर्युपासना करने एवं उनकी अमृतवाणी श्रवण करने हेतु जाना चाहिए। इसी संकल्पानुसार वह वस्त्रालंकार धारण करके अनेक पुरुषों को साथ लेकर अपने घर से निकला और जहाँ भगवान महावीर थे, वहाँ आया। वहाँ आकर उसने भगवान को वंदन-नमस्कार किया और प्रभु की पर्युपासना करने लगा।

श्रमण भगवान महावीर ने आजीविकोपासक सकडालपुत्र को एवं विशाल परिषद्[□] को धर्मोपदेश दिया। धर्मोपदेश की परिसमाप्ति पर भगवान महावीर ने आजीविकोपासक सकडालपुत्र से कहा- सकडालपुत्र! कल अशोक वाटिका में तुम्हारे समक्ष एक देव उपस्थित हुआ था और उसने तुम्हें सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, केवली भगवान के आने की बात कही थी, साथ ही उनकी पर्युपासना कर प्रातिहारिक, पीठ, फलक के लिए निमंत्रण देने की बात कही थी? क्या यह सत्य है?

सकडालपुत्र- हाँ! यह बात सत्य है।

भगवान- सकडालपुत्र! उस देव ने गोशालक मंखलिपुत्र के लिए तुम्हें नहीं कहा था।

1. प्रातिहारिक-पुनः लौटाने योग्य
2. पीठ-पाटा
3. फलक-पट्ट
4. शय्या-ठहरने का स्थान
5. संस्तारक-बिछाने के लिए घासादि
6. निमग्न-डूबे हुए

□परिषद्-जहाँ चारों ओर लोग बैठे रहते हैं।

तब भगवान महावीर द्वारा ऐसा कहे जाने पर सकडालपुत्र के मन में इस प्रकार के अध्यवयाय पैदा हुए कि श्रमण भगवान महावीर ही महामाहन*, सर्वज्ञ हैं, इसलिए इन्हीं को वन्दन-नमस्कार करके मैं पीठ, फलक, आदि के लिए भगवान को आमंत्रित करूँ। ऐसा विचार करके उसने भगवान को वन्दन-नमस्कार किया और निवेदन किया- भगवान! पोलासपुर नगर के बाहर मेरी पाँच सौ कुम्भकार-शालाएँ हैं, आप प्रातिहारिक पीठ, फलकादि ग्रहण करके वहाँ विराजे।

सकडालपुत्र के द्वारा निवेदन किये जाने पर भगवान उन कुम्भकार-शालाओं में पधारे और प्रातिहारिक, पीठ, फलक आदि ग्रहण कर तप संयम से आत्मा को भावित करने लगे।

एक दिन सकडालपुत्र हवा लगे मिट्टी के बर्तनों को धूप में सूखाने के लिए कर्मशाला से बाहर लाया। तब भगवान सकडालपुत्र से बोले- सकडालपुत्र! ये मिट्टी के बर्तन कैसे बने हैं?

सकडालपुत्र-भगवन्! पहले मिट्टी को पानी के साथ गूथा जाता है फिर राख और गोबर के साथ मिलाया जाता है। उसके बाद उसे चाक पर चढ़ाते हैं तो बहुत से करवे आदि सभी प्रकार के बर्तन तैयार हो जाते हैं।

भगवान- सकडालपुत्र! ये मिट्टी के बर्तन क्या प्रयत्न, पुरुषार्थ एवं उद्यम द्वारा बनते हैं या बिना प्रयत्न, पुरुषार्थ एवं उद्यम से बनते हैं?

सकडालपुत्र- भगवन्! ये बर्तन बिना प्रयत्न, पुरुषार्थ और उद्यम से बनते हैं क्योंकि प्रयत्न, पुरुषार्थ और उद्यम का कोई अस्तित्व नहीं है, सभी भाव नियत है।

भगवान- सकडालपुत्र! कोई पुरुष यदि तुम्हारे बर्तनों को चुरा ले, बिखेर दे, उनमें छेद कर दे, फोड दे, बाहर डाल दे अथवा तुम्हारी पत्नी अग्निमित्रा के साथ विपुल भोग भोगे तो तुम उसे क्या दण्ड दोगे?

सकडालपुत्र- भगवन्! मैं उसको पीटूँगा, बाधूँगा, रौदूँगा, धमकाऊँगा, उसका धन छीनूँगा, कठोर वचनों से उसकी भर्त्सना करूँगा या असमय में ही उसके प्राण ले लूँगा।

भगवान- सकडालपुत्र! तुम्हारे मतानुसार कोई व्यक्ति न तुम्हारे बर्तन चुरा सकता

*महामाहन : टीकाकार अभय-देव सूरि ने महामाहन शब्द की व्याख्या इस प्रकार की है जो व्यक्ति मन, वचन और काया द्वारा सूक्ष्म तथा स्थूल समस्त जीवों की हिंसा से निवृत्त हो जाता है, तथा किसी की हिंसा मत करो, ऐसा उपदेश देता है, वह माहन है। ऐसा पुरुष ही महान् होता है इसलिए वह महामाहन अर्थात् महान् अहिंसक है।

है, न तोड़ सकता है, न तुम्हारी स्त्री के साथ कोई अनुचित व्यवहार कर सकता है। यदि कोई व्यक्ति तुम्हारे बर्तन चुराता है, तोड़ता है और तुम्हारी पत्नी के साथ अनुचित व्यवहार कर सकता है और तुम उसे दंड देते हो तो फिर 'पुरुषार्थ नहीं है, पराक्रम नहीं है, सर्वभाव नियत है' यह कथन असत्य सिद्ध होगा।

भगवान के इस कथन को श्रवण करके सकडालपुत्र को बोध प्राप्त हुआ और उसने भगवान से निवेदन किया- भगवन्! मैं आपसे धर्म श्रवण करना चाहता हूँ, तब भगवान महावीर ने सकडालपुत्र को एवं उपस्थित परिषद को धर्मोपदेश दिया।

भगवान की मधुर देशना श्रवण करके सकडालपुत्र ने आनंद श्रमणोपासक की तरह श्रावक के बारह व्रत ग्रहण कर लिए तथा उसके पास जितनी संपत्ति थी उससे अतिरिक्त ग्रहण करने का त्याग कर लिया।

व्रत ग्रहण करने के पश्चात् सकडालपुत्र अपने घर गया। उसने अपनी पत्नी से कहा- तुम भगवान महावीर के पास जाकर उनकी वंदना, पर्युपासना करो एवं श्राविका योग्य बारह व्रतों को ग्रहण करो।

तब अग्निमित्रा बोली- आप ठीक कह रहे हैं। इस प्रकार उसने विनयपूर्वक अपने स्वामी के वचनों को स्वीकार किया। अग्निमित्रा के लिए सकडालपुत्र ने उत्तम रथ को तैयार करवाया तब वह आरूढ़¹ होकर भगवान के समीप पहुँची और प्रभु की पर्युपासना करने लगी।

तब भगवान महावीर ने अग्निमित्रा को एवं उपस्थित परिषद को धर्मोपदेश दिया।

भगवान की वाणी श्रवण कर हर्षित, आनंदित होकर अग्निमित्रा ने श्राविका योग्य बारह व्रतों को ग्रहण कर लिया। व्रतों को ग्रहण करके अग्निमित्रा अपने घर लौट गयी।

इस प्रकार पोलासपुर में अनेक भव्यों को सम्यक् मार्ग पर समारूढ़ करके भगवान महावीर ने वहाँ से प्रस्थान² कर दिया और प्रभु अन्य जनपदों में विचरण करने लगे। सकडालपुत्र ने प्रभु से व्रत ग्रहण करके जीवादि नवतत्त्वों को ज्ञात कर लिया था। अतः वह जीवादि तत्त्वों का ज्ञाता बनकर धार्मिक जीवन जीने लगा।

निष्कम्प श्रद्धा :

इधर मंखलिपुत्र गोशालक को यह श्रुतिगोचर¹ हुआ कि सकडालपुत्र ने आजीविक

1. आरूढ़-बैठकर

2. प्रस्थान-विहार

सिद्धांत का परित्याग कर भगवान महावीर की धर्मप्रज्ञासि को स्वीकार कर लिया, तब उसने चिंतन किया कि मैं सकडालपुत्र के पास जाऊँ और पुनः उसे आजीविका मत में उपस्थापित करूँ। ऐसा विचार करके वह गोशालक आजीविक संघ के साथ विहार करता हुआ पोलासपुर नगर आया। वहाँ आजीविक सभा में पहुँचा, पहुँचकर उसने पात्र, उपकरणादि वहाँ पर रखे और कतिपय आजीविकों को लेकर जहाँ सकडालपुत्र था, वहाँ चला गया।

श्रमणोपासक सकडालपुत्र ने गोशालक को आते हुए देखा देखकर भी उसे आदर-सत्कार नहीं दिया अपितु उपेक्षा भाव से वह चुपचाप बैठा रहा।

तब सकडालपुत्र के इस उपेक्षा भाव को दृष्टिगत कर गोशालक उसके पीठ, फलकादि प्रातिहारिक वस्तुएँ प्राप्त करने हेतु श्रमण भगवान महावीर के गुणकीर्तन करता हुआ बोला- देवानुप्रिय! क्या यहाँ महामाहन आये थे?

सकडालपुत्र- देवानुप्रिय! कौन महामाहन?

गोशालक- भगवान महावीर।

सकडालपुत्र- आप भगवान महावीर को महामाहन क्यों कहते हो?

गोशालक- भगवान महावीर अप्रतिहत² ज्ञान-दर्शन के धारक हैं। तीनों लोकों द्वारा सेवित एवं पूजित हैं, सत्कर्म संपत्ति से युक्त हैं, इसलिए मैं उन्हें महामाहन कहता हूँ।

गोशालक पुनः बोला- क्या यहाँ महागोप आये?

सकडालपुत्र- देवानुप्रिय! कौन महागोप?

गोशालक- श्रमण भगवान महावीर।

सकडालपुत्र- आप उन्हें महागोप क्यों कहते हैं?

गोशालक- भगवान महावीर इस संसार रूप अटवी³ में भटकते हुए प्रतिक्षण मरण प्राप्त करते हुए, सिंह आदि के द्वारा खाये जाते हुए, तलवार आदि द्वारा काटे जाते हुए, भाले आदि द्वारा बीध जाते हुए, विकलांग किए जाते हुए जीवों का धर्मरूपी दण्डे से रक्षण करते हुए, उन्हें बचाते हुए मोक्ष रूपी विशाल बाड़े में सहारा देकर पहुँचाते हैं।

1. श्रुतिगोचर-कर्णगोचर/सुनना

2. अप्रतिहत-कभी नष्ट नहीं होने वाला

3. अटवी-भयंकर जंगल

इसलिए हे सकडाल पुत्र! मैं भगवान महावीर को महागोप^५ क्या कहता हूँ।

गोशालक- देवानुप्रिय! यहाँ महासार्थक आये थे?

सकडालपुत्र- देवानुप्रिय! आप महासार्थवाह किसे कहते है?

गोशालक- श्रमण भगवान महावीर को।

सकडालपुत्र- आप इन्हें महासार्थवाह क्यों कहते है?

गोशालक- देवानुप्रिय! इस संसार रूपी भयानक वन में बहुत से जीव सन्मार्ग से च्युत हो रहे हैं, मरण को प्राप्त कर रहे हैं यावत् बहुत से जीव विकलांग बन रहे हैं तो भगवान महावीर धर्ममय मार्ग द्वारा उनकी सुरक्षा करके उन्हें मोक्ष रूपी महानगर में पहुँचा रहे हैं। इस काण हे सकडालपुत्र! मैं भगवान महावीर को महासार्थवाह^{*} कहता हूँ।

यहाँ गोशालक द्वारा भगवान को महासार्थवाह कहे जाने का उद्देश्य यह है कि जैसे महासार्थवाह अनेक छोटे-छोटे व्यापारियों को साथ में लेकर जाता है और उनको बहुत

□महागोप-महागोप विशेषण द्वारा उस समय के समाज की गोपालन प्रधान वृत्ति का संकेत किया है। गोप का अपने आप में अत्यंत महत्त्व है। वास्तव में गायों की सुरक्षा का दायित्व वहन करने वाला गोप गायों को घास आदि चराने के लोभ में इधर-उधर भटकने नहीं देता, खोने नहीं देता, उन्हें चराकर सायंकाल बाड़े में पहुँचा देता है, उसी प्रकार भगवान प्राणियों को संसार में भटकने से बचाकर उन्हें मोक्ष रूपी बाड़े में पहुँचा देते है। इसलिए वे महागोप है। ऐसा इस विशेषण से सूचित किया गया है।

*सार्थवाह उस समय में व्यापारियों के लिए प्रचलित शब्द है। सार्थवाह की प्रमुख विशेषता यह होती थी कि जब वह सुदूर क्षेत्र की व्यापारिक यात्रा करना चाहता तो सारे नगर में घोषणा करवाता कि जो भी व्यापारी, व्यापार के लिए इस यात्रा में चलना चाहें। वे अपना सामान लेकर गाड़े-गाड़ियों में या जहाज में आये तो उन सबकी व्यवस्थाएँ सार्थवाह की ओर से होगी। यदि पैसे की कमी पड़ जायेगी तो भी सार्थवाह उसे पूरी करेगा। इस प्रकार की घोषणा से छोटे व्यापारियों को बहुत ही सुविधा हो जाती थी क्योंकि वे अकेले यात्रा नहीं कर सकते थे। लम्बी यात्राओं में लूट-खसोट का भय बना रहता था, लेकिन सार्थवाह के साथ आरक्षकों का शस्त्र सज्जित दल रहता था, अतः सबकी सुरक्षा हो जाती थी। इस प्रकार बहुतों का सहारा बनकर सार्थवाह सामाजिक प्रतिष्ठा के शिखर पर पहुँच जाते थे। ज्ञाताधर्म कथांग के 15वें अध्ययन में धन्य सार्थवाह की इस प्रकार की घोषणा का उल्लेख है। ये सार्थवाह जल अथवा स्थल मार्ग से लम्बी-लम्बी यात्राएँ करते थे। यदि स्थल मार्ग से यात्रा करते तो अनेक गाड़े-गाड़ियाँ माल भरकर ले जाते थे और जहाँ लाभ मिलता वहाँ बेच देते थे तथा वहाँ का सस्ता माल भरकर पुनः ले आते थे। यदि जल मार्ग से जाते तो जहाजों से ऐसा व्यापार करते थे।

यात्राएँ बहुत लम्बी-2 होने से खान-पान, औषधियाँ आदि सारी चीजें अपने साथ में रखते थे।

विशाल व्यापारिक मंडी में पहुँचा देता है, वैसे ही भगवान महावीर संसार में परिभ्रमण करते हुए प्राणियों को सहारा देकर मोक्ष तक पहुँचा देते हैं।

गोशालक अभी प्रभु की गरिमा का व्याख्यान करने हेतु आतुर¹ था। अतएव उसने पुनः सकडालपुत्र से कहा- देवानुप्रिय! क्या महाधर्मकथी यहाँ आये थे?

सकडालपुत्र- कौन महाधर्मकथी^{xvi} ?

गोशालक- श्रमण भगवान महावीर महाधर्मकथी हैं।

सकडालपुत्र- आप भगवान को महाधर्मकथी क्यों कहते हो?

गोशालक- इस विशाल संसार में बहुत से प्राणी सन्मार्ग से च्युत हो रहे हैं यावत् मिथ्यात्व से ग्रस्त² हो रहे हैं, आठ कर्मों के अंधकर से घिरे हुए हैं, भगवान महावीर उन्हें सत्य तथ्य समझाकर संसार रूपी भयानक वन से निकाल देते हैं। इसलिए देवानुप्रिय! मैं उन्हें महाधर्मकथी कहता हूँ।

गोशालक पुनः बोला- सकडालपुत्र! क्या यहाँ महानिर्यामक^{xvii} आये थे?

सकडालपुत्र- आप महानिर्यामक[□] किसे कहते हैं?

गोशालक- मैं भगवान महावीर को महानिर्यामक कहता हूँ।

सकडालपुत्र- आप किस कारण भगवान महावीर को महानिर्यामक कहते हैं?

गोशालक- इस संसार रूपी महासमुद्र में बहुत से जीव सन्मार्ग से च्युत³ होकर यावत् बहते जा रहे हैं। भगवान महावीर उन्हें धर्म रूपी नौका का सहारा देकर मोक्ष रूपी किनारे पर ले जा रहे हैं। इसलिए मैं उन्हें महानिर्यामक कहता हूँ।

तब गोशालक से यह सब श्रवण करने के पश्चात् सकडालपुत्र ने गोशालक से कहा- देवानुप्रिय! आप इतने चतुर, विचक्षण, निपुण, नयवाद के उपदेशक और ऐसे विज्ञान के ज्ञाता हो तो क्या आप मेरे धर्माचार्य, धर्मोपदेशक भगवान महावीर के साथ तत्त्वचर्चा करने में समर्थ हैं?

गोशालक- नहीं, मैं भगवान महावीर के साथ तत्त्वचर्चा करने में समर्थ नहीं हूँ।

सकडालपुत्र- क्यों?

गोशालक- जैसे कोई बलवान, निरोग, शक्तिसम्पन्न, सुदृढ़ शरीर वाला, अत्यंत सामर्थ्य शाली युवा एक बड़े बकरे, मेढ़े, सुअर, मुर्गे, तीतर, बटेर, लवा, कबूतर, पपीहे,

1. आतुर-तत्पर, लीन

2. ग्रस्त-युक्त

3. च्युत-भटककर

कौए या बाज के पंजे, पैर, खुर, पूंछ, पंख, सींग, रोम को जहाँ से भी पकड़ लेता है, वहीं उसे गतिशून्य, हलन-चलन रहित कर देता है, इसी प्रकार श्रमण भगवान महावीर मुझे अनेक प्रकार तात्त्विक अर्थों आदि में जहाँ से भी पकड़ लेंगे वहीं मुझे निरुत्त कर देंगे। इस कारण हे सकडालपुत्र! मैं तुम्हारे धर्माचार्य के साथ तत्त्वचर्चा करने में समर्थ नहीं हूँ।

तब श्रमणोपासक सकडालपुत्र ने गोशालक कहा- देवानुप्रिय! आप मेरे धर्माचार्य श्रमण भगवान महावीर के सत्य एवं यथार्थ गुणों का कीर्तन कर रहे हो, इसलिए मैं आपको प्रातिहारिक, पीठ, फलक आदि हेतु आमंत्रित करता हूँ। आप मेरी कर्मशाला में प्रातिहारिक, पीठ, फलकादि ग्रहण करके निवास करें।

मंखलिपुत्र गोशालक ने सकडालपुत्र श्रमणोपासक के आमंत्रण को स्वीकार किया और प्रातिहारिक, पीठ, फलकादि ग्रहण करके सकडालपुत्र की कर्मशाला में निवास करने लगा।

तब गोशालक ने विविध प्रकार से तत्त्व-निरूपण आदि करके सकडालपुत्र को जिन धर्म से विचलित करने का भागीरथी प्रयास किया, लेकिन वह तनिक मात्र भी सकडालपुत्र को विचलित नहीं कर पाया। वह उसके मनोभावों को जरा-सा भी बदल नहीं पाया। वह श्रान्त¹ क्लान्त² और खिन्न होकर पोलासपुर नगर से अन्य जनपदों में विहार कर गया।^{xviii}

टिप्पण :

श्रमणोपासक सकडालपुत्र निरन्तर धर्म आराधना में तल्लीन बना हुआ था। ब्रतों की परिपूर्ण उपासना करते हुए चौदह वर्ष व्यतीत हो गये। जब पन्द्रहवाँ वर्ष चल रहा था, तो वह एक बार अर्ध रात्रि के समय पौषधशाला में उपासना कर रहा था।

उस समय मध्यरात्रि में एक देव उसके समक्ष प्रकट हुआ और उस देव ने नीली चमचमाती तलवार निकाली। जैसा उपसर्ग³ देव ने चुलनी-पिता को दिया वैसा ही सकडालपुत्र को दिया। सकडालपुत्र के बड़े, मंझले और छोटे बेटे की हत्या की। उनका रक्त, मांस उस पर छिड़का, बस अन्तर इतना-सा है कि यहाँ देव ने एक-एक पुत्र के नौ-नौ मांस-खण्ड किये।

1. श्रान्त-शान्त

2. क्लान्त-थका हुआ/मुझाया हुआ

3. उपसर्ग-जो पीड़ित करते हैं।

ऐसा जघन्य¹ कृत्य² किये जाने पर भी सकडालपुत्र निर्भीक बना हुआ धर्म ध्यान में लीन रहा।

तब देव ने सकडालपुत्र से कहा- कि तुम यदि व्रत को नहीं तोड़ोगे तो मैं तुम्हारी धर्मानुरागता, धर्मसहायिका, सुख-दुख की सहभागिनी पत्नी की हत्या करूँगा। उसके शरीर के नौ मांस-खण्ड करूँगा। उबलते पानी से भरी कड़ाही में खौलाऊँगा और उसके शरीर के मांस-रक्त से तुम्हारे शरीर को सीचूँगा, जिससे तुम दुःख से पीड़ित होकर असमय में ही प्राणों से हाथ धो बैठोगे।

देव द्वारा ऐसे कहे जाने पर भी सकडालपुत्र निर्भीक बना रहा। तब देव ने दूसरी और तीसरी बार भी वैसा ही कहा। तब सकडालपुत्र के मन में चुलनी पिता की तरह ही विचार उत्पन्न हुआ और वह देव को पकड़ने हेतु दौड़ा तब देव अन्तर्ध्यान हो गया। सकडालपुत्र की पत्नी कोलाहल सुनकर आई इत्यादि समग्र वर्णन चुलनी-पिता की तरह कहना चाहिए। बस अन्तर इतना है कि सकडालपुत्र अरूणभूत विमान में उत्पन्न हुआ। वहाँ उसकी आयु चार पल्योपम की बतलाई है। वहाँ से वह महाविदेह क्षेत्र में जाकर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त बनेगा।

उपासकदशांग सूत्र में पोलासपुर के राजा का नाम जितशत्रु और उद्यान का नाम सहस्राभवन मिलता है,^{xix} जबकि अन्तकृतदशांग में राजा का नाम विजय और उद्यान¹ का नाम श्रीवन मिलता है।^{xx} संभव है या तो राजा के दो नाम रहे हो या जितशत्रु उनका विशेषण रहा हो। उद्यान के नाम में भी यही बात समझ सकते हैं। (तत्त्वं तु केवल्लिगम्यम्)

इस प्रकार उस समय पोलासपुर के महाराजा विजय की श्रीदेवी नामक महारानी थी। महाराजा और महारानी का जीवन धर्म के संस्कारों से ओतप्रोत³ था। समय आने पर श्रीदेवी ने एक राजकुमार को जन्म दिया, जिसका नाम अतिमुक्तक कुमार रखा गया। वह अतीव सुकुमार था। उसका पंचधायों द्वारा लालन-पालन होने लगा और वह क्रमशः वृद्धिगत होने लगा।

नाव तिरे मेरी नाव तिरे :

उस समय श्रमण भगवान महावीर ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए पोलासपुर नगर

1. जघन्य-निकृष्ट/अधम

2. कृत्य-कार्य

3. उद्यान-एक प्रकार के वृक्षों से युक्त।

में पधारें और श्रीवन उद्यान में विराजे।

उस समय भगवान महावीर के प्रधान शिष्य इन्द्रभूति गौतम निरन्तर बेले-2 की तपश्चर्या तथा तप-संयम से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विशुद्धि का विशेष प्रसंग उपस्थित कर रहे थे।

गौतम स्वामी के बेले के पारणे का अवसर आया तो उन्होंने प्रथम प्रहर में स्वाध्याय किया, दूसरे प्रहर में ध्यान किया, तृतीय प्रहर में शारिरिक शीघ्रता एवं मानसिक चपलता से रहित होकर अनोकुल और अनौत्सुक्य भाव से मुख-वस्त्रिका का प्रतिलेखन किया। तदनन्तर वस्त्र-पात्रों का प्रतिलेखन किया। प्रतिलेखन के पश्चात् पात्रों का प्रमार्जन किया और जहाँ श्रमण भगवान महावीर विराजमान थे। वहाँ पर आये। वहाँ आकर भगवान को वन्दन, नमस्कार करके इन्द्रभूति गौतम ने प्रभु से इस प्रकार निवेदन किया-

भगवन्! आज मेरे बेले का पारणा है, आपकी अनुज्ञा पर मैं पोलासपुर नगर के उच्च, नीच, मध्यम कुलों में भिक्षा विधि से भिक्षा ग्रहण करने जाना चाहता हूँ।^{xxi}

श्रमण भगवान महावीर ने कहा- देवानुप्रिय! तुम्हें जैसा सुख हो वैसा करो।

भगवान की आज्ञा संप्राप्त होने पर गौतम स्वामी श्रीवन उद्यान से निकले और वे शारिरिक शीघ्रता, मानसिक चपलता रहित, आकुलता एवं उत्सुकता से रहित होकर युग प्रमाण-भूमि को देखते हुए, ईर्यासमिति पूर्वक पोलासपुर नगर में पधारें। वहाँ उच्च, नीच और मध्यम कुलों में भिक्षा विधि अनुसार भ्रमण करने लगे।

उस समय अतिमुक्तक कुमार शरीर की विभूषा से सम्पन्न होकर बहुत से लड़के-लड़कियों¹ बालक-बालिकाओं² और कुमार-कुमारियों³ के साथ अपने घर से निकलकर इन्द्र स्थान* नामक खेल के स्थान पर आया हुआ था। वहाँ आकर उन सभी के साथ वह खेल खेलने में लगा हुआ था।

गणधर गौतम भी भिक्षा के लिए भ्रमण करते हुए उस इन्द्रस्थान नामक क्रीड़ा स्थल के पास पहुँचे। तभी सहसा अतिमुक्तक कुमार की दृष्टि गणधर गौतम पर पड़ी।

1. ओतप्रोत-युक्त/अभिभूत

2. लड़के-लड़कियों-सामान्य बालक-बालिकाएँ-अच्छी आयु वाली

3. बालक-बालिकाओं-अच्छी आयु वाले

*इन्द्र स्थान-वह क्रीड़ा-स्थान जहाँ पर इन्द्र-स्तम्भ नामक एक बड़ा खम्भा गाड़कर बालक-बालिकाएँ खेलते थे।

उन्हें देखकर कुमार स्तब्ध रह गया कि ये कौन है? मैंने इन्हें आज प्रथम बार देखा है। मैं इनके पास जाता हूँ और पूछता हूँ। इस प्रकार विचार करके खेल छोड़कर अतिमुक्तककुमार गौतम स्वामी के पास गया और पूछा- भंते! आप कौन हैं? आप क्यों घूम रहे हैं? गौतम स्वामी- देवानुप्रिय! मैं श्रमण निर्ग्रन्थ*** हूँ। मैं भिक्षा के लिए भ्रमण कर रहा हूँ।

अतिमुक्तक कुमार- भिक्षा के लिए!! आओ-आओ, मैं आपको भिक्षा दिलाता हूँ। ऐसा कहकर अतिमुक्तक कुमार ने गौतम स्वामी की अंगुली पकड़ ली और उनको अपने राजमहल में ले गये।

अतिमुक्तक कुमार के मन में उच्चतम विचारों की तरंगें लहरा रही थी। आज खुशी का कोई पार नहीं था। वे गौतम स्वामी की अंगुली पकड़कर धन्य हो गये। अहा! कैसा सद्भाग्य जिन्हें बचपन में ही गणधर गौतम का सान्निध्य मिल गया। उनका मन बाग-बाग हो गया। सुपात्रदान का यह सुन्दर अवसर प्राप्त कर मनमयूर नृत्य करने लगा। राजमहलों में पहुँचते ही माँ को कहा- माँ! माँ! देखो आज मैं किसको घर लाया हूँ।

माता श्रीदेवी गौतम- स्वामी को दृष्टिगत¹ कर अतीव प्रसन्न हुई। वह आसन से उठी, उठकर भगवान गौतम के सन्मुख आयी। उन्हें तीन बार आदक्षिण-प्रदक्षिणा करके वन्दन-नमस्कार किया और विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम से प्रतिलाभित² करके पुनः सात-आठ कदम छोड़ने के लिए गयी।

तब अतिमुक्तक कुमार ने पूछा- देवानुप्रिय! आप कहाँ रहते हैं ?

गौतमस्वामी- देवानुप्रिय! मेरे धर्माचार्य, धर्मोपदेशक, समस्त उत्तम गुणों के रत्नाकर भगवान महावीर श्रीवन उद्यान में विराज रहे हैं, मेरा निवास उन्हीं के श्रीचरणों में है।

अतिमुक्तक कुमार- भगवन्! क्या मैं आपके साथ श्रमण भगवान महावीर को वन्दन करने चल सकता हूँ?

गौतम स्वामी- देवानुप्रिय! तुम्हें जैसा सुख हो वैसा करो।

अतिमुक्तक कुमार तो गौतम स्वामी का उत्तर श्रवण कर अतीव हर्षित, आनंदित हो उठे और भगवान महावीर के दर्शनार्थ गौतम स्वामी के साथ चल पड़े।

***श्रमण-निर्ग्रन्थ-प्राणी मात्र के प्रति समभाव रखने वाले श्रमण। राग-द्वेष की ग्रंथि-रहित निर्ग्रन्थ।

1. दृष्टिगत-देखकर
2. प्रतिलाभित-बहरा कर/देकर

अतिमुक्तक कुमार के मन में भगवान के दर्शन की उत्कृष्ट अभिलाषा बनी हुई थी कि कब प्रभु को देखूँ? उन्हें रास्ता लम्बा लग रहा था। वे शनैः शनैः प्रभु चरणों में पहुँचे।

जैसे ही अतिमुक्तक कुमार ने श्रमण भगवान महावीर को देखा, वह गद्गद हो गया। उसने तीन बार भगवान की आदक्षिण-प्रदक्षिणा की और भगवान की पर्युपासना करने लगा।

गौतम स्वामी आहार-पानी लेकर प्रभु के पास आये, उन्होंने श्रमण भगवान महावीर को वंदन-नमस्कार किया। गमनागमन सम्बन्धी प्रतिक्रमण किया और भिक्षा के दोषों की आलोचना की। तत्पश्चात् लाया हुआ आहार-पानी भगवान को दिखलाया और दिखाकर ग्रहण कर लिया तत्पश्चात् तप संयम से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे।

तब श्रमण भगवान महावीर ने अतिमुक्तक कुमार को तथा उस महती परिषद को धर्मकथा कही।

अतिमुक्तक कुमार भगवान की विरक्ति प्रधान धर्मकथा को श्रवण करके, उसे धारण करके बहुत सन्तुष्ट हुआ। उसने भगवान से निवेदन किया- देवानुप्रिय! मैं माता-पिता से पूछकर आपके श्रीचरणों में संयम अंगीकार करना चाहता हूँ।

भगवान महावीर-देवानुप्रिय! तुम्हें जैसा सुख हो वैसा करो, लेकिन धर्म कार्य में विलम्ब मत करो।

भगवान द्वारा ऐसा कहे जाने पर अतिमुक्तक कुमार राजमहलों में लौटे। उन्होंने अपने माता-पिता के चरणों में प्रणाम किया और कहा- मात! तात! मैंने भगवान महावीर के मुखारविन्द से धर्म श्रवण किया है। वह धर्म मुझे अत्यंत रुचिकर और अभीष्ट लगा है।

माता-पिता-वत्स! तुम धन्य हो! वत्स! तुम पुण्यशाली हो! वत्स! तुम कृतार्थ हो। ऐसा अर्चित्य लाभ तुमने लिया है।

तब अतिमुक्तक कुमार ने कहा- मात! तात! भगवान महावीर से मैंने जो धर्म श्रवण किया है, वह मेरे रोम-रोम में समाहित¹ हो गया है।

भगवान महावीर की वाणी मेरे दिल में इस तरह समा गयी है जैसे दूध में मिश्री।

हे मात! तात! भगवान महावीर की वाणी श्रवण करके अब मेरा मन तनिक भी

1. समाहित-लीन हो गया/बस गया।

संसार में रहने को तैयार नहीं है, इसलिए मैं आपकी अनुमति मिलने पर श्रमण भगवान महावीर के समीप मुण्डित होकर गृह-त्याग कर अणगार बनना चाहता हूँ।

माता-पिता- बेटा! तुम अभी बालक हो, असम्बुद्ध² हो, तुम अभी धर्म नहीं जानते तो दीक्षा क्या लोगे ?

अतिमुक्तक कुमार- मात! तात! मैं जिसे जानता हूँ, उसे नहीं जानता हूँ और जिसे नहीं जानता हूँ, उसे जानता हूँ।

माता-पिता-पुत्र तुम ये क्या बोल रहे हो? हमारी समझ में कुछ नहीं आ रहा है।

अतिमुक्तक हे मात! हे तात! मैं जानता हूँ कि जो जन्मा है, उसको अवश्य मरना होगा, परंतु यह नहीं जानता कि कब, कहाँ, किस प्रकार और कितने दिन बाद मरना होगा ?

मैं यह नहीं जानता कि जीव किन कर्मों के कारण नरक, तिर्यच, मनुष्य और देवयोनि में उत्पन्न होते हैं, परंतु इतना जानता हूँ कि जीव अपने कर्मों के कारण नरक, तिर्यच, मनुष्य और देवयोनि में उत्पन्न होते हैं। अतएव मात! तात! निश्चय ही मैं जिसको जानता हूँ, उसको नहीं जानता और जिसको नहीं जानता, उसको जानता हूँ।

अतिमुक्तक कुमार द्वारा कथित इस तत्त्व युक्त विवेचन को सुनकर माता-पिता आश्चर्यचकित हो गये। उन्होंने अनेक युक्तियों और प्रयुक्तियों द्वारा अतिमुक्तक कुमार को समझाने का प्रयास किया लेकिन वे माता-पिता अतिमुक्तक को अपने दृढ़ निश्चय से डिगाने में समर्थ नहीं हो सके।

आखिरकार माता-पिता बोले- पुत्र! हम एक दिन के लिए तुम्हें राजा बना हुआ देखना चाहते हैं। तब माता-पिता के वचनों को श्रवण करके अतिमुक्तक कुमार मौन रहें। तब महाबल* के समान उनका राज्याभिषेक हुआ। तत्पश्चात् भव्यातिभव्य अभिनिष्क्रमण¹ महोत्सव के साथ उनकी दीक्षा भगवान महावीर के श्रीमुख से सम्पन्न हुई।^{xxii}

इस प्रकार भगवान महावीर के सान्निध्य में अतिमुक्तक कुमार ने संयम अंगीकार कर लिया। शास्त्र में भगवान महावीर के सान्निध्य में जितनी दीक्षाओं का उल्लेख मिलता

1. असम्बुद्ध-बोध को अप्राप्त

*महाबल का राज्याभिषेक का वर्णन जमालि की तरह है। जमालि का वर्णन 'अपश्चिम-तीर्थकर' भाग-2 अनुत्तर ज्ञान-चर्या का द्वितीय वर्ष पृष्ठ 161 पर देखें।

2. अभिनिष्क्रमण-शोभा यात्रा

है, उनमें अतिमुक्तक कुमार जितनी उम्र में किसी ने संयम ग्रहण किया हो, ऐसा उल्लेख नहीं मिलता।

भगवती सूत्र की टीका में ऐसा उल्लेख मिलता है कि अतिमुक्तक कुमार ने छह साल की उम्र में प्रब्रज्या धारण^{xxiii} कर ली। यह आश्चर्य है, क्योंकि आठ साल की उम्र से पहले प्रब्रज्या नहीं दी जाती है।^{xxiv} भगवान तो घट-घट के ज्ञाता थे और कल्पातीत थे,^{xxv} इसलिए उन्हीं ने अतिमुक्तक कुमार को छह साल की उम्र में दीक्षा दे दी हो।^{**}

भगवती सूत्र में अतिमुक्तक कुमार के जीवन की एक घटना का उल्लेख इस प्रकार मिलता है-

अतिमुक्तक कुमार मुनि विनय की साक्षात् प्रतिमूर्ति और सरलमना थे। एक दिन बहुत मूसलाधार बारिश हुई। चारों तरफ यत्र-तत्र गड्डों में पानी भर गया था। आकाश मेघों से अनुलिप्त¹ था। वातावरण में शीतलता परिलक्षित² हो रही थी, तभी अतिमुक्तक कुमार अपने हाथ में रजोहरण³ लेकर तथा झोली-पात्र लेकर स्थण्डिल भूमि में दीर्घशंका निवारण हेतु स्थविरो के साथ चले गये।

स्थविर कुछ इधर-उधर हो गये। अतिमुक्तक मुनि अकेले ही रह गये। तब उस समय अतिमुक्तक मुनि ने मार्ग में बहते जल का छोटा-सा नाला देखा। उसे देखकर उनके मन में विचार आया कि इस पानी के दोनों ओर मिट्टी की पाल बाँधनी चाहिये। तब वे इधर-उधर से मिट्टी लाये और उन्होंने नाले के दोनों ओर मिट्टी की पाल बना दी। वह बहता पानी रुक गया।

तत्पश्चात् अतिमुक्तक मुनि ने अपनी झोली में से पात्री निकाली और पानी में छोड़ दी। अब अतिमुक्तक श्रमण कहने लगे- मेरी नाव है। मेरी नाव है। मेरी नौका तिर रही है। इस प्रकार वे वहाँ खेलने लगे। खेल में वे इतने निमग्न हो गये कि सबकुछ भूल बैठे। बचपन की मस्त में संयमी की किशती डोलने लगी।

स्थविरो ने अतिमुक्तक श्रमण को इस प्रकार नौका के रूप में पात्री सचित्त¹ जल में तिराते हुए देखा। देखते ही स्थविर सन्न रह गये। चेहरे पर रोष की रेखाएँ उभरने लगी।

^{**तत्वंतु केवलीगम्यम्}

1. अनुलिप्त-युक्त
2. परिलक्षित-दिखलाई देना
3. रजोहरण-ओघा/ऋषिध्वज

वे अन्तर आगत² भावों को वाणी से प्रसरित³ नहीं करते हुए अतिमुक्तक श्रमण को देखने लगे। अतिमुक्तक मुनि सहम से गये। सोचने लगे-यह मैंने गलत कार्य किया है। अपनी गलती का एहसास करते हुए श्रमणों के साथ चुपचाप चलने लगे।

स्थविर वहाँ पहुँचकर भगवान के श्री चरणों में गये और उन्होंने विनय पूर्वक भगवान से प्रश्न किया- भगवन्! अतिमुक्तक कुमार श्रमण कितने भवों में मोक्ष जायेगा।

भगवान तो अन्तर्यामी थे। उन्होंने स्थविरों से कहा- मेरा अन्तेवासी, सरलमना, विनयवान, अतिमुक्तक कुमार श्रमण* इसी भव में सिद्ध होगा यावत् सभी दुःखों का अन्त करेगा।

अतएव हे आर्यो! तुम अतिमुक्तक कुमार श्रमण की हीलना मत करो, उसको मत डाँटो, उसका अपमान मत करो।^{xxvi}

हे देवानुप्रियो! तुम अग्लान भाव से उसकी सहायता करो। उसकी सेवा शुश्रूषा करो क्योंकि वह चरम शरीरी⁴ मोक्षगामी आत्मा है।^{xxvii}

भगवान महावीर द्वारा ऐसा कहे जाने पर स्थविरों ने तत्क्षण भगवान महावीर को वन्दन-नमस्कार करके भगवान की वाणी को आत्मसात् कर लिया। वे सभी स्थविर अग्लान⁵ भाव से उसकी सेवा-शुश्रूषा में जुट गये। उन्होंने चिन्तन किया लघुदेह में विराट व्यक्तित्व छिपा हुआ है। यह कितना प्रशंसनीय है, जिसने इतनी स्वल्पवय⁶ में राजसी सुखों का परित्याग कर संयम धारण कर लिया। माँ की ममता के आँचल को छोड़कर संयम के सुपथ पर चलने को कृत संकल्पित⁷ हो गया। अपनी अतृप्त इच्छाओं पर संयम का अंकुश लगा दिया। इन्द्रियजयी⁸ बनकर कर्मों से युद्ध करने चारित्र के समरांगण⁹ में कूद गया। इसका त्याग अतीव श्रेष्ठ है। इस प्रकार गुणमय दृष्टि वाले स्थविर भगवन्त विशुद्ध मनोभावों से अतिमुक्तक मुनि की परिचर्या¹⁰ में संलग्न बन गये।^{xxviii}

अब अतिमुक्तक कुमार श्रमण शुद्ध संयमचर्या पालन में तल्लीन बनकर कर्म निर्जरा का भव्य प्रसंग उपस्थित कर रहे थे।** पोलासपुर में धर्म का अद्भुत ठाठ लग

1. सचित्त-जीव युक्त 2. आगत-आये हुए 3. प्रसरित-बोलते हुए

*कुमार श्रमण-अल्प-वय में दीक्षित होने के कारण अतिमुक्तक को कुमार श्रमण कहा है।

4. चरम शरीरी-अन्तिम शरीरी 5. अग्लान-बिना ग्लानि लाये 6. स्वल्पवय-छोटी उम्र

7. संकल्पित-संकल्प धारण करना 8. इन्द्रियजयी-इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करने वाला

9. समरांगण-युद्ध के मैदान में 10. परिचर्या-सेवा-शुश्रूषा

रहा था। इस प्रकार अनेक भव्यों को भवसागर से तिराकर भगवान महावीर पोलासपुर से विहार कर गये। अनेक ग्रामों-नगरों में विचरण करते हुए वे वाणिज्य ग्राम पधारे और यह वर्षावास वाणिज्य ग्राम में सम्पन्न किया।

टिप्पण

अनुतर ज्ञानचर्या का नौवाँ वर्ष

1. उत्तर-विदेह :- नेपाल का दक्षिण प्रदेश पहले उत्तर-विदेह कहलाता था।

आधार ग्रन्थ : श्रमण भगवान महावीर। वही/पृ. 363

2. मिथिला :- मिथिला शब्द से इस नाम की नगरी और इसके आस-पास का प्रदेश दोनों अर्थ प्रकट होते हैं। वस्तुतः मिथिला विदेह देश की राजधानी थी। यद्यपि भगवान महावीर के समय विदेह की राजधानी वैशाली थी, तथापि मिथिला भी एक समृद्ध नगरी थी। तात्कालीन मिथिला के राजा का नाम जैन-ग्रन्थों में जनक लिखा है, अतः अनुमान होता है कि जनकवंशीय किसी क्षत्रिय का मिथिला पर तब तक स्वामित्व बना रहा होगा।

भगवान महावीर के चातुर्मास के केन्द्रों में मिथिला की गणना थी। यहाँ आपने छः चातुर्मास बिताये थे।

सीतामढ़ी के पास मुहिला नामक स्थान ही प्राचीन मिथिला का अपभ्रंश है। वैशाली से मिथिला उत्तरपूर्व में अड़तालीस मील पर अवस्थित थी। कई विद्वान् सीतामढ़ी को ही मिथिला कहते हैं और कई जनकपुर को प्राचीन मिथिला मानते हैं।

मिथिला के नाम से प्राचीन जैन-श्रमणों की एक शाखा भी प्रसिद्ध हुई, जो 'मैथिलीया' कहलाती थी।

आधार ग्रन्थ : श्रमण भगवान महावीर/वही/पृ. 388-89

3. काकन्दी :- यह उत्तर भारतवर्ष की प्राचीन और प्रसिद्ध नगरी थी। भगवान् महावीर के समय काकन्दी में जितशत्रु राजा का राज्य था। इसके बाहर सहस्राभ्रवन उद्यान था। महावीर यहाँ अनेक बार पधारे थे। भद्रा सार्थवाही के पुत्र धन्य और सुनक्षत्र ने यहीं पर भगवान महावीर के पास श्रमण धर्म की प्रब्रज्या स्वीकार की थी। भगवान महावीर के श्रमण-शिष्य क्षेमक और धृतिधर गृहस्थाश्रम में यहीं के रहने वाले थे।

आजकल लछुआड़ से पूर्व में काकन्दी तीर्थ माना जाता है, परन्तु हमारे मत में काकन्दी का मूल स्थान यहाँ का नहीं था। महावीर के विहार वर्णन से जाना जा सकता है कि काकन्दी उत्तर भारतवर्ष में कहीं पर थी। नूनखार स्टेशन से दो मील और गोरखपुर से दक्षिण-पूर्व तीस मील पर दिगम्बर जैन जिस स्थान को किष्किंधा अथवा सुखुंदोजी नामक तीर्थ मानते हैं, हमारे विचार से यही प्राचीन काकन्दी है।

आधार : श्रमण भगवान महावीर/वही/पृ. 366-67

4. **आयम्बिल** :- आयम्बिल शब्द दो शब्दों से बना है-1. आयाम 2. अम्ल। आयाम-मांड अथवा ओसामण, अम्ल-खट्टा रस। इन दोनों को मिलाकर जो भोजन बनता है, उसको आयामाम्ल-आयंबिल कहते हैं। यह परिभाषा आयंबिल से मेल नहीं खाती क्योंकि आयम्बिल में खट्टे रस का प्रयोग वर्जित है, लेकिन हरिभद्र सूर के पूर्व कदाचित् आयम्बिल में छाछ का प्रयोग होता होगा। सुज्ञ जन इस पर विचार करें (तत्त्वं तु केवलिगम्यम्) आचार्य हरिभद्र ने आयंबिल के लिए आयामाम्ल, आचाम्ल और आचामाम्ल शब्दों का प्रयोग किया है।

प्राचीन व्याख्याओं के अनुसार ओदन, उड़द और सतु इन तीन प्रकार के अनाजों का आयम्बिल में प्रयोग होता था।

बौद्ध ग्रन्थों में आयाम शब्द का अर्थ मांड किया गया है। प्रवचन सारोद्धार में आयाम के स्थान पर आचाम शब्द आया है।

आधार ग्रन्थ : आवश्यक निर्युक्ति वृत्ति गाथा 1603 आर्य देवेन्द्र कृत श्राद्ध प्रतिक्रमण आचार्य सिद्धसेन कृत, प्रवचन सारोद्धार।

5. **स्वाध्याय** :- ज्ञानावरणादि कर्मों के क्षय के लिए अथवा मन, वचन और काया की क्रियाओं को समाप्त करने के लिए मोक्ष की कामना करने वालों को नित्य प्रति स्वाध्याय करना चाहिए, क्योंकि आत्मा के लिए हितकारक आगम के अध्ययन को स्वाध्याय कहा है।

अणगार धर्मामृत 7/82

मोक्ष-मार्ग में ज्ञान की मुख्य भूमिका रहती है। मोक्ष की प्रक्रिया ज्ञान से ही प्रारम्भ होती है और ज्ञान में ही पूर्णता प्राप्त करती है। इस पूर्णता के बीच में अर्थात् केवल-ज्ञान की प्राप्ति तक, समीचीन-शास्त्रों के अध्ययन को स्वाध्याय कहते हैं। उत्तराध्ययन 29वें अध्ययन में कहा है कि स्वाध्याय से ज्ञानावरणादि कर्म क्षीण होते हैं।

इस प्रकार स्वाध्याय की निरूक्ति दो प्रकारों से की जा सकती है- 1. स्व+अध्याय और सु+अध्याय। स्व+अध्याय अर्थात् जो अध्ययन आत्मा के लिए हितकारक हो। सु+अध्याय अर्थात् सम्यक् शास्त्रों का अध्ययन।

ये दोनों ही अर्थ ज्ञानावरणीय कर्मों के विनाश रूप परिणाम का बोध करवाते हैं।

6. **उत्कृष्टतम त्याग** :- धन्य अणगार के त्याग जैसा उत्कृष्टतम त्याग अन्यत्र कहीं दृष्टिगोचर नहीं होता, यद्यपि मज्झिमनिकाय के महासिंहनादसुत्त में तथागत-बुद्ध ने अपने किसी एक पूर्वभव में इस प्रकार की उत्कृष्ट तपः साधना की थी। बुद्ध ने छह वर्ष तक जो तप तपा था, वह भी कुछ इसी प्रकार का था। महाकवि कालिदास ने कुमार सम्भव महाकाव्य में पार्वती के उग्र तप का सजीव वर्णन किया है, तथापि धन्यकुमार का वर्णन अधिक सजीव लगता है। उन्होंने जीवन भर छठ-8 तप करने की प्रतिज्ञा की थी। पारणे में भी आयम्बिल करते थे। कोई गृहस्थ जिस अन्न को **तत्पश्चात् अतिमुक्तक श्रमण ने ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। बहुत वर्षों तक श्रमण पर्याय का पालन किया। गुणरत्न संवत्सर तप की आराधना की। जब उनका देहबल निरन्तर क्षीण होने लगा, तब अन्त में विपुलगिरि पर संलेखना करके अजर-अमर पद को प्राप्त किया।

बाहर फैंकने हेतु तैयार होता, उसे ग्रहण करते। वास्तव में ऐसा तप अन्यत्र देखने को नहीं मिलता।

आधार ग्रंथ : 1. बोधिराज कुमार सुत्त, दीर्घतिकाय, कस्सपसिंह नादसुत्त 2.

कुमार संभव सर्ग, पार्वती प्रकरण।

7. गुण-शीलक चैत्य :- गुणाः शिरसि यस्य यस्मिन् वा तत् गुणशिरः। गुणशील शब्द उद्यान के लिए भी प्रयुक्त होता है। जिसमें उद्यानों के गुण सदा विद्यमान रहते हैं, उसे गुणशील कहते हैं।

8. विपुल गिरि :- राजगृह के पाँच पर्वतों में से एक का नाम विपुल गिरि था। भगवान महावीर के सैकड़ों श्रमण शिष्यों ने इस पर अनशनपूर्वक देह छोड़कर स्वर्ग और निर्वाण को प्राप्त किया था।

आधार ग्रंथ : श्रमण भगवान महावीर/वही/पृ. 394

9. काम्पिल्यपुर :- ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र के 16वें अध्ययन में काम्पिल्यपुर में द्रौपदी के जन्म का वर्णन है। महाभारत के आदि पर्व उद्योग के अनुसार यह दक्षिण पाँचाल का एक नगर था। इस समय बदायूं और फर्रुखाबाद के मध्य बूढ़ी गंगा के किनारे कम्पिल नामक ग्राम के रूप में यह स्थित है।

आधार ग्रंथ : ज्ञाताधर्म कथांग सूत्र

महाभारत

श्रमण भगवान महावीर/वही/पृ. 367

10. सहस्राभ्रवन :- यह उद्यान काम्पिल्य-नगर के पास था। जहाँ पर भगवान महावीर का अनेक बार समवसरण हुआ।

11. पोलासपुर :- इसके बाहर सहस्राभ्रवन उद्यान था। तत्कालीन राजा का नाम जितशत्रु था। आजीविकोपासक से श्रमणोपासक बनने वाला सकडालपुत्र यहीं का रहने वाला था।

आधार ग्रंथ : श्रमण भगवान महावीर/वही/पृ. 383

अनुतर ज्ञानचर्या का दसवाँ वर्ष

राजगृह का रहस्य:

वाणिज्य ग्राम में अनेक भव्यों की आत्मज्योति प्रज्वलित कर भगवान ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए राजगृह नगर की ओर पधारने लगे।

चलें राजगृह की ओर :

राजगृह नगर की महान् पुण्यवाणी थी, जहाँ महावीर ने अपने जीवनकाल के सर्वाधिक चातुर्मास सम्पन्न किये।ⁱ भगवान महावीर के दो सौ से अधिक बार समवसरण वहाँ हुए ऐसा उल्लेख आगम साहित्य में मिलता है। उस राजगृह नगर में गुणशीलⁱⁱ मंडिकुच्छⁱⁱⁱ और मोग्गरपाणि^{iv} आदि उद्यान थे। भगवान महावीर प्रायः गुणशील उद्यान में ही ठहरते थे, जिसे वर्तमान में गुणावा कहते हैं।

राजगृह उस समय व्यापार का प्रमुख केन्द्र था। वहाँ दूर-2 से व्यापारी वर्ग आया करता था। राजगृह से अनेक मार्गों से लोग आया करते थे और वहाँ से तक्षशिला, प्रतिष्ठान, कपिलवस्तु, कुशीनाला आदि प्रसिद्ध नगरों के मार्ग जाते थे।^v

आगम साहित्य में राजगृह नगर को देवलोक के सदृश बतलाया है।^{vi} पायकुमार

चरिउं में महाकवि पुष्पदंत ने राजगृह की महिमा वर्णित करते हुए बतलाया है कि स्वर्ण¹ और रजत² से निर्मित राजगृह नगरी ऐसी शोभा को धारण कर रही थी, मानो वह देवलोक gCvaH nādr naAmu' r hrⁱⁱⁱ पद्मपुराण में रविषेण आचार्य ने तो राजगृह को धरती का यौवन कह डाला।^{viii}

बौद्ध-ग्रंथों में भी राजगृह का विस्तृत विवरण मिलता है। राजगृह के सुन्दर खेतों का वर्णन बौद्ध ग्रंथों में उपलब्ध है। विनय-पिटक में बुद्ध के राजगृह में जाने का उल्लेख मिलता है। वहाँ ऐसा वर्णन मिलता है कि बुद्ध गृहत्याग कर राजगृह आये थे। तब राजा श्रेणिक ने उनको अपने साथ राजगृह रहने की बात कही, पर बुद्ध ने वह बात नहीं मानी। बुद्ध अपने मत का प्रचार करने के लिए भी कई बार राजगृह आये थे। बुद्ध जब भी राजगृह नगर में आते तो वे प्रायः गृद्धकुट पर्वत, कलन्दक निवाय और वेणुवन में ठहरते थे।^{ix} एक बार जब बुद्ध वेणुवन में थे, तब अभयकुमार ने उनसे विचार चर्चा की थी।^x साधु सकलोदायि ने भी बुद्ध से यहाँ पर वार्तालाप किया था।^{xi} ऐसी बौद्धों की मान्यता है, लेकिन यह सत्य के धरातल से कोसों दूर लगती है।

दिगम्बर जैन ग्रंथों के अनुसार भगवान महावीर का प्रथम उपदेश और संघ संस्थापना राजगृही नगरी में हुई थी।^{xii} प्राचीन साहित्य में राजगृह के अनेक नाम उपलब्ध होते हैं। यथा-मगधपुर, क्षिति, प्रतिष्ठित, चणकपुर, ऋषभपुर, कुशाग्रपुर आदि। महाभारत युग में भी राजगृह में जरासंध राज्य करता था।^{xiii} रामायण काल में बीसवें तीर्थंकर श्री मुनिसुव्रत स्वामी का जन्म राजगृह में हुआ था।^{xiv}

पाँच पर्वतों से घिरे होने के कारण राजगृह को गिरिव्रज भी कहते हैं। इन पाँचों पर्वतों के नाम में जैन, बौद्ध, और वैदिकों में भिन्नता है।^{xv} ये पर्वत राजगृह में अभी भी हैं। पाँच में से वैभारगिरि और विपुलगिरि का वर्णन जैन-ग्रन्थों में विशेष रूप से उपलब्ध है, क्योंकि इन दो पर्वतों पर अनेक महान आत्माओं ने निर्वाण प्राप्त किया था। वैभारगिरि¹ पर्वत के नीचे ही तपोदा और महातपोपनीर प्रभ नामक ऊष्ण पानी का एक विशाल कुण्ड था।^{xvi} वर्तमान में उसे तपोवन कहते हैं। आजकल राजगृह को राजगिरि भी कहते हैं। यह राजगिरि बिहार प्रान्त में पटना से पूर्व और गया से पूर्वोत्तर में अवस्थित है।

समता के शिखर-महाशतक :

1. स्वर्ण - सोना
2. रजत - चाँदी

भगवान के समय इस राजगृह की महिमा निराली थी। जहाँ पर अनेक नरपुंगवों ने जन्म लेकर स्व-पर कल्याण में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। अनेक भव्यों को भवसागर पार उतारने के लिए इस बार भी भगवान राजगृह में पधारे। भगवान गुणशील उद्यान में ठहर गये।

उस समय राजगृह नगर में महाशतक नामक गाथापति निवास करता था। वह अत्यन्त समृद्धिशाली और वैभव युक्त था। महाशतक गाथापति के आठ करोड़ काँस्य परिमित स्वर्ण मुद्राएँ खजाने में सुरक्षित रखी हुई थी। आठ करोड़ काँस्य* परिमित स्वर्ण मुद्राएँ घर के वैभव में लगी हुई थी। उसके आठ गोकुल थे। प्रत्येक गोकुल में दस हजार गायें थीं। इस प्रकार वह अस्सी हजार गायों का स्वामी था।^{xvii}

महाशतकजी के रेवती आदि तेरह पत्नियाँ थीं। वे पत्नियाँ शारीरिक लक्षणों से सम्पन्न तथा सर्वांग सुन्दरियाँ थीं।

महाशतक की पत्नी रेवती को पीहर से आठ करोड़ स्वर्ण मुद्राएँ तथा अस्सी हजार गायों के आठ गोकुल मिले थे। शेष बारह पत्नियों को पीहर से एक-एक करोड़ स्वर्ण मुद्राएँ तथा दस-दस हजार गायों के एक-एक गोकुल मिले थे, जो उनकी व्यक्तिगत संपत्ति थी।

इतना अपूर्व वैभव महाशतक गाथापति का था। जब भगवान के पर्दापण के समाचार महाशतक को ज्ञात हुआ तो वह भी भगवान की वाणी श्रवण करने आनन्द गाथापति की तरह गया और उसने भी श्रावक-धर्म आनन्द की तरह स्वीकार किया, लेकिन अंतर इतना है कि महाशतक ने परिग्रह के रूप में आठ करोड़ काँस्य-परिमित

*काँस्य-पात्र कितना बड़ा था ? इसका समाधान यह है कि चार आढ़क का एक द्रोण, दो द्रोण का एक शूर्प यह 64 शराब का होता है अर्थात् दो द्रोण या आठ आढ़क या 32 प्रस्थ (सेर)। अतएव 32 सेर तौल की वस्तुएँ जिसमें समा सकती है, इतना बड़ा काँस्य-पात्र होता है।

महाशतकजी की सम्पत्ति के लिए प्रयुक्त काँस्य-पात्र इतना ही बड़ा था।

1. भाव प्रकाश/पूर्वखण्ड/द्वितीय भाग/मान परिभाषा प्रकरण 15, 16
2. शाङ्गधर-संहिता 1/1/15-29

महाशतकजी के स्वर्ण-मुद्राओं की गिनती अशक्य होने से काँस्य-पात्र ने नापी गयी है।

स्वर्ण मुद्राएँ निधान आदि में रखने की तथा आठ गोकुल रखने की मर्यादा की थी। उसने चतुर्थ व्रत में रेवती आदि तेरह पत्नियों के अतिरिक्त अवशेष¹ मैथुन-सेवन का परित्याग किया। इस प्रकार अवशिष्ट समस्त वर्णन आनन्द की तरह जानना चाहिए। केवल इतना विशेष है कि श्रमणोपासक महाशतक ने प्रतिदिन लेन-देन में दो-द्रोण² परिमाण काँस्य परिमित स्वर्ण मुद्राओं की सीमा रखी।

श्रावक व्रत ग्रहण करने के पश्चात् महाशतकजी जीव-अजीव आदि के ज्ञाता बन गये थे और वे धर्ममय जीवन जीने लगे।

श्रमण भगवान महावीर राजगृह में अनेक भव्यों को भव्य-पथ दिखलाकर अन्य जनपदों में विहार कर गये।^{xviii}

टिप्पण : महाशतक श्रमणोपासक अपना धार्मिक जीवन जीने लगा, तब एक दिन अर्ध-रात्रि के समय महाशतक की पत्नी रेवती के मन में इस प्रकार के हिंसात्मक विचार पैदा हुए कि मैं अपनी बारह सौतों के कारण अपने पति महाशतक के साथ विपुल-भोगों को भोग नहीं पा रही हूँ। अतएव इन बारह सौतों को मुझे अग्नि-प्रयोग, शस्त्र-प्रयोग या विष-प्रयोग द्वारा समाप्त कर देना चाहिए। तब इनकी पीहर से प्राप्त एक-एक करोड़ स्वर्ण-मुद्राएँ एवं एक-एक गोकुल मुझे सहज ही प्राप्त हो जायेगा। मैं भी महाशतक के साथ मनुष्य जीवन सम्बन्धी विपुल भोग भोगती रहूँगी। ऐसा चिन्तन करके वह सौतों को मारने का अनुकूल अवसर खोजने लगी और शून्य एकान्त में रहने लगी।

एक दिन अनुकूल अवसर प्राप्त कर उसने छह सौतों को शस्त्र-प्रयोग से तथा छह सौतों को विष-प्रयोग से मार डाला और बारह सौतों की पीहर से आई हुई एक-एक करोड़ स्वर्ण मुद्राएँ और एक-एक गोकुल को हस्तगत कर लिया। अब वह श्रमणोपासक महाशतक के साथ विपुल भोग भोगती हुई रहने लगी।

वह रेवती गाथापत्नी अत्यन्त स्वच्छन्द प्रकृति वाली होकर मांस-भक्षण में लोलुप,³ आसक्त, लुब्ध तथा तत्पर रहती थी। वह लोहे की सलाखा पर सेके हुए, घी आदि में तले हुए, आग पर भुने हुए बहुत प्रकार के मांस एवं सुरा⁴मधु⁵ मेरक⁶मद्य⁷सीधु⁸व प्रसन्न⁹नामक मदिराओं का आस्वादन करती, मजा लेती, छक कर सेवन करती।

1. अवशेष - शेष बचा
2. दो-द्रोण - 32 सेर का एक द्रोण
3. लोलुप - आसक्त

टिप्पण :

तभी राजगृह नगर में ऐसी उद्घोषणा हुई कि कोई भी व्यक्ति किसी भी प्राणी की हत्या नहीं करेगा।^{XIX} जब यह घोषणा रेवती गाथापत्नी ने श्रवण की तब उसने चिन्तन किया कि मैं मांस खाये बिना एक दिन भी नहीं रह सकती, इसलिए मुझे अपने पीहर के

* सुरा - शालि व साठी धान्य की पीठी से जो मद्य तैयार होता है उसे सुरा कहते हैं।

भावप्रकाश/पूर्वखण्ड/प्रथम भाग सन्धान वर्ग 23

□ मधु - जिस मद्य के निर्माण में अन्य-वस्तुओं के साथ शहद भी मिलाया जाता है वह मधु। अष्टांगहृदय में इसे माधव मद्य कहा है।

अप्यंगहृदय 5/75

(अरुणदत्त कृत सर्वांग सुन्दरा टीका)

सुश्रुत संहिता में मधु और गुड़ द्वारा इसका सन्धान बतलाया है तथा इसे मध्वासव कहा है।

सुश्रुत संहिता सूत्र स्थान 45, 188

(डल्हणाचार्म विरचित निम्बन्धसंग्रहा व्याख्या)

• मेरक - इसका मैरेय नाम आयुर्वेद में उपलब्ध है। सुश्रुत-संहिता में इसे त्रियोनि कहा है। पीठी से बनी सुरा गुड़ से बना आसव तथा मधु इन तीनों के मेल से यह तैयार होती है।

सुश्रुत संहिता सूत्र स्थान 45/190 (व्याख्या)

※ मद्य - साधारणतया मदिरा को मद्य कहते हैं, पर संभवतः यहाँ मदिरा के मार्द्विक भेद को मद्य कहा है जो द्राक्षा और मुनक्का से तैयार होती है।

सुश्रुत संहिता सूत्र-स्थान 45/172 व्याख्या

※ सीधु- ईख के रस से बनाये जाने वाले मद्य को सीधु कहा है। मह ईख के पक्के तथा कच्चे दोनों से अलग-अलग तैयार होता है। इन दोनों की मादकता में अन्तर रहता है।

भाव प्रकाश - पूर्वखण्ड/प्रथम भाग/सन्धान वर्ग 25

❖ प्रसन्ना- सुश्रुत संहिता के अनुसार सुरा का नितरा हुआ ऊपरी स्वच्छ भाग प्रसन्ना मा प्रसन्ना कहा जाता है।

सुश्रुत संहिता 45/177 (व्याख्या)

अष्टांग-हृदय के अनुसार वारूणी का पर्मांम प्रसन्ना है। अतएव इसके अनुसार सुरा का ऊपरी स्वच्छ भाग प्रसन्ना, नीचे का गाढ़ा भाग जगल एवं जगल के नीचे का भाग मेदक कहा जाता है। नीचे बचे कल्क को निचोड़ने से निकला द्रव बक्कस कहा जाता है।

नौकरों को बुलाना चाहिए। इस प्रकार विचार करके उसने अपने पीहर के नौकरों को बुलवाया और कहा-कि तुम मेरे पीहर के गोकुलों में से प्रतिदिन दो-दो बछड़े मारकर मुझे ला दिया करो। पीहर के नौकरों ने रेवती के आदेश को विनय-पूर्वक स्वीकार किया और वे उसके पीहर के गोकुलों में से प्रतिदिन प्रातः दो बछड़े लाने लगे। रेवती गाथापत्नी सलाखों पर सेके गये बछड़ों के मांस के टुकड़ों का तथा मदिरा का लोलुप भाव से सेवन करने लगी। उसका यह क्रम चलता ही रहा।

श्रमणोपासक महाशतक को विविध प्रकार के व्रतों, नियमों द्वारा आत्मा को भावित करते हुए चौदह वर्ष व्यतीत हो गये। आनंद आदि की तरह वह भी ज्येष्ठ¹ पुत्र को परिवार एवं समाज का उत्तरदायित्व सौंपकर पौषधशाला में धर्माराधना में निरत रहने लगा।

एक दिन गाथापति की पत्नी रेवती शराब के नशे में उन्मत्त लड़खड़ाती हुई, बाल बिखेरे, बार-बार अपना उत्तरीय* फैंकती हुई, पौषधशाला में श्रमणोपासक महाशतक को कामवासना से संलित होकर इस प्रकार बोली- धर्म, पुण्य, स्वर्ग तथा मोक्ष की उत्कण्ठा रखने वाले श्रमणोपासक महाशतक! तुम मेरे साथ विपुल भोग नहीं भोगते तो तुम धर्म यावत् मोक्ष से क्या पाओगे? यही स्वर्ग और मोक्ष है, इससे ज्यादा सुख वहाँ भी क्या मिलेगा?

रेवती दो-तीन बार इसी प्रकार वासना के कीचड़ से अनुलित² होकर याचना करती रही, परन्तु श्रमणोपासक महाशतक ने रेवती के कथन का आदर न करते हुए उस पर जरा भी ध्यान नहीं दिया। वह तो अपनी धर्माराधना में तल्लीन बना रहा। इस प्रकार महाशतक द्वारा ध्यान न दिये जाने पर रेवती लौट गयी।

श्रमणोपासक महाशतक ने श्रावक योग्य ग्यारह उपासक³ प्रतिमाओं को स्वीकार किया। आगम अनुसार विधिपूर्वक उसने ग्यारह ही प्रतिमाओं की आराधना की। इस उग्र तपश्चरण से उसका शरीर अत्यंत कृशकाय बन गया और उसके शरीर की नसें-2 दृष्टिगत होने लगी। शारीरिक बल क्षीण होने पर भी उसका आत्मिक बल अत्यंत दृढ़ीभूत

1. ज्येष्ठ - सबसे बड़ा

* उत्तरीय - दुपट्टा

2. अनुलित - युक्त

3. उपासक - श्रावक

था। वह धर्म आराधना में वैसा ही तत्पर था जैसा कि पहले।

इस प्रकार निरन्तर जब उसका शारीरिक बल क्षीण होने लगा तो उसने भी आनंद श्रावक की तरह संलेखना करके जीवन-मृत्यु की आकांक्षा रहित होकर अनशन तप स्वीकार कर लिया।

महाशतक के अध्यवसायों में निरन्तर विशुद्धि होने लगी तब उसको शुभ परिणामों और शुभ लेश्या के कारण अवधिज्ञान उत्पन्न हो गया। अवधिज्ञान से वह पूर्व, पश्चिम तथा दक्षिण दिशा में एक-एक हजार योजन तक लवण समुद्र का क्षेत्र तथा उत्तर दिशा में हिमवान वर्ष-धर¹ पर्वत तक का क्षेत्र तथा अधोलोक में प्रथम पृथ्वी रत्नप्रभा में चौरासी हजार वर्ष की स्थिति वाले लोलुपाच्युत नामक नरक तक को जानने देखने लगा।

तब किसी एक दिन महाशतक श्रमणोपासक की पत्नी रेवती शराब के नशे में उन्मत्त बनी, लड़खड़ाती हुई, बाल बिखेरे, बार-बार अपना उत्तरीय फेंकती हुई महाशतक श्रमणोपासक के पास आकर इस प्रकार कहने लगी-

देवानुप्रिय! तुम मेरे साथ विपुल भोग नहीं भोगते तो तुम्हें धर्म यावत् मोक्ष क्या मिलेगा? इस प्रकार वह रेवती दो-तीन बार कहने लगी।

तब श्रमणोपासक महाशतक ने क्रोधावेश में अपने अवधिज्ञान² का उपयोग किया और अपनी पत्नी रेवती से कहा- मृत्यु को चाहने वाली रेवती! तू अलसक रोग से व्यथित, दुःखित तथा विवश होती हुई सात रात्रि में मरकर प्रथम नरक भूमि रत्नप्रभा^{xx} के लोलुपाच्युत³ नरक में चौरासी हजार वर्ष के आयुष्य वाले नैरयिक के रूप में पैदा होगी।

श्रमणोपासक महाशतक के इस प्रकार के वचनों को श्रवण करके रेवती ने सोचा कि महाशतक के मन में मेरे प्रति दुर्भावना पैदा हो गई है, वह मेरा बुरा चाहता है। न मालूम अब मैं किस बुरी मौत से मार डाली जाऊँगी। ऐसा सोचकर रेवती वहां से निकली और आर्त्तध्यान करती हुई चिंताग्रस्त बन गई।

तत्पश्चात् रेवती सात रात में अलसक रोग* से पीड़ित हो गयी और वह अपना आयुष्य पूर्ण करके प्रथम नरक के लोलुपाच्युत नामक नरक स्थान में चौरासी हजार वर्ष

1. वर्षधर . जो क्षेत्र विशेष की सीमा करता है

2. अवधिज्ञान . रूपी पुद्गलों को जिस ज्ञान द्वारा जाना जाता है।

3. लोलुपाच्युत . प्रथम नारकी के नरकावास का नाम।

वाले नैरयिक के रूप में उत्पन्न हुई।

उस समय श्रमण भगवान महावीर राजगृह नगर पधारे। समवसरण में परिषद् धर्म श्रवण करने हेतु आयी और धर्म श्रवण करके लौट गयी।

तत्पश्चात् श्रमण भगवान महावीर ने इन्द्रभूति गौतम से कहा- गौतम! महाशतक श्रमणोपासक संलेखना^{II} संथारा करके धर्मध्यान में निरत बना हुआ है। इस संथारे की अवस्था में उसकी पत्नी रेवती द्वारा बार-बार भोग का निमंत्रण दिये जाने पर महाशतक श्रमणोपासक को क्रोध आ गया। उसने अवधिज्ञान^{xxi} का उपयोग लगाया और रेवती से कहा कि तू सात दिन में अलसक रोग से पीड़ित होकर मृत्यु को प्राप्त करके प्रथम नरक भूमि के लोलुपाच्युत नरकावास में चौरासी हजार वर्ष के आयुष्य वाले नैरयिकों में उत्पन्न होगी।

गौतम! इस प्रकार के वचन सत्य होने पर भी जिन्हें श्रवण करने से मन में खेद उत्पन्न होता है, जो मन को अप्रीतिकर है, जो मन को असुंदर लगे, ऐसे वचन अंतिम मारणांतिक संलेखना की आराधना में लगे हुए श्रावक को नहीं बोलना चाहिये, इसलिए गौतम तुम महाशतक के पास जाओ और उन्हें कहो कि तुम आलोचना, प्रायश्चित्त स्वीकार करो।

तब विनय की साक्षात् प्रतिमूर्ति गौतम ने भगवान महावीर के वचनों का समादर करते हुए कहा- भगवन्! आप ठीक फरमाते हैं। ऐसा कहकर गौतम स्वामी महाशतक के पास पहुँचे।

श्रमणोपासक महाशतक ने जब गणधर गौतम को आते हुए देखा तो वे अत्यंत हर्षित एवं प्रसन्न हुए, उन्हें वंदन, नमस्कार किया। भगवान गौतम ने महाशतक से कहा- देवानुप्रिय! श्रमण भगवान महावीर ने ऐसा कहा है कि अंतिम मारणांतिक अनशन स्वीकार किये हुए श्रमणोपासक को सत्य वचन भी यदि अनिष्ट¹ अप्रिय² अकांत³ तथा

* आलसक-रोग - अष्टांग हृदय में अलसक रोग का इस प्रकार वर्णन मिलता है दुर्बल, मन्द-अग्नि वाले, मल-मूत्रादि का वेग रोकने वाले व्यक्ति का वायु विमार्गगामी हो जाता है। वह पित्त एवं कफ को बिगाड़ देता है, इससे खाया हुआ अन्न आमाशय के भीतर ही कफ से रुक जाता है। तीव्र शूल चुभने जैसी पीड़ा होती है। वमन और शौच रुक जाता है उसे अलसक रोग कहते हैं।

माघवनिदान में अलसक के लिए लिखा है कि - जिस रोग में आफरा आ जाये, खिचावट बनी रहे, पीडा इतनी हो जाये कि आदमी करहाने लगे। पवन का वेग नीचे न जाकर आमाशय की ओर दौड़। शौच व अपानवायु बिलकुल रुक जाये, प्यास लगे, डकारें आयें उसे अलसक कहते हैं।

माघव निदान अजीर्ण 17, 18

अमनोज्ञ⁴ हो तो बोलना नहीं कल्पता। देवानुप्रिय! तुमने रेवती को इस प्रकार के वचन बोले इसलिए तुम इसकी आलोचना करो और प्रयश्चित्त स्वीकार करो।

भगवान की वाणी को श्रवण करके महाशतक ने तनिक भी तर्क नहीं किया, अपितु विनयपूर्वक भगवान के वचनों को स्वीकार करते हुए कहा- आप ठीक फरमाते हैं। इस प्रकार कहकर अपनी भूल की आलोचना की और यथोचित् प्रायश्चित्त स्वीकार किया।

महाशतकजी श्रावक की सहजता और सरलता वस्तुतः अनुकरणीय है। उनकी श्रद्धा कितनी बेजोड़ थी। श्रद्धा और तर्क ये दोनों एक-दूसरे के साथ तभी तक चलते हैं, जब तक जिज्ञासा समाहित न हो जाये। जिज्ञासा की समाप्ति के साथ ही तर्क निरस्त हो जाता है और एकमात्र श्रद्धा रहती है। उस श्रद्धा में तर्क ठहरता नहीं, कल्पना उठती नहीं, मन दौड़ता नहीं, विचारों की श्रृंखला चलती नहीं, एकमात्र समर्पण ही रहता है। महाशतकजी का प्रभु के प्रति समर्पण हमारे लिए आदर्श की मिशाल है। उनका सांसारिक जीवन भी कितना धैर्य और समता से ओत-प्रोत था कि उन्होंने रेवती जैसी पत्नी के साथ भी सामंजस्य स्थापित कर लिया। जिस रेवती ने बारह पत्नियों को मार दिया, जो रेवती व्रतधारी श्रावक की पत्नी होकर भी मांसभक्षण किया करती थी, ऐसी अधर्मिणी पत्नी के साथ सामंजस्य स्थापित करना महान् समत्व का परिचायक है। महाशतकजी कितने निर्लोभ प्रवृत्ति के धनी थे, जिन्होंने ससुराल से आये हुए धन को छुआ तक नहीं। जो पत्नी अपने पीहर से जितना धन लायी, वो उसी को दे दिया। लेकिन उसके प्रति अपना अधिकार तक नहीं रखा। आज ऐसी ही प्रवृत्ति प्रत्येक जैन श्रमणोपासक की हो जाये तो जैन समाज भ्रूणहत्या के कलंक से बच सकता है। प्रत्येक श्रावक आदर्श जीवन जी सकता है।

गौतम स्वामी का जीवन भी प्रत्येक साधक के लिए महान् प्रेरणादायी है कि भगवान ने इतने सब साधकों के होते हुए भी महाशतकजी को आलोचना, प्रायश्चित्त करवाने के लिए गणधर गौतम को भेजा, वे तुरंत चले भी गये। यह शिक्षात्मक आदेश पालन का कर्तव्य निर्वघ्न सबको कर्तव्य के प्रति सजग बना रहा है।

1. अनिष्ट - जो इष्ट न हो।
2. अप्रिय - जिन्हें सुनने से मन में अप्रीति हो।
3. अकान्त - सुनने में असुन्दर
4. अमनोज्ञ - जिसे मन न बोलना चाहे, न सुना चाहे।

महाशतकजी ने आलोचना, प्रायश्चित्त कर लिया, तत्पश्चात् गणधर गौतम महाशतकजी के पास से लौटकर भगवान महावीर के पास आये। भगवान को वंदन-नमस्कार किया एवं तप संयम से अपनी आत्मा को भावित करते हुए धर्माराधना में लवलीन बन गये।

भगवान महावीर कुछ दिन राजगृह विराजकर तदनन्तर वहाँ से प्रस्थान कर गये।

इस प्रकार श्रमणोपासक महाशतक ने अनेकविध व्रत-नियम आदि द्वारा आत्मा को भावित किया। बीस वर्ष तक श्रमणोपासक पर्याय का पालन किया। एक माह की संलेखना-संधारा करके वे सौधर्म देवलोक¹ में अरूणावतंसक विमान में देव रूप में उत्पन्न हुए। वहाँ चार पल्लोपम की स्थिति पूर्ण करके वे महाविदेह क्षेत्र से सिद्ध-बुद्ध-मुक्त होंगे।^{xxii}

शंका से सत्य की ओर :

भगवान महावीर राजगृह में ही विराज रहे थे। धर्म की गंगा बह रही थी। उस काल उस समय में भगवान पार्श्वनाथ के शिष्य स्थविर भगवंत जहाँ भगवान महावीर स्वामी थे, वहाँ आये। वहाँ आकर भगवान महावीर से न अति निकट और न अति दूर खड़े रहकर इस प्रकार प्रश्न पूछने लगे- भगवन्! लोक असंख्यात प्रदेश वाला है, लोक सब द्रव्यों का आधारभूत है, तो क्या इस लोक में अनन्त रात्रि-दिवस रूप काल हो सकता है? क्योंकि लोक आधार रूप है, वह असंख्यात प्रदेशात्मक होने से छोटा है तथा रात्रि-दिवस उसका आधेय रूप है, वह अनंत होने से बड़ा है। इस प्रकार आधार छोटा और आधेय बड़ा कैसे हो सकता है? अतएव हे भगवन्! असंख्यात प्रदेशात्मक लोक में क्या अनंत रात्रि दिवस उत्पन्न हुए हैं, उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होंगे? तथा नष्ट हुए हैं, नष्ट होते हैं, नष्ट होंगे अथवा जब रात्रि-दिवस रूप काल अनंत हैं तो परिमित (नियत परिणाम वाले) रात्रि दिवस उत्पन्न हुए हैं, उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होंगे?

भगवन्-हाँ आर्यो! असंख्यात प्रदेशात्मक लोक में अनंत रात्रि-दिवस उत्पन्न हुए हैं, उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न होंगे तथा नष्ट हुए हैं, नष्ट होते हैं, नष्ट होंगे तथा नियत परिमाण वाले रात्रि-दिवस उत्पन्न हुए हैं, उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न होंगे तथा नष्ट हुए हैं, नष्ट होते हैं, नष्ट होंगे।

इसका आशय यह है कि जैसे एक मकान में हजारों दीपकों का प्रकाश व्याप्त हो

1. सौधर्म देवलोक - प्रथम देवलोक

जाता है, वैसे ही तथाविध स्वभाव होने से असंख्य प्रदेशात्मक लोक में अनंत जीव रहते हैं। वे साधारण जीव¹ शरीर की अपेक्षा से एक ही स्थान में, एक ही समय में, अनंत जीव उत्पन्न होते हैं और अनंत ही विनष्ट होते हैं। उस समय वह समयादि काल साधारण शरीर में रहने वाले अनंत जीवों में से प्रत्येक जीव में विद्यमान होता है। उसी प्रकार प्रत्येक शरीर में रहने वाले परित्त-परिमित जीवों में से प्रत्येक जीव में विद्यमान होता है।

इसका कारण यह है कि प्रत्येक जीव की स्थिति समयादि काल रूप है। अतः अनन्त जीवों में काल रूप स्थिति रहने से काल अनंत भी है तथा प्रत्येक शरीरी जीवों में भी काल रूप स्थिति होने से काल परिमित भी है।

इसी कारण असंख्यात प्रदेशी लोक में अनंत रात्रि-दिवस एवं परिमित रात्रि-दिवस उत्पन्न हुए हैं, उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न होंगे तथा नष्ट हुए हैं, नष्ट होते हैं, नष्ट होंगे।

पाशर्वापत्य स्थविर भगवन्त पुनः श्रमण भगवान महावीर से पूछते हैं- भगवन्! किस कारण से असंख्य प्रदेशात्मक लोक में अनंत रात्रि-दिवस उत्पन्न यावत् नष्ट होंगे?

भगवान महावीर फरमाते हैं- हे आर्यों! निश्चित ही आपके गुरु पुरुषादानीय² अर्हत् पार्श्वनाथ ने लोक को शाश्वत कहा है। उन्होंने इस लोक को अनादि, अनंत, परिमित, अलोक से घिरा हुआ, नीचे विस्तीर्ण, मध्य में संक्षिप्त और ऊपर विशालकाय तथा नीचे पल्यंकाकार, बीच में उत्तम वज्र के आकार का और ऊपर ऊर्ध्व मृदंग के आकार का कहा है। इस शाश्वत, अनादि, अनंत^{xxiii} आदि विशेषणों से अलंकृत लोक में साधारण जीव उत्पन्न होकर नष्ट होते हैं तथा परित्त जीव भी।

यह लोक अजीवों अर्थात् अपनी सत्ता को धारण करने, नष्ट होते तथा विभिन्न रूपों में परिणत होते लोक के अनन्यभूत पुद्गलादि से लोकित-निश्चित होता है तथा यह भूत आदि धर्म वाला लोक विशेष रूप से लोकित-निश्चित होता है तथा जो प्रमाण से लोकित-निश्चित होता है। क्या इसी प्रकार का लोक का स्वरूप है?

पाशर्वापत्य स्थविर- हाँ भगवन्! वही लोक है।

यहाँ पर भगवान महावीर ने जो लोकⁱⁱⁱ के बारे में फरमाया उसका यह आशय है कि जीव सन्तति का कभी भी अन्त नहीं होता, इसलिए सूक्ष्मादि साधारण शरीरों की

1. साधारण जीव- एक शरीर में अनन्त जीव
2. पुरुषादानीय - पुरुषों में माननीय/सम्माननीय/आदरणीय

अपेक्षा तथा सन्तति की अपेक्षा जीव अनन्त है। ये जीव समूह रूप होने से तथा असंख्येय प्रदेशों का पिण्ड रूप होने से धन कहलाते हैं। इस प्रकार ये अनंत जीव घन हुए। इसी रीति से प्रत्येक शरीरी जीवों का समूह परित्त जीव घन कहलाता है। इन अनन्त और परित्त जीवों के संबंध से रात्रि-दिवस रूप काल भी अनन्त और परित्त कहलाता है। इस प्रकार अनंत जीवरूप लोक के संबंध से रात्रि-दिवस रूप काल भी अनन्त हो जाता है और परित्त जीवरूप लोक के सम्बन्ध से रात्रि-दिवस रूप काल-विशेष भी परित्त-परिमित हो जाता है। अतः दोनों में परस्पर विरोध नहीं है।

इस प्रकार भगवान महावीर द्वारा पार्श्वपत्य-स्थविरो का समाधान हो जाने पर वे इस बात को जानने लगे कि भगवान महावीर स्वामी सर्वत्र है, सर्वदर्शी है।

तब उन्होंने भगवान महावीर को वन्दन-नमस्कार किया।* वन्दन-नमस्कार करके वे भगवान से इस प्रकार बोले- भगवन्! **चार्तुर्याम^{xxiv} धर्म के स्थान पर हम आपसे प्रतिक्रमण सहित पंच महाव्रत रूप धर्म को स्वीकार करके विचरण करना चाहते हैं।

भगवान ने फरमाया-देवानुप्रिय! तुम्हें जैसा सुख हो वैसा करो किन्तु शुभ कार्य में विलम्ब मत करो। तब उन्होंने भगवान महावीर से पंचयाम* धर्म स्वीकार किया।^{xxv}

कौन पहले कौन पीछे :

उस काल और उस समय में श्रमण भगवान महावीर स्वामी के शिष्य रोह नामक अणगार थे। वे रोह अणगार प्रकृति से अत्यन्त भद्र, कोमल, विनीत, उपशान्त, अल्पकषायी, * इससे पूर्व इन स्थविरो ने भगवान को बिना वन्दन-नमस्कार किये ही प्रश्न पूछ लिया, इससे लगता है कि उन स्थविरो को पहले यह ज्ञात नहीं था कि भगवान महावीर और भगवान पार्श्वनाथ एक ही परम्परा के तीर्थकर हैं।

जैन साहित्य का बृहद् इतिहास भाग 1 पृ. 197

* * सर्वथा प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान और बहिद्दादान का त्याग चातुर्याम धर्म है और सर्वथा प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन और परिग्रह से विरमण यह पंचयाम धर्म है। इनमें कोई अन्तर नहीं है। क्योंकि बहिद्दादान में मैथुन तथा परिग्रह दोनों का समावेश हो जाता है, भरत एरवत के प्रथम और अन्तिम तीर्थकर के समय पंचयाम धर्म तथा शेष बीच के 22 तीर्थकरों के समय तथा महाविदेह क्षेत्र में चातुर्याम धर्म होता है, जिसमें उभयकाल प्रतिक्रमण आवश्यक नहीं है। इसलिए स्थविरो ने प्रतिक्रमण सहित पंचयाम धर्म ग्रहण किया।

* इसके पश्चात् वे पार्श्वपत्य-स्थविर भगवन्त यावत् अन्तिम उच्छ्वास-निश्वास के साथ सिद्ध हुए यावत् सर्वदुःखों से रहित हुए। उनमें से कई स्थविर देवलोंकों में देव-रूप में उत्पन्न हुए।

गुरुभक्ति में निमज्जित¹ किसी को परिताप नहीं उपजाने वाले, विनय की साक्षात् प्रतिमूर्ति थे।

वे रोह अणगार ऊपर घुटने करके, नीचे सिर झुकाकर ध्यान रूपी कोटे में प्रविष्ट होकर संयम और तप से अपनी आत्मा को भावित करते हुए भगवान महावीर के सान्निध्य में समुपस्थित थे। उस समय रोह-अणगार के मन में कुछ जिज्ञासाएँ समुद्भूत हुईं। वे भगवान महावीर की पर्युपासना करते हुए भगवान महावीर से इस प्रकार बोले^{xxvi}-

रोह- भगवन्! पहले लोक है और पीछे अलोक है? अथवा पहले अलोक है, पीछे लोक है?

भगवान- रोह! लोक और आलोक पहले भी है और पीछे भी हैं। ये दोनों शाश्वत भाव है, अतएव इनमें आगे-पीछे का क्रम नहीं है। लोक और अलोक अनादिकालीन हैं। इन्हें किसी ने बनाया नहीं है, इसी कारण इनमें कोई क्रम नहीं है।

रोह- भगवन्! पहले जीव है, पीछे अजीव है या पहले अजीव है, पीछे जीव है?

भगवान- जीव और अजीव दोनों शाश्वत भाव है, इनमें पहले और पीछे का क्रम नहीं है।

रोह- भगवन्! पहले भव सिद्धिक^{**} है, पीछे अभवसिद्धिक है या पहले अभवसिद्धिक है, पीछे भव सिद्धिक है?

भगवान- इनमें पहले पीछे का क्रम नहीं है, क्योंकि ये शाश्वत भाव हैं।

रोह- भगवन्! पहले सिद्ध है, पीछे असिद्ध है या पहले असिद्ध है, पीछे सिद्ध है?

भगवान- ये शाश्वत भाव हैं, इनमें पहले और पीछे का क्रम नहीं है।

रोह- भगवन्! पहले सिद्ध है पश्चात् संसारी है या पहले संसारी है बाद में सिद्ध है?

भगवान- रोह! ये शाश्वत भाव है, इनमें पहले और पीछे का क्रम नहीं है।

रोह- भगवन्! पहले मुर्गी है, फिर अण्डा है या पहले अण्डा है, फिर मुर्गी है?

भगवान- हे रोह, वह अण्डा कहाँ से आया?

रोह- भगवन्! मुर्गी से।

भगवान- रोह! मुर्गी कहाँ से आयी?

रोह- भगवन्! अण्डे से।

भगवान- रोह! मुर्गी और अण्डा पहले भी है और पीछे भी है। ये दोनों शाश्वत भाव हैं, इनमें पहले और पीछे का क्रम नहीं है।

1. निमज्जित-लीन

* * भविष्य में जिनकी सिद्धि-मुक्ति होगी वे भव्य जीव भव-सिद्धिक होते हैं।

रोह- भगवन्! पहले लोकान्त हैं, पीछे अलोकान्त हैं या पहले अलोकान्त हैं, पीछे लोकान्त हैं?

भगवान- ये दोनों शाश्वत भाव होने से इनमें क्रम नहीं है।

रोह- भगवन्! पहले लोकान्त हैं फिर सातवाँ अवकाशान्तर है? अथवा पहले सातवाँ अवकाशान्तर है और पीछे लोकान्त है?

भगवान्- रोह! ये दोनों शाश्वत होने से इनमें पहले-पीछे का क्रम नहीं है।

इसी प्रकार रोह अणगार ने भगवान से लोकान्त-सप्तम तनुवात, लोकान्त-सप्तम घनवात, लोकान्त-सप्तम घनोदधि, लोकान्त-सप्तम पृथ्वी के विषय में प्रश्न किये। भगवान ने वही उत्तर दिया कि इनमें आगे पीछे का क्रम नहीं है, ये भी शाश्वत हैं।

इसके पश्चात् रोह अणगार ने भगवान से प्रश्न किया- अवकाशान्तर, वात, घनोदधि, पृथ्वी, द्वीप,, सागर, वर्षक्षेत्र, नारक आदि जीव, अस्तिकाय,¹ समय,² कर्म,³ लेश्या,⁴ दृष्टि,⁵ दर्शन,⁶ ज्ञान,⁷ संज्ञा,⁸ शरीर,⁹ योग,¹⁰ उपयोग,¹¹ द्रव्य,¹² प्रदेश,¹³ पर्याय,¹⁴ और ~~हि~~^{IV}क्या ये पहले है और लोकान्त पीछे है अथवा लोकान्त पहले है और ये सब पीछे है?

भगवान ने फरमाया कि ये सब शाश्वत होने से इनमें आगे-पीछे का क्रम नहीं है। इसी प्रकार रोह अणगार ने इन सबके साथ अलोकान्त का संयोग करके भी प्रश्न पूछा और भगवान ने वैसा ही उत्तर दिया।

इसके पश्चात् रोह अणगार ने सप्तम-अवकाशान्तर, सप्तम तनुवात, सप्तम घनवात, अतीत काल, अनागत काल और सर्वकाल के साथ उपर्युक्त सभी (अवकाशान्तर से लेकर काल तक) का संयोग करके प्रश्न किया कि कौन आगे है, कौन पीछे है?

भगवान ने सभी का यही उत्तर दिया कि ये सभी अनादि, शाश्वत हैं, इनमें आगे-पीछे का क्रम नहीं है।

भगवान के द्वारा बहुत ही सुंदर रीति से समाधान प्राप्त करके रोह अणगार अत्यन्त

-
1. अस्तिकाम - प्रवेशों का समूह
 2. समय - काल का सबसे सूक्ष्म हिस्सा
 3. कर्म - आठ प्रकार के कर्म
 4. लेश्या - जो आत्मा को अष्टविध कर्मों से मुक्त करती है।
 1. दृष्टि- तत्त्व विचारणा की रुचि
 2. दर्शन - सामान्य ज्ञान
 3. ज्ञान - जिससे जाना जाता है वह
 4. संज्ञा - आहारादि की संवेदना को संज्ञा कहते हैं।
 5. शरीर - जो जीर्ण-शीर्ण होता है।
 6. योग - मन, वचन, काया की प्रवृत्ति
 7. उपयोग - ज्ञान-दर्शन में होती हुई आत्मा की प्रवृत्ति
 8. द्रव्य - जो विशेष पर्यायों को प्राप्त करता है।
 9. प्रदेश - वह सूक्ष्म हिस्सा जिसका विभाग न हो सके।
 10. पर्याय - जो द्रव्य की तरह सदैव एक रूप में न रहकर बदलते रहते हैं।

आह्लाद भाव को प्राप्त हुए। उन्होंने भगवान के चरणों में निवेदन किया-भगवन्! यह इसी प्रकार है, भगवन् यह इसी प्रकार है। इस प्रकार निवेदन करके तप और संयम से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरण करने लगे।

लोक का आधार क्या ?

तत्पश्चात् गणधर ज्येष्ठ श्री इन्द्रभूति गौतम के मन में जिज्ञासाएँ उद्भूत हुईं। उन्होंने श्रमण भगवान महावीर स्वामी से निवेदन करके इस प्रकार पृच्छा की- भगवन्! लोक की स्थिति कितने प्रकार की कही गयी है ?

गौतम स्वामी के इस प्रश्न पूछने का आशय यह है कि लोक किस पर टिका हुआ है, क्योंकि कई धर्मानुयायी पृथ्वी को शेष नाग के फण पर टिका हुआ मानते हैं, कई लोग पृथ्वी को गाय के सींग पर टिका हुआ मानते हैं, कई दार्शनिक लोग पृथ्वी को सत्य पर आधारित मानते हैं, लेकिन इससे गौतम स्वामी को संतुष्टि नहीं हुई तो उन्होंने भगवान से पूछ ही लिया कि लोक की स्थिति कितने प्रकार की है अर्थात् लोक किस पर टिका हुआ है ?

भगवान ने फरमाया- गौतम! लोक की स्थिति आठ प्रकार की है-

1. आकाश के आधार पर तनुवात (पतली हवा)
2. तनुवात के आधार पर घनवात (घनीभूत हवा)
3. घनवात के आधार पर घनोदधि (घनीभूत पानी)
4. घनोदधि के आधार पर पृथ्वी
5. पृथ्वी के आधार पर त्रस-स्थावर जीव
6. जीवों के आधार पर अजीव (शरीरादि पुद्गल)
7. जीव कर्म के आधार पर
8. अजीव जीवों द्वारा संग्रहीत (बद्ध) हैं और जीव अजीवों द्वारा संग्रहीत हैं।

गौतम स्वामी- भगवन्! लोक-स्थिति आठ प्रकार की कहने से क्या तात्पर्य है ?

भगवान- गौतम! जैसे कोई पुरुष चमड़े की मशक को वायु से भरकर फुलावे, फिर उस मशक का मुख बांध दें। उसके बाद उस मशक के बीच के भाग में गांठ बांध दें। गांठ बांधने के बाद उस मशक का मुँह खोल दें और उसके भीतर की हवा निकाल दें। हवा निकलने के बाद उस मशक के ऊपरी खाली भाग में पानी भरे और उस मशक का मुँह बन्द कर दें। तत्पश्चात् उस मशक की बीच की गांठ खोल दें तो गौतम! वह पानी क्या उस हवा के ऊपरी भाग में रहेगा अर्थात् हवा के आधार पर रहेगा ?

गौतम- हाँ भगवन्! रहेगा।

भगवान- हे गौतम! जैसे पानी हवा के आधार से रहता है, उसी प्रकार आकाश के आधार पर सभी रहते हैं। मात्र आकाश अपने आप पर टिका है। बाकी सारे द्रव्य उपर्युक्त प्रकार से आश्रित है।

भगवान का यह कथन व्यवहार नय की अपेक्षा सकर्मक जीवों के लिए है। यहाँ जीव कर्मों के आधार पर टिके हैं, ऐसा कहने का आशय यह है कि जीव नरकादि भावों से प्रतिष्ठित है।

भगवन्! क्या जीव और पुद्गल परस्पर सम्बद्ध है, परस्पर एक-दूसरे से स्पृष्ट है? परस्पर गाढ़ सम्बद्ध मिले हुए है, परस्पर स्निग्धता-चिकनाई से प्रतिबद्ध है अथवा परस्पर घट्टित-गाढ़ होकर रहे हुए हैं?

भगवान- हाँ गौतम! जीव और कर्म पुद्गल इसी तरह परस्पर रहे हुए हैं।

गौतम स्वामी- भगवन्! आप ऐसा किस कारण फरमाते हैं?

भगवान- गौतम! जैसे कोई तालाब जल से लबालब भरा छलक रहा हो, उस तालाब में छिद्रों वाली नौका डाल दे तो वह नौका उन छिद्रों द्वारा पानी से भरते-भरते जल में डूब जाती है और तालाब के तल भाग में जाकर बैठ जाती है। इस प्रकार जैसे नौका और तालाब का पानी एकमेक हो जाता है, वैसे ही जीव और पुद्गल परस्पर सम्बद्ध एवं एकमेक होकर रहते हैं।

भगवान के द्वारा फरमाये गये समाधान से गौतम स्वामी अतीव आह्लादित हुए और वे अपनी जिज्ञासा शांत होने पर तप-संयम से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरण करने लगे।²⁷

इस प्रकार भगवान महावीर^v शासन की भव्य प्रभावना करते हुए विचरण कर रहे थे, तभी वर्षावास का समय समीप आ गया। प्रभु यह वर्षावास भी राजगृह नगर में करने हेतु पधार गये।

राजगृह नगर क्षेत्र की महान् पुण्यवानी कि प्रभु पुनः राजगृह नगर में पावस-प्रवास करने पधारे और वहाँ की जनता उसका अत्यंत लाभ लेने लगी। राजगृह नगर में धर्म का अद्भुत मेला लग गया। अनेक भव्यात्माएँ अपने जीवन को सजाने-सँवारने हेतु निरन्तर भगवान के पावन चरणों में जा रही हैं। एक ऐसा अलौकिक दृश्य वहाँ का बन गया कि देवगण भी उसका लाभ ले रहे थे। जीवन के बहुमूल्य क्षणों को प्रभुभक्ति में लगा रहे थे। प्रभुभक्ति में निमज्जित बनकर अपूर्व भक्तिरस में डूबकर अपने आपको समत्व की उच्च

भूमिका पर समारूढ़ कर रहे थे।

टिप्पण-

अनुत्तर ज्ञानचर्या का दसवाँ वर्ष

1. वैभारगिरि-यह पर्वत राजगृह के पाँच पर्वतों में एक है। महावीर के समय में इसके पास पाँच सौ धनुष लम्बा एक गरम पानी का हृद था, जिसका जैन सूत्रों में 'महातपोपतीर' नाम से उल्लेख हुआ है और उसे 'प्रस्रवण' अर्थात् स्रोत कहा है। आज भी उसके पास गर्म जल के कतिपय कुण्ड हैं जो भीतर के उष्ण जलस्रोतों से हर समय भरे रहते हैं।

श्रमण भगवान महावीर/वही/पृ.395-96

2. संलेखना-संलेखना शब्द सत् और लेखना इन दो शब्दों के संयोग से बना है। सत् का अर्थ सम्यक् और लेखना का अर्थ तनुकरण अर्थात् कृश करना है।

बाह्य शरीर और आभ्यन्तर कषायों के कारणों को क्रमशः भली प्रकार क्षीण करना संलेखना है। इस मरणान्तिक संलेखना को प्रीतिपूर्वक सेवन करना चाहिए। आचार्य पूज्यपाद ने संलेखना की परिभाषा बनाई है- सम्यक् प्रकार से काय और कषाय की लेखना करना संलेखना है। अर्थात् बाह्य संलेखना शरीर की और आभ्यन्तर संलेखना कषायों की भलीभांति लेखना करना संलेखना है। तात्पर्य यह है कि कदलीघात की तरह एकदम नहीं किन्तु दुर्भिक्ष आदि के उपस्थित होने पर धर्मरक्षार्थ अन्तरंग और बहिरंग परिग्रह का त्याग करके जीवनमरण की आशा से रहित होकर क्रमशः कृश करते हुए शरीर को छोड़ना संलेखना है।

संलेखना के पात्र मुनि और श्रावक दोनों ही होते हैं। बाह्य और आभ्यन्तर या द्रव्य और भाव के भेद से संलेखना के दो भेद हैं- द्रव्य संलेखना और भाव संलेखना। क्रोधादि कषाय रहित अनन्त ज्ञानादि गुण लक्षण परमात्म पदार्थ में स्थित होकर रागादि विकल्पों को कृश करना भाव संलेखना है और उस भाव संलेखना की प्राप्ति के लिए कायक्लेश रूप अनुष्ठान करना, भोजन आदि का त्याग करके शरीर को कृश करना द्रव्य संलेखना है।

समाधिमरण की आवश्यकता/डा. सुरेश सिसोदिया/पृ.34-35

3. लोक-लोक्यते इति लोकः।

(उत्तरा. चूर्ण/पृ.176)

लोक्यते-दृश्यते केवलालोकेनेति लोकः (स्था.टीका/पत्रांक 13) जो देखा जाता है वह लोक है।

लोकान् पातीति लोक :

(आ.टी.पत्रांक 21)

प्राणी जिसमें समाते हैं, वह लोक है।

लोक्यते-प्रमीयते इति लोक :

जिसका माप किया जाता है, वह लोक है।

(स्था.टीका/पत्रांक 36)

4. काल : जो द्रव्यों को नई नई पर्यायों में बदलने में सहयोग दे, उसे काल कहते हैं। इसके नौ भेद हैं-

1. द्रव्यकाल-वर्तना अर्थात् नये को पुराना करने वाला काल द्रव्यकाल कहा जाता है।

2. अद्वाकाल-अढ़ाई द्वीप में सूर्य और चन्द्र की गति से निश्चित होने वाला काल अण्डाकाल है।

3. यथायुष्ककाल-देव आदि की आयुष्य के काल को यथायुष्ककाल कहते हैं।

4. उपक्रमकाल-इच्छित वस्तु को दूर से समीप लाने में लगने वाला समय उपक्रमकाल है।

5. देशकाल-इष्ट वस्तु की प्राप्ति रूप अवसर रूपी काल देशकाल है।

6. मरणकाल-मृत्यु रूप काल मरणकाल है।

7. प्रमाणकाल-दिन, राशि, मुहूर्त वगैरह किसी प्रमाण से निश्चित होने वाला काल प्रमाणकाल है।

8. वर्णकाल-काले रंग को वर्णकाल कहते हैं अर्थात् वह वर्ण की अपेक्षा काल है।

9. भावकाल-औदयिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक, औपशमिक और पारिणामिक भावों के सादि सान्त आदि भेदों वाले काल को भावकाल कहते हैं।

विशेषावश्य भाव्य गाथा 2030

5. भगवान महावीर-भगवान महावीर के प्रसिद्ध नाम-1. वर्धमान 2. महावीर 3. महाश्रमण 4. चरम तीर्थकृत् 5. सन्मति 6. महतिवीर 7. विदेहदिन्न 8. वैशालिक 9. ज्ञातपुत्र 10. देवार्य 11. दीर्घतपस्वी आदि।

संदर्भ सूची

अनुत्तर ज्ञानचर्या का छठा वर्ष

1. (क) दशवैकालिक सूत्र/द्वितीय चूलिका/गाथा5/टीकाकार-उपाध्याय श्री आत्माराम जी महाराज/प्रकाशक श्री कौशिक प्रिंटिंग प्रेस महेन्द्रगढ़/संवत् 1989/पृष्ठ 1044
(ख) उत्तराध्ययन सूत्र/अध्ययन 2 वही
(ग) बृहत्कल्प/उद्देशक 1/सूत्र 36-37
(घ) आरांड्ग सूत्र/द्वितीय श्रुत स्कन्ध/अध्ययन3/उद्देशक1 वही
(ङ) निशीथ सूत्र/उद्देशक 10
2. (क) दशवैकालिक/अध्ययन 5/उद्देशक 2/गाथा 25-26
(ख) दशवैकालिक चूर्णि/अध्ययन 5/उद्देशक 2/जिनदासमहत्तर/प्रकाशक-श्री ऋषभदेव केशरीमल जैन श्वेताम्बर संस्था-इन्दौर/सन् 1933/पत्रांक 193-195
3. श्रमण भगवान महावीर/पंडित श्री कल्याणविजय जी गणि/प्रकाशक-शारदा बेन चिमनभाई एज्युकेशनल रिसर्च सेन्टर शाहीबाग, अहमदाबाद/प्रथम आवृत्ति सन् 2002/पृष्ठ 92
4. North Indian/Robertson Mcart a Niles Verlag Printed by Gorejskitisk Kraj Jugoslavija/First Edition 1990/page 93-96
5. तिषष्टि शलाक पुरुष चरित्र/गुजराती अनुवाद/पर्व 8-9/सर्ग 3/लेखक श्री हेमचन्द्राचार्य/

- प्रकाशक-श्री जैन धर्म प्रसारक सभा, भावनगर/विक्रम संवत् 1958/पृष्ठ 69
6. भगवान पार्श्व एक समीक्षात्मकाध्ययन/लेखक-श्री देवेन्द्रमुनि शास्त्री प्रकाशक-श्री वर्धमान श्वे. स्थानकवासी जैन श्रावक संघ जैन साधना सदन, 259 नाना पेठ, पूना-2/पृष्ठ 77-79
 7. North Indian / Page 93-96
 - 8-13. उपासक दशाङ्ग सूत्र/अध्ययन 3/अभयदेव वृत्ति/वही
 14. आचाराङ्ग/प्रथम श्रुतस्कन्ध/अध्ययन 2/उद्देशक1/सूत्र 63-68
 15. Uttaradhyaya Sutra/ K C Lalwani / Page 87 /वही
 16. प्रश्नव्याकरण सूत्र/श्रुतस्कन्ध 1/अध्ययन 3/सूत्र 77/अभयदेव वृत्ति/वही
 17. उपासकदशाङ्ग सूत्र/अध्ययन 3/अभयदेव वृत्ति/वही
 18. वही
 19. उपासकदशाङ्ग सूत्र/अध्ययन 4/अभयदेव वृत्ति/वही
 20. वही
 21. भगवती सूत्र/शतक 11/उद्देशक 12/वही
 22. (क) जीवाजीवाभिगम/प्रथम प्रतिपत्ति/वही
(ख) प्रज्ञापना सूत्र/चतुर्थ पद/वही
 23. उत्तराध्ययन सूत्र/अध्ययन 24/वही
 24. उत्तराध्ययन सूत्र/अध्ययन 36/वही
 - 25-26. उपासकदशाङ्ग सूत्र/अध्ययन 5/अभयदेववृत्ति/वही
 27. राजगृह के पास विपुलाचल पर्वत के समीप भगवान ने सबसे अधिक प्रवचन दिए। महावीर की आत्मकथ/लेखक-नन्दलाल जैन/पृष्ठ 10
 28. वर्तमान में जो गुणावा है वही उस समय में गुणशील चैत्य था, वह नवादा स्टेशन से लगभग 3 मील पर है। श्रमण भगवान महावीर/पंडित श्री कल्याण विजय जी गणि/पृष्ठ 373/वही
 29. औपपातिक सूत्र/अभयदेव वृत्ति/वही
 30. भारत के नगर/Koratoraya A/रादुगा प्रकाशन, 17 जूबोव्स्की बुलवार, मास्को, सोवियत संघ/सन् 1984/पृष्ठ 47
 31. द्रष्टव्य जैन नीति-शास्त्र एक परिशीलन/आचार्य देवेन्द्र मुनि/प्रकाशक-सुपर फाईन कम्पोजर 208 एम.जी.रोड़, ए-7 अवागढ़ हाऊस, आगरा 2/सन् 1988 पृ. 95-134
 32. द्रष्टव्य : महावीर युग की प्रतिनिधि कथाएँ/श्री देवेन्द्र मुनि शास्त्री/श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय, शास्त्री सर्कल, उदयपुर/सन् 1975/पृ. 252
 33. ऋषभदेव एक परिशीलन/आचार्य श्री देवेन्द्र मुनिजी/प्रकाशक-श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय, शास्त्री सर्कल, उदयपुर/प्र. सं. सन् 1967/पृ. 47
 34. साहित्य और संस्कृति/आचार्य श्री देवेन्द्र मुनिजी म.सा./प्रकाशक-मानव मंदिर मुद्रणालय, वाराणसी/सन् 1970/पृ. 194-203

35. समस्या और समाधान/महोपाध्याय चन्द्रप्रभ सागर/प्रकाशक-श्री जीतयशा श्री जैन प्रकाशन, कलकाता/सन् 1986/पृष्ठ 7
36. भगवान महावीर आधुनिक संदर्भ में/डॉ. नरेन्द्र भानावत/पृ. 22-23 वही
37. औपपातिक सूत्र/श्री अभयदेव वृत्ति/वही
38. तुलनात्मक अध्ययन कीजिए-जैन योग ग्रन्थ चतुष्टय/आचार्य श्री हरिभद्र सूरि/सम्पादक श्री छगनलाल शास्त्री/प्रकाशक-मुनि श्री हजारीमल स्मृति प्रकाशन, पीपलिया बाजार, ब्यावर/सन् 1982/पृ. 121
39. जैन धर्म/राजेन्द्र मुनि/प्रकाशक श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय, शास्त्री सर्कल, उदयपुर विक्रम सं. 2038/पृ. 114-15
40. जैनागम साहित्य मनन और मीमांसा/लेखक-श्री देवेन्द्र मुनि शास्त्री/प्रकाशक श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय, उदयपुर (राज.) पृष्ठ 634-635
41. अन्तकृतदशाङ्ग/अभयदेववृत्ति/षष्ठ वर्ग
42. धर्म संग्रह/द्वितीय भाग/महोपाध्याय श्री यशोविजय जी/पृष्ठ 338
43. धर्म संग्रह/प्रथम भाग/महोपाध्याय श्री यशोविजय जी/पृष्ठ 171
44. आचाराङ्ग सूत्र/प्रथम सूत्र स्कन्ध/अध्ययन 4/उद्देशक 2/वही
45. अन्तकृतदशाङ्ग/अभयदेव वृत्ति/षष्ठ वर्ग
46. अन्तकृतदशाङ्ग/अभयदेव वृत्ति/षष्ठ वर्ग/अध्ययन 4/वही
47. वही/अध्ययन 5
48. नायाधम्मकहाओ/अध्ययन 13/अभयदेव वृत्ति/वही

अनुत्तर ज्ञानचर्या का सातवाँ वर्ष

1. अन्तकृत दशा सूत्र/अभयदेव वृत्ति/षष्ठ वर्ग/वही
2. तीर्थंकर चारित्र/भाग 3/वही
3. त्रिषष्टि शलाका पुरुष चारित्र/श्री हेमचन्द्राचार्य/पृष्ठ 199/वही
4. णमोकार महामंत्र/पंडित रतन चन्द भारिल्ल/पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, ए-4 बापूनगर, जयपुर/सन् 1988/पृष्ठ 51
5. (क) अतीत से वर्तमान/धनरूपमल नागौरी/श्री महाकौशल जैन श्वे. मूर्तिपूजक संघ/सन् 1980/पृ. 56
(ख) आगम एक परिचय/युवाचार्य मधुकर मुनि/श्री आगम प्रकाशन समिति पीपलिया बाजार, ब्यावर/विक्रम संवत् 2063/पृष्ठ 14
6. त्रिषष्टि शलाका पुरुष चारित्र/पृष्ठ 198/वही
7. भगवान महावीर एक अनुशीलन/पृष्ठ 437/वही
8. त्रिषष्टि शलाका पुरुष चारित्र/पृ. 199/वही

9. द्रष्टव्य-चउपन्न महापुरिसचरियं/वही
10. आदर्श कन्या/उपाध्याय अमर मुनि/प्रकाशक-सन्मति ज्ञान पीठ, लोहामंडी, आगरा/सन् 1994/पृष्ठ 26-27
11. त्रिषष्टि शलाका पुरुष चारित्र/पृष्ठ 199-203/वही
12. त्रिषष्टि शलाका पुरुष चारित्र/पृष्ठ 203-204/वही
13. मगध का गौरव पुरुष/आ. देवेन्द्र मुनि/श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय, गुरु पुष्कर मार्ग, उदयपुर/सन् 1996/पृष्ठ 140-152
14. वही/पृष्ठ 218-225
15. त्रिषष्टि शलाका पुरुष चारित्र/पृष्ठ 199-203/वही
16. त्रिषष्टि शलाका पुरुष चारित्र/पृष्ठ 203-204/वही
17. (क) त्रिषष्टि शलाका पुरुष चारित्र/पृष्ठ 204-205/वही
(ख) महावीर चरित्र/वही
18. (क) जैन कथाएँ/भाग 38/श्री पुष्कर मुनिजी म.सा./श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय शास्त्री सर्कल, उदयपुर/सन् 1978/पृष्ठ 42-51
(ख) योग शास्त्र/स्वोपज्ञ वृत्ति/1/30/आ. हेमचन्द्राचार्य/पृष्ठ 91-95
19. (क) श्री तिलोक काव्य कल्पतरु/भाग 2/पूज्यपाद श्री तिलोक ऋषि जी महाराज/पृष्ठ 194-195/प्रकाशक श्री रत्न जैन पुस्तकालय, अहमदनगर
(ख) कैसे फिसलता है मन?/आ. नानेश/प्रकाशक-श्री अ.भा. साधुमार्गी जैन संघ, समता भवन, बीकानेर (राज.)/पृष्ठ 21-29
20. वही
21. भो देवाणुप्पिय! कीस संतावमुव्वहसि? जइविय सम्मतलाभाओ पुव्वमेव निबद्धाऊति नरए निवडिस्ससि तहावि लद्धं तुमए लहिअव्वं, जओ स्वाइगसम्मदिट्ठी तुमं आगमिस्साए य उस्सप्पिणीए ततो उवट्ठिता पउमनाभनामो पढमत्तित्थयरो भविस्ससि। महावीर चारियं वही
22. तुलना कीजिए-जैन दर्शन स्वरूप और विश्लेषण/देवेन्द्र मुनि शास्त्री/प्रकाशक श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय, उदयपुर/सन् 1975/पृष्ठ 190
23. जैन कथा साहित्य की विकास यात्रा/उपाचार्य श्री देवेन्द्र मुनि/प्रकाशक-तारक गुरु जैन ग्रन्थालय उदयपुर/सन् 1989/पृष्ठ 129
24. अहिंसा सर्वभूतानां कर्मणा मनसा गिरा। वायुपुराण/पूर्वार्द्ध/18,13
25. न तेन आरियो होति येन पाणानि हिंसति।
अहिंसा सव्वपाणानां आरियो ति पवुच्चति।। धम्मपद/19,15
26. जैन कथाएँ/भाग 38/पृष्ठ 13-19/वही
त्रिषष्टि शलाका/पुरुष चारित्र/पर्व 10-9, 48-50
27. सन्मति महावीर/श्री सुरेश मुनि/प्रकाशक-लोहा मण्डी आगरा/पृ. 125

28. द्रष्टव्य :
 (क) हमारा इतिहास/प्रकरण आठ/साध्वी चन्दना/प्रकाशक-लोहामण्डी आगरा/पृष्ठ 33
 (ख) महावीर चरियं/8 वाँ प्रस्ताव/पृष्ठ 334, 11
29. द्रष्टव्य : भगवान महावीर और उनका मुक्ति-मार्ग/रिषभ दास रांका/प्रकाशक
 भारत जैन महामंडल/सन् 1953/पृ. 32
30. श्रमण भगवान महावीर तथा मांसाहार परिहार/हीरालालजी दुग्ड़/प्रकाशक-श्री
 आत्मा नन्द जैन महासभा पंजाब/वीर निर्वाण सं. 2490/पृ. 5-6
31. भगवान महावीर जीवन और सिद्धान्त/विजय कुमार जी/पृ. 17
32. अहिंसा विवेक/आचार्य श्री जिन चन्द्र सूरि/प्रकाशक-कमला पॉकेट बुक्स, 12
 भगत सिंह मार्ग, नई दिल्ली/पृ. 37
33. अनुतरौपपातिक/प्रथम वर्ग/प्रथम अध्ययन/अभयदेव वृत्ति/वही
34. अनुतरौपपातिक/द्वितीय वर्ग/अध्ययन 1-13
35. मगध का गौरव पुरुष/आ. देवन्द्र मुनि/पृष्ठ 227/वही
36. जैन कथाएँ/भाग 38/वही/पृ. 52-62
37. वही/पृ. 53-74
38. सूत्रकृताङ्ग निर्युक्ति, टीका सहित, श्रु. 2/अ.6/प.136
39. भगवान महावीर और उनका साधना मार्ग/रिषभदास रांका/प्रकाशक-जमना
 लाल जैन, वर्धा/सन् 1953/पृ. 25
40. भगवान महावीर जीवन और दर्शन/श्री राजेन्द्र मुनि/प्रकाशक-श्री तारक गुरु जैन
 ग्रन्थालय, उदयपुर/सन् 1974/पृ. 81
41. जैन धर्म भगवान महावीर जीवन और दर्शन/चिमन भाई सी. शाह/प्रकाशक
 भारत जैन महामंडल, बम्बई/सन् 1975/पृ. 21-25
42. भगवान महावीर जीवन और दर्शन/श्री राजेन्द्र मुनि/प्रकाशक-श्री तारक गुरु जैन
 ग्रन्थालय, शास्त्री सर्कल, उदयपुर/पृ. 71
43. द्रष्टव्य : जैन धर्म प्रागैतिहासिक परम्परा/डॉ. धरमचन्द्र जैन/प्रकाशक-भारत
 जैन महामंडल, बम्बई/सन् 1975/पृ. 18
44. द्रष्टव्य : जैन धर्म अनेकान्त दर्शन/पं. सुखलालजी/प्रकाशक-भारत जैन महामंडल,
 बम्बई/सन् 1974/पृ. 27
45. जैन कथा/भाग 38/पृ. 30/वही
46. (क) जैन कथाएँ/भाग 38/पृष्ठ 36/वही
 (ख) विजय के ऊपर विजय/आ. श्री नानेश/प्रकाशक-अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन
 संघ/सन् 2010/पृ. 91-103
 (ग) भारतीय इतिहास एक दृष्टि/पृष्ठ 67

- (घ) सूत्रकृताङ्ग निर्युक्ति, चूर्णि/टीका/श्रुत. 2/अध्ययन 6/वही
 (ङ) त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र/10/7/177-179
47. चंदावेज्जयं पइण्णयं/अनुवादक-सुरेश सिसोदिया/आगम अहिंसा समता एवं प्राकृत संस्थान, उदयपुर/पृ. 31/सन् 1991
48. जैन धर्म : जीवन धर्म/कर्नल दलपतसिंह बया 'श्रेयस'/आगम अहिंसा समता एवं प्राकृत संस्थान, उदयपुर/सन् 2004/पृ. 24-25
49. (क) त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र/10/7/पृ. 160-61/वही
 (ख) जैन कथाएँ/भाग 38/पृ. 28-36
50. (क) सूत्रकृतांग सूत्र/आ. शीलांक वृत्ति/पत्रांक 388-95
 (ख) जैन साहित्य का वृहद् इतिहास/भाग 1/पृ. 165
51. सूत्रकृतांग सूत्र/आ. शीलांक-वृत्ति/पत्रांक 394-95/वही
52. (क) भगवान महावीर एक अनुशीलन/आ. श्री देवेन्द्र मुनि जी/पृ. 451/वही
 (ख) जैन कथाएँ/भाग 38/पृ. 39/वही
53. (क) धर्म ध्वजी सदालुब्ध : छाद्मिको लोकदम्भकः।
 वैडाल वृत्तिका : ज्ञेय हिंस्रः सर्वा भिसंधिकः
ये बकव्रतिनो विप्राः ये च मार्जारलिङ्गिनः
 ते पतन्त्यन्धतामिस्त्रे, तेन पापेन कर्मणा॥
 न वार्य्यपि प्रयच्छेत्तु वैडाल व्रति के द्विजे।
 न बकव्रतिके विप्रेनावेद विदि धर्म वित्॥.....।
 मनुस्मृति अ. 4 श्लोक 95-98
- (ख) उत्तराध्ययन/अध्ययन 14/गाथा 12/वृहद्वृत्ति टीका
54. श्रमण भगवान महावीर/प. श्री कल्याण विजयजी गणि/पृ. 100/वही
55. टीकाकार आचार्य शीलांक ने 2/6/49 में इन्हें एकदण्डी कहा है। डॉ. हरमन जेकोबी ने अपने अंग्रेजी अनुवाद (S B E..... V D X V P 417 पृ) में इन्हें वेदान्ती कहा है।
56. सूत्रकृतांग सूत्र/आ. शीलांक वृत्ति/पत्रांक 401-404
57. (क) त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र/10/7/पृ. 161-62
 (ख) श्रमण भगवान महावीर/पं. श्री कल्याण- विजय जी गणि/पृ. 100
58. द्रष्टव्य : जैन कथाएँ/भाग 38/40-41
59. द्रष्टव्य : नायाधम्मकहाओ/अभयदेव वृत्ति/1-1/वही
60. भरतेश्वर बाहुबली वृत्ति/पत्र 38
61. त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र/10-11/पृष्ठ 243/वही
62. त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र/पृष्ठ 252/वही

63. (क) त्रिषष्टि शलाका पुरुष चारित्र/वही
(ख) तीर्थकर चारित्र/भाग 3/पृष्ठ 330
64. (क) धुल गये खून के हाथ/आ. श्री नानेश/श्री अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ, बीकानेर/सन् 2010/पृष्ठ 78-87
(ख) उत्तराध्ययन चूर्ण/अध्ययन 8
65. त्रिषष्टि शलाका पुरुष चारित्र/10-11/पृ. 255/वही
66. वही
67. जं गिज्जइ पुव्वंचिय पुण पुणो सव्वकव्वबंधेसु धुवयंति तमिह तिविहं छप्पायं चउपयं दुपय11/बृहद्दवृत्ति/पत्र 289
68. त्रिषष्टि शलाका पुरुष चारित्र/10-11/पृ. 255/वही
- 69-82. काव्यमय उत्तराध्ययन-सूत्र/अध्याय 8/मुनि वीरेन्द्र/ श्री अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ, बीकानेर/सन् 2005/पृ. 55-60
83. मगध का गौरव पुरुष/आ. देवेन्द्र मुनि/पृ. 226-230/वही
84. त्रिषष्टि शलाका पुरुष चारित्र/10/12/पृ. 267
85. भरतेश्वर बाहुबली वृत्ति/पत्र 38-40
86. अनुत्तरौपपातिक सूत्र/वर्ग 2/अध्ययन 1-13 तक
87. अन्तकृद्दशांग/वर्ग 7/अध्ययन 1-13/व्याख्याता-आ. श्री नानेश/प्रकाशक अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ/सन् 1985
88. चउसरणपइण्णयं/डॉ. सुरेश सिसोदिया/मानमल कुदाल/आगम अहिंसा समता एवं प्राकृत संस्थान, उदयपुर/गाथा 18/सन् 1999/पृ. 63
89. महापच्चक्खण पइण्णयं/गाथा 136/सम्पादक-सुरेश सिसोदिया/आगम अहिंसा समता एवं प्राकृत संस्थान, उदयपुर/सन् 1991-1992/पृ. 33

अनुत्तर ज्ञानचर्या का आठवाँ वर्ष :

1. तुलना कीजिए : भगवान महावीर एक परिचय/गणेश मुनि शास्त्री/प्रकाशक अमर जैन साहित्य संस्थान, कोलपोल, उदयपुर/सन् 1974/पृ. 33
2. महावीर दर्शन/श्री भुवन विजय जी म.सा./श्री जैन श्वेताम्बर मूर्तिपूजक संघ, कटक विक्रम सं. 2031/पृ. 59
3. तुलना कीजिए : विश्व-बन्धुत्व वर्धमान/श्री सुकन मुनि/प्रकाशक-श्री मरुधर केसरी साहित्य प्रकाशन समिति, ब्यावर/सन् 1975/पृ. 48
4. द्रष्टव्य : भगवान महावीर की बोधकथाएँ/उपा. श्री अमर मुनि जी म.सा. प्रकाशक-सन्मति ज्ञान पीठ, आगरा/सन् 1975/पृ. 57
5. श्रीमद्भजवाहराचार्य : जीवन और साहित्य/डॉ. इन्द्रा जैन/प्रकाशक-आगम, अहिंसा समता

- एवं प्राकृत संस्थान, उदयपुर/सन् 2001/पृ. 103
6. देखिए : रामायण रहस्य/योगेश्वर मनोहर हरकरे/प्रकाशक-वैदिक प्रकाशन, 85, रमणा मारूति नगर, नागपुर/सन् 1996/पृ. 218
 7. तुलना कीजिए : (क) जैन सिद्धान्त बोल संग्रह/प्रथम भाग 1/संग्रहकर्ता भैरोदान सेठिया/प्रकाशक-सेठिया जैन पारमार्थिक संस्था, बीकानेर/विक्रम संवत् 1997/पृ. 214-15
(ख) जीतकल्प सूत्र/मुनि पूण्य विजयजी/गाथा 214
(ग) भगवती सूत्र, शतक 2 उद्देशक 5
 8. संवेगो-भवभयं मोक्षाभिलाषो वा
(क) भगवती सूत्र/अभयदेव वृत्ति/पत्रांक 549
 9. (क) भगवती सूत्र/अभयदेव वृत्ति/पत्रांक 552
(ख) श्रमण भगवान महावीर/पं. श्री कल्याण विजयजी गणि/पृ. 102/वही
 10. (क) भगवती सूत्र/शतक/24
(ख) प्रज्ञापना सूत्र/आ. मलयगिरि/पद 4
(ग) जीवाजीवाभिगम सूत्र/आ. मलयगिरि/प्रथम प्रतिपत्ति
(घ) बृहत् संग्रहणी/मलयगिरि वृत्ति/प्रकाशक-श्री जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर, विक्रम संवत् 1973/गाथा 132/पृ. 149
 11. वियाहपण्णत्ति सत्तं (मूलपाठ-टिप्पण) भाग 2/पृष्ठ 557
 12. भगवती सूत्र/अभयदेव वृत्ति/पत्रांक 552
 13. महासती मृगावती/मुनि श्री कल्याण ऋषिजी म.सा./श्री अमोल जैन ज्ञानालय, धूलिया/सन् 1960/पृ. 61-63
 14. सत्यशील की गौरवगाथाएँ/राजेन्द्र मुनि शास्त्री/श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय शास्त्री सर्कल, उदयपुर (राज.)/सन् 1985/पृ. 122
 15. महासती मृगावती/मुनि श्री कल्याण ऋषिजी म.सा./श्री अमोल जैन ज्ञानालय, धूलिया/पृष्ठ 67-68
 16. (क) त्रिषष्टि शलाका पुरुष चारित्र/आ. हेमचन्द्र/पृष्ठ 173
(ख) भगवान महावीर एक अनुशीलन/आ. देवेन्द्रमुनि/पृष्ठ 455/वही
 17. त्रिषष्टि शलाका पुरुष चारित्र/आ. हेमचन्द्र/10/8/पृष्ठ 174/वही
 18. (क) आवश्यक चूर्ण/प्रथम भाग/पृष्ठ 91
(ख) जैन धर्म मौलिक इतिहास/प्रथम भाग/तीर्थकर खण्ड/आ. श्री हस्तीमलजी म.सा./प्रकाशक-सम्यक् ज्ञान प्रचारक मण्डल, बापू बाजार, जयपुर/सन् 2002/पृष्ठ 627

अनुत्तर ज्ञानचर्या का नौवाँ वर्ष

1. श्रमण भगवान महावीर/पं. श्री कल्याण विजयजी गणि/वही/पृष्ठ 317
2. अंगुली से उपजा उजाला/आ. श्री नानेश/प्रकाशक-श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ, समता भवन, बीकानेर/सन् 2010/पृष्ठ 15
3. अनुत्तरौपपातिक/अभयदेव वृत्ति/वर्ग 3
4. द्रष्टव्य : समवायांग सूत्र/अभयदेव वृत्ति 1/9-8
5. द्रष्टव्य : आवश्यक/मलयगिरि/खण्ड 2/अध्याय 1
6. (क) आवश्यक निर्युक्ति/गाथा 1603
(ख) प्रवचन सारोद्धार वृत्ति/आ. सिद्धसेन
(ग) श्राद्ध प्रतिक्रमण वृत्ति/आर्य देवेन्द्र कृत
7. समाधिमरण की अवधारणा/सम्पादक-डॉ. सुरेश सिसोदिया/आगम अहिंसा समता एवं प्राकृत संस्थान, उदयपुर/सन् 2002/पृ. 73
8. अनुत्तरौपपातिक/वर्ग 3/वही
9. वही
10. अनुत्तरौपपातिक दशांग/युवाचार्य मिश्रीमलजी म.सा./श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर (राज.)
11. भगवान महावीर एक अनुशीलन/आ. श्री देवेन्द्र मुनि जी म.सा./पृष्ठ 455
12. (क) आवश्यक निर्युक्ति/पृष्ठ 92
(ख) समवायांग सूत्र/34/22-23
13. उपासक दशांग/अभयदेव वृत्ति/अध्ययन 6
14. वही
15. ब्राह्मण शब्द की व्याख्या के लिए देखिए :
(क) धम्मपद ब्राह्मण वग्गो 3, 8, 9, 13, 15, 17, 18, 19, 21, 23
(ख) महाभारत शांति पर्व 251/1, 3, 6, 7, 18, 22
16. भगवान महावीर एक अनुशीलन/आ. देवेन्द्र मुनि/पृ. 461/वही
17. श्रमण भगवान महावीर/पं. श्री कल्याण विजयजी गणि/पृ. 108
18. उपासक दशांग सूत्र/अभयदेव वृत्ति/अध्ययन 7/वही
19. उपासक दशांग सूत्र/अभयदेव वृत्ति/अध्ययन 7
20. अन्तकृद्दशांग सूत्र/वर्ग 6/अध्ययन 15/व्या. आचार्य श्री नानेश/वही
21. भिक्षा के लिए द्रष्टव्य : वृहत्कल्प भाष्य/हस्तलिखित गाथा 2640-46
22. अन्तकृद्दशांग सूत्र/वर्ग 6/अध्ययन 15/वही
23. कुमार समणे ति षड्वर्षजातस्य तस्य प्रब्रजित्वात् आह च छव्वरिसो पव्वरओ निगंथं रोइऊण पावयणं ति एतदेव चाश्चर्यमिह अन्यथा वर्षाष्टकादारान्न प्रव्रज्या स्यादिति।

भगवती सटीक/प्र. भाग/5/4 सूत्र 188/पत्रांक 219-20

24. षड्वर्षजातस्य तस्य प्रव्रजित्वाद् आह-छव्वरिसो पव्वइयो निगंथं रोइऊण पाव्यणं त्ति एत्त देवाश्चर्यं अन्यथा वर्षाष्टकादारान्त दीक्षा स्यात् दानशेखर की टीका पत्र 73-1
25. भगवती सूत्र/अभयदेव वृत्ति/शतक 25/6
26. भगवती सूत्र/अभयदेव वृत्ति/पत्रांक 219-20
27. भगवान महावीर एक अनुशीलन/आ. देवेन्द्र मुनि जी म.सा./पृ. 465-66
28. भगवती सूत्र/अभयदेव वृत्ति/पत्रांक 219-20/वही

अनुत्तर ज्ञानचर्या का दसवाँ वर्ष

1. (क) व्याख्या प्रज्ञप्ति 7/4, 5/9, 2/5/वही
(ख) कल्पसूत्र 4/123
(ग) आवश्यक निर्युक्ति 473/492/518
2. (क) पायाधम्मकहाओ/1/1/वही
(ख) दशाश्रुत स्कन्ध 109
(ग) उपासक दशांग 8
3. व्याख्या प्रज्ञप्ति/15/
4. अन्तकृद्दशांग/6/
5. जैनागम साहित्य में भारतीय समाज/पृ. 462
6. पञ्चकखं देवलोग भूया एवं अलकापुरी संकासा प्रमाण।
7. तर्हि परुवरु णामे रायगिहु कणयरयण कोडिर्हि घडिउ बलिवं उं घरं तहो सुखइर्हि सुरणयरु गयण पडिउ।
गाय कुमार चरिउ/6
8. तत्रास्ति सर्वतः कांतं नाम्ना राजगृहं पुरम्।
कुसुमा मोद सुभगं भुवनस्येव यौवनम्।
पद्मपुराण 33/2
9. मज्झिम निकाय (सारनाथ 1633)
10. मज्झिम निकाय-अभय राजकुमार सुत्तन्त पृ. 234
11. मज्झिम निकाय-चल सकलोदायी सुत्तन्त पृ. 305
12. (क) हरिवंश पुराण/सर्ग 2/श्लोक 61-62
(ख) पद्म पुराण/पर्व 2/श्लोक 113
(ग) महापुराण/पर्व 1/श्लोक 196
13. भगवान अरिष्टनेमि और कर्मयोगी कृष्ण एक अनुशीलन/आ. श्री देवेन्द्र मुनिजी म.सा.
14. (क) राजगिहे मुणि सुव्वय देवा पउमा सुमित्त गर्हि।
तिलोय पण्णात्ति।

- (ख) हरिवंश पुराण/सर्ग 60
 (ग) उत्तर-पुराण/पर्व 67
15. (क) जैन-विपुल, रत्न, उदय, स्वर्ग और वैभार
 (ख) वैदिक-वैहार, बाराह, वृषभ, ऋषिगिरी और चैत्यक।
 बौद्ध-चन्दन, मिज्झकूट, वैभार, इसगिति और वेपुन्न।
 सुत्तनिपात की अट्ठकथा/2/पृष्ठ 382
16. (क) व्याख्या प्रज्ञप्ति 2/5
 (ख) वृहत् कल्पभाष्य 2/3429
 (ग) वायुपुराण 1/4/5
17. उपासकदशांग और उसका श्रावकाचार/डॉ. सागरमल जैन/प्रकाशक-आगम
 अहिंसा समता एवं प्राकृत संस्थान, उदयपुर/सन् 1988/पृ. 43
18. उपासकदशांग सूत्र/अभयदेव वृत्ति/अध्ययन 8/वही
19. महाशतक श्रावक/काशीनाथ जैन/पृष्ठ 19
20. जीवाजीवाभिगम/प्रथम प्रतिपत्ति/वही
21. नन्दीसूत्र
22. उपासकदशांग सूत्र/अभयदेव वृत्ति/अध्ययन 8/वही
23. समवायांग सूत्र/अभयदेव वृत्ति/1/वही
24. उत्तराध्ययन वृहद्वृत्ति/अध्ययन 23
25. भगवती सूत्र/अभयदेव वृत्ति/5/9/पत्रांक 448-450
26. भगवती सूत्र/अभयदेव वृत्ति/1/6/पत्रांक 81
27. वही/पत्रांक 82